वैदिक वाङ्मय का इतिहास

प्रथम भाग

भगवद्दत्त

* ओम् *

वैदिक वाङ्मय का इतिहास

प्रथम भाग

वेदों की शाखाएं

लेखक

पण्डित भगवद्दत्त बी. ए.

अध्यक्ष वैदिक अनुसन्धान संस्था

माडल टाऊन

चैत्र १९९१ विक्रमीय

मार्च १९३५ ईस्वी

Printed by—
D. C. Narang at the Hindi Bhawan Press, Anarkali, Lahore.
and Published by—
Pt. Bhagavad Datta, Vedic Research Institute,
Model Town (Punjab).

प्रथम संस्करण—एक हज़ार
मूल्य—तीन रुपए

प्राक्कथन

मेरा जन्म सन् १८९३ ईस्वी के अक्तूवर मास की २७ तारीख को पञ्जावान्तर्गत अमृतसर नामक नगर में हुआ था। मेरे पिता का नाम ला० चन्दनलाल और माता का नाम श्रीमती हरदेवी है। मेरी माता इस समय जीवित हैं। सन् १९१३ में बी. ए. श्रेणी में पग रखते ही मैं ने संस्कृत भाषा का अध्ययन आरम्भ किया। उस से पूर्व मैं विज्ञान पढ़ता रहा था। सन् १९१५ में बी. ए. पास कर के मैं ने वेदाध्ययन को अपने जीवन का लक्ष्य वनाया। इस का कारण श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द जी का उपदेश था। योगिराज लक्ष्मणानन्द जी के सत्संग का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है। सन् १९१२ के दिसम्बर के अन्त में उन का देहावसान हुआ था। परन्तु उन की सारगर्भित बातें मेरे कानों में आज तक गूंज रही हैं। उन की श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी में अगाध भक्ति थी। वे तो योगाभ्यास में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के शिष्य थे।

दयानन्द कालेज लाहौर से बी० ए० पास कर के मैं ने लगभग छः वर्ष तक इसी कालेज में अवैतनिक काम किया। तत्पश्चात् श्री महात्मा हंसराज जी की कृपा से मई १९२१ में मैं इस कालेज का जीवन सदस्य बना। मास मई सन् १९३४ तक मैं इस कालेज के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष रहा। इन १९ वर्षों के समय में मैं ने इस विभाग के पुस्तकालय के लिए लगभग ७००० हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्र किए। इन ग्रन्थों में सैकड़ों ऐसे हैं, जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं। मुद्रित पुस्तकों की भी एक चुनी हुई राशि मैं ने इस पुस्तकालय में एकत्र कर दी थी। इसी पुस्तकालय के आश्रय से मैं ने इन १९ वर्षों में विशाल वैदिक और संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन किया। यह अध्ययन ही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य बना रहा है। इस के लिए जो जो कष्ट और विघ्न वाधाएं मैं ने सही हैं, उन्हें मैं ही जानता हूं।

सन् १९३३ में कालेज के कुछ बाबू वकील प्रबन्धकर्ताओं के मन में यह धुन समाई कि अपने धन के मद में मस्त होकर वे वेदाध्ययन करने वालों को भी अपना नौकर समझें। भला यह बात मैं कब सह सकता था। संस्कृत-विद्या-हीन इन बाबू लोगों को आर्य संस्थाओं में धर्म और प्रबन्ध का क्या ज्ञान हो सकता है, ऐसी धारणा मेरे अन्दर दृढ थी और अब भी दृढ है। अन्ततः यह विषय महात्मा हंसराज जी के निर्णय पर छोड़ा गया। उन को भी धनी लोगों की बात रुचिकर लगी। तब मेरी आंख खुली। मुझे एक दम ज्ञान हो गया। इस कलि काल में नामधारी आर्यों में वेद-ज्ञान के प्रति कोई श्रद्धा नहीं है। यह धन के साम्राज्य का युग है। पर क्योंकि महात्मा हंसराज जी की कृपा से ही मैं कालेज का सदस्य हुआ था, अतः उन्हीं के निर्णय पर मैं ने कालेज की सेवा छोड़ने का संकल्प कर लिया। संसार क्या है, इस विषय का मेरा बहुत सा स्वप्न दूर हो गया है। मैं महात्मा हंसराज जी का शतशः धन्यवाद करता हूं कि मेरे इस ज्ञान का वे कारण बने हैं। पहली जून सन् १९३४ को मैं ने कालेज को त्याग दिया।

यह जीवन मैं ने वैदिक वाङ्मय के अर्पण कर रखा है। अतः कालेज छोड़ने के पश्चात् भी मैं इसी काम में लग गया हूं। मेरे पास अब पुस्तकालय नहीं है। कुछ मित्रों ने ग्रन्थ भेजने का कष्ट उठाया है। मैं उन सब का आभारी हूं। मेरे मित्र और सहपाठी श्री डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप जी ने बहुत सहायता की है। उन्हीं के और ला० लब्भूराम जी और पण्डित बाला सहाय जी शास्त्री के कारण मैं पञ्जाब यूनिवर्सिटी पुस्तकालय से पूरा लाभ उठा रहा हूं।

इस इतिहास के दो भाग पहले दयानन्द कालेज की ओर से प्रकाशित हो चुके हैं। एक में है ब्राह्मण ग्रन्थों का इतिहास और दूसरे में है वेद के भाष्यकारों का इतिहास। प्रथम भाग अभी तक मुद्रित नहीं हुआ था। यह प्रथम भाग अब विद्वानों के सम्मुख उपस्थित है। इस में वेद की शाखाओं का ही प्रधानतया वर्णन है। वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में मैक्समूलर, सत्यव्रत सामश्रमी और स्वामी हरिप्रसाद जी ने

बहुत कुछ लिखा है। मैं ने उन सब का ही पाठ किया है । इस ग्रन्थ में इन शाखाओं के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह उन से बहुत अधिक और बहुत स्पष्ट है। जहां तक मैं समझता हूं, आर्षकाल के पश्चात् इतनी सामग्री आज तक किसी एक ग्रन्थकार ने नहीं दी। पाठक ग्रन्थ को पढ़ कर इस बात को जान जाएंगे ।

सन् १९३१ के लगभग मेरे मित्र अध्यापक रघुवीर जी ने मेरे साथ इस इतिहास को अङ्ग्रेजी में लिखना प्रारम्भ किया था । हम ने कुछ सामग्री लिखी भी थी । परन्तु मेरा विचार उन से बहुत भिन्न था। अतः मैं ने उस काम को वहीं स्थगित कर दिया, और उन्हें अधिकार दे दिया था कि वे अपने ग्रन्थ को स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित कर लें। आशा है मेरा ग्रन्थ प्रकाशित हो जाने के पश्चात् अब वे अपना ग्रन्थ प्रकाशित करेंगे। मैं भी कुछ काल के पश्चात् इस ग्रन्थ का एक परिवर्धित संस्करण अङ्ग्रेजी में निकालूंगा । वैदिक वाङ्मय का सम्पूर्ण इतिहास तो कुछ काल पश्चात् ही लिखा जा सकता है। आए दिन वैदिक वाङ्मय के नए नए ग्रन्थ मिल रहे हैं । इन सब का सम्पादन भी अत्यन्त आवश्यक है । हो रहा है यह काम अत्यन्त धीरे धीरे । आर्य जाति का ध्यान इस ओर नहीं है। मेरे जीवन की कितनी रातें इस गम्भीर समस्या के हल करने में लगी हैं, भगवान् ही जानते हैं। भारत में वैदिक ग्रन्थों के सम्पादन की ओर विद्वानों का बहुत कम ध्यान है । देखें कितने तपस्वी लोग इस काम में अपनी जीवन-आहुतियां देते हैं।

मेरे पास न तो धन है, और न सहकारी कार्यकर्ता । यथा तथा जीवन निर्वाह का प्रबन्ध भगवान् कर देते हैं । फिर भी जो कुछ मुझ से हो सकेगा, वह मैं करता ही रहूंगा । बस इतने शब्दों के साथ मैं इस भाग को जनता की भेंट करता हूं। जो दो भाग पहले छप चुके हैं, वे भी संशोधित और परिवर्धित रूप में शीघ्र ही छपेंगे। तत्पश्चात् चौथा भाग छपेगा। उस में कल्पसूत्रों का इतिहास होगा ।

इस ग्रन्थ के पढ़ने वालों से मैं इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि यदि वे इस ग्रन्थ के पूरे आठ भागों का पाठ करने के इच्छुक हैं, तो

उन्हें इस की अधिक से अधिक प्रतियां विकवानी चाहिएं। यही मेरी सहायता है और इसी से मेरा काम अपने वास्तविक रूप में चलेगा।

कई फार्मों का प्रूफ पं० शुचिव्रत जी शास्त्री एम०ए० ने शोधा है। तदर्थ मैं उन का बड़ा अभारी हूं। यह ग्रन्थ हिन्दी भवन प्रेस लाहौर में छपा है। प्रेस के व्यवस्थापक श्री इन्द्रचन्द्र जी ने ग्रन्थ के प्रूफ शोधन में हमारी अत्यधिक सहायता की है। प्रेस सम्बन्धी अन्य अनेक सुविधाएं भी उन्हों ने हमें दी हैं। इन सब के लिए मैं उन को हार्दिक धन्यवाद देता हूं। श्रीयुत मित्रवर महावैयाकरण पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और ब्रह्मचारी युधिष्ठिर ने हमें अनेक उपयोगी बातें सुझाई हैं। नासिकक्षेत्र वास्तव्य शुक्ल-याजुष-विद्या-प्रवीण पं० अण्णा शास्त्री वारे और उन के सुपुत्र पं० विद्याधर शास्त्री जी ने भी शुक्ल-याजुष प्रकरण की कई बातें हमें बताई थीं। इन सब महानुभावों के प्रति मैं सनम्र अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

वृहस्पतिवार — भगवद्दत्त

२१ मार्च १९३५

विषय-सूची



वैदिक वाङ्मय का इतिहास

प्रथम भाग

ओम्

वैदिक वाङ्मय का इतिहास

प्रथम भाग

प्रथम अध्याय

भारतीय इतिहास की प्राचीनता

आर्यावर्त के प्राचीन, मध्यकालीन और अनेक आधुनिक विद्वानों का मत है कि भारतीय इतिहास वड़ा प्राचीन है। महाभारत का युद्ध जो द्वापर के अन्त अथवा कलियुग के आरम्भ से कोई ३७ वर्ष पूर्व हुआ,[१] अभी कल की बात है। आर्यों का इतिहास उस से भी सहस्रों लाखों वर्ष पूव से आरम्भ होता है। वराहमिहिर[२] और उस के अनुगामी कल्हण काश्मीरी[३] आदि को छोड़ कर शेष आर्य विद्वानों के अनुसार महाभारत युद्ध को हुए ५००० वर्ष से कुछ अधिक काल हो चुका है। उस महाभारत युद्ध से भी कई शताब्दी पूर्व का क्रमवद्ध इतिहास महाभारत और पुराण आदि में मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि अनेक अंशों में सुविदित भारतीय इतिहास सात आठ सहस्र वर्ष से कहीं अधिक पुराना है।

इस के विपरीत पश्चिम अर्थात् योरुप और अमेरिका के प्रायः सारे आधुनिक लेखक और उनका अनुकरण करने वाले कतिपय एतद्देशीय

१—देवकी-पुत्र कृष्ण का देहावसान द्वापर के अन्तिम दिन हुआ था। तभी युधिष्ठिर ने राज्य छोड़ा था। युधिष्ठिर-राज्य ३६ वर्ष तक रहा। देखो, महाभारत, मौसल पर्व १।१॥ तथा ३।२०॥

२—बृहत्संहिता १३।३॥

३—राजतरङ्गिणी १।५१–५६॥

ग्रन्थकार लिखते हैं कि आर्य लोग बाहर से आकर भारत में बसे। यह बात आज से कोई ४५०० वर्ष पूर्व हुई होगी। अतः भारत में आर्यों का इतिहास इससे अधिक पुराना कभी हो ही नहीं सकता। इस विषय के अन्तिम लेखक अध्यापक रैपसन Rapson का मत है—

It is indeed probable that all the facts of this migration, so far as we know them, can be explained without postulating an earlier beginning for the migrations than 2500 B. C.[1]

पुनः—

It is, however, certain that the Rigveda offers no assistance in determining the mode in which the Vedic Indians entered India.[2]

अर्थात्—अपने मूल स्थान से आर्यों का प्रवास ईसा से २५०० वर्ष पूर्व हुआ होगा। इस सम्बन्ध की सब घटनाएं इतना काल मान कर समझाई जा सकती हैं। तथा—

परन्तु इतना निश्चित है कि वैदिक आर्य जिस रीति से भारत में प्रविष्ट हुए, उस का कोई पता ऋग्वेद में नहीं मिलता।

पाश्चात्य लोगों का यह मत कितना भ्रान्त है, अर्ध-विकसित आधुनिक भाषा-विज्ञान के आधार पर की हुई उन की यह कल्पना सत्य से कितनी दूर है, तथा उन के इस मिथ्या-प्रचार से आर्य संस्कृति का कितना अनिष्ट हुआ है, यह सब अगली पंक्तियों के पाठ से सुस्पष्ट हो जाएगा।

पश्चिम के लेखकों ने अपनी इस कल्पना को सिद्ध करने के लिए प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के सब ही ग्रन्थों की निर्माण-तिथियां उलट दी हैं। महाभारत और मानवधर्मशास्त्र की भृगुसंहिता, श्रौत और गृह्यसूत्र, वेदान्त और मीमांसा दर्शन, निरुक्त और छन्द आदि शास्त्र, सुतरां सारा प्राचीन साहित्य जो महाभारत काल (लगभग ३००० पूर्व विक्रम) में बना, अब विक्रम से ६०० वर्ष पूर्व के अन्तर्गत लाया जाता है। स्वयं भूल करने

1—The Cambridge History of India, 1922, Vol. I. p. 70.
2—Ibd. p. 79.

वाले इन लोगों ने आर्य ऐतिह्य के प्रायः सारे ही अंशों में अविश्वास-भाव को उत्पन्न करने का अणुमात्र भी परिश्रम-शेष नहीं रहने दिया। यूनान का इतिहास प्रायः सत्य समझा जा सकता है, मिश्र और चीन के ऐतिहासिक भी कुछ न कुछ ठीक ही लिख गए हैं, और इस्लामी ऐतिहासिकों पर तो पर्याप्त विश्वास हो सकता है, पर कराल-काल के हाथों से बचा हुआ आर्य ऐतिह्य इन से नितान्त मिथ्या बताया जाता है। यह क्यों? कारण कि यह बहुत पुरानी बातें कहता है।[1] यह अपने को विक्रम से सहस्रों वर्ष पूर्व तक ले जाता है, नहीं, नहीं, क्योंकि यह कल्प कल्पान्तरों का वर्णन करता है।

विचारने का स्थान है कि क्या आर्यावर्त के सारे ग्रन्थकारों ने अनृत-भाषण का ठेका ले लिया था? क्या पूर्व और पश्चिम के, उत्तर और दक्षिण के सारे ही भारतीय लेखकों ने आर्य इतिहास को अति प्राचीन कहने का एक मत कर लिया था? यदि ऐसी ही बात है तो इससे उन्हें क्या लाभ अभिप्रेत था? सत्यभाषण का परमोत्कृष्ट आदर्श उपस्थित करने वाले आर्य ऋषि इतने अनृतवादी हों, ऐसा कहना इन्हीं यूरोपीय प्रोफ़सरों का साहस है। अस्तु, अब अधिक न लिख कर हम वे प्रमाण उपस्थित करते हैं जिन से स्पष्ट ज्ञात होगा कि भारतीय इतिहास बड़ा प्राचीन है।

१—व्याकरण महाभाष्य का साक्ष्य

पाणिनीय सूत्र ३।२।११५॥पर भाष्य करते हुए पतञ्जलि लिखता है—

कथंजातीयकं पुनः परोक्षं नाम। केचित्तावदाहुर्वर्षशतवृत्तं परोक्षमिति। अपर आहुर्वर्षसहस्रवृत्तं परोक्षमिति।[2]

अर्थात् परोक्ष के विषय में कई आचार्यों का ऐसा मत है कि जो सौ वर्ष पहले हो चुका हो वह परोक्ष है और कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि जो हज़ार वर्ष पूर्व हो गया हो वह परोक्ष है।

1—The earliest of these genealogies, like the most ancient chronicles of other peoples, are legendry.

Cambridge H. of India, 1922, Vol. I. p. 304.

२—प्रो० कीलहार्न के कुछ हस्तलेखों में सहस्रवृत्तं वाला पाठ नहीं है, परन्तु अनेक अन्य कोशों में ऐसा पाठ मिलने से हम ने इसे प्राचीन पाठ समझा है।

पतञ्जलि का समय पाश्चात्य लेखकों के अनुसार विक्रम से १००–१५० वर्ष पूर्व तक का है। यदि यह सत्य मान लिया जाय तो इतना निश्चित हो जाता है कि पतञ्जलि से भी कुछ पूर्व काल के आचार्य परोक्ष के विषय में ऐसी सम्मति रखते थे कि उन से सहस्र वर्ष पहले होने वाला वृत्त परोक्ष की अवधि में आता है। अर्थात् उन आचार्यों को विक्रम से १२०० या १३०० वर्ष पहले के इतिवृत्तों का ज्ञान होगा और उन वृत्तों के लिए वे परोक्ष के रूप का प्रयोग करते होंगे। इस से इतना ज्ञात होता है कि पतञ्जलि से १०० या २०० वर्ष पहले होने वाले विद्वानों को अपने से सहस्र वर्ष पहले होने वाले वृत्तों का यथार्थ ज्ञान था।

पतञ्जलि को आर्य इतिहास का कैसा ज्ञान था, यह महाभाष्य के पाठ से विदित हो जाता है। देखो—

पाणिनीय सूत्र ३।२।१२३॥ पर लिखे गए वार्तिक-सन्ति च काल-विभागाः पर भाष्य करते हुए वह कहता है कि भूत-भविष्यत् और वर्तमान काल क राजाओं की क्रियाओं के सम्बन्ध में अमुक प्रयोग होते हैं।

पुनः—१—कंस को वासुदेव ने मारा ३।२।१११॥ २—धर्म से कुरुओं ने युद्ध किया ३।२।१२२॥ ३—दुःशासन, दुर्योधन ३।३।१३०॥ ४—मथुरा में बहुत कुरु चलते हैं ४।१।१४॥ ५—अश्वत्थाम ४।१।२५॥ ६—व्यास पुत्र शुक ४।१।९७॥ ७—उग्रसेन। वसुदेव,बलदेव, नकुल और सहदेव के पुत्रों का वर्णन ४।१।११४॥ तथा अन्यत्र भी सैकड़ों ऋषियों और जनपदों का उल्लेख देखने योग्य है।

२—सम्राट् खारवेल का शिलालेख

श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार महाराज खारवेल का काल १६० पूर्व ईसा है। जैन-आचार्य हिमवान् के नाम से जो थेरावली प्रसिद्ध है,[१] उस के अनुसार भिक्खुराय = खारवेल का राज्याभिषेक वीरसंवत् ३०० और स्वर्गवास वीरसंवत् ३३० में हुआ था। इस थेरावली के अनुसार

१—नागरी प्र० प० भाग ११–अंक १, मुनि कल्याणविजय जी का लेख पृ० १०३।

भी खारवेल का काल लगभग इतना ही है। इस खारवेल का एक शिलालेख हाथीगुम्फा में मिला है। उसकी ११वीं पंक्ति में लिखा है—

पुवराजनिवेसितं पीथुडगदभनगले नेकासपति जनपदभावनं तेरसवससत केतुभद तितामरदेह संघाटं···।[1]

अर्थात्– [अपने राज्य के ग्यारहवें वर्ष में] उसने महाराज केतुभद्र की नीम की मूर्ति की सवारी निकाली, जो १३०० वर्ष पहले हो चुका था। यह मूर्ति प्राचीन राजाओं ने पृथूदकदर्भ नाम नगर में स्थापित की थी।

इस से सिद्ध होता है कि महाराज खारवेल से १३०० वर्ष पहले का इतिहास उस समय विदित था, अथवा विक्रम से १४०० या १४५० वर्ष पहले के राजाओं का ज्ञान तो उन दिनों के लोगों को अवश्य था।

यहां कई लोग १३०० के स्थान में ११३ वर्ष अर्थ मानते हैं। परन्तु यह बात अभी विचारणीय है।

३—कलियुग संवत्

कलियुग संवत् आर्यों का एक संवत् है। इस का आरम्भ ३१०२ पूर्व ईसा से होता है। इस संवत् का प्रयोग इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भारतीय लोग कम से कम विक्रम से ३०५० वर्ष पहले का अपना हाल जानते थे। और क्योंकि भारतीय विद्वान् जो इस संवत् का प्रयोग करते रहे हैं, अपने को इसी देश का निवासी लिखते रहे हैं, अतः यह सिद्ध है कि भारतीय इतिहास कलि संवत् जितना पुराना तो निस्सन्देह है।

कलि संवत् का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों में देखने योग्य है—

क—आचार्य हरिस्वामी अपने शतपथ ब्राह्मण भाष्य के प्रथम काण्ड के अन्त में लिखता है—

यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत् समाश्चान्याः तदा भाष्यमिदं कृतम्॥

अर्थात्—कलि के ३७४० वर्ष व्यतीत होने पर यह भाष्य रचा गया।

1—J. B. O. R. S. 1917, p. 457.

ख—चालुक्य कुल के महाराज पुलकेशी द्वितीय का एक शिलालेख दक्षिण के एक जैन मन्दिर पर मिला है। उस में लिखा है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु श(ग)तेष्वब्देषु पञ्चसु ॥३३॥
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥३४॥[1]

अर्थात्—भारतयुद्ध से ३७३५ वर्ष जाने पर जब कि कलि में शकों के ५५६ वर्ष व्यतीत हुए थे, तब……

ग—प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट अपनी आर्यभटीय के कालक्रियापाद में लिखता है—

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥१०॥

अर्थात्—तीन युगपाद और चौथे युग के जब ३६०० वर्ष व्यतीत हो चुके, तब मुझे जन्मे हुए २३ वर्ष हुए हैं।

कलियुग संवत् के सम्बन्ध में डा० फ़्लीट की सम्मति

पूर्वनिर्दिष्ट अन्तिम लेख से अधिक पुराने काल में कलि संवत् का प्रयोग पुराने ग्रन्थों में अभी तक हमारे देखने में नहीं आया।[2] परन्तु इस का यह परिणाम नहीं हो सकता कि कलिसंवत् एक काल्पनिक संवत् है और यहां के ज्योतिषियों ने कलि के ३५०० वर्ष पश्चात् अपनी सुविधा के लिए इस का प्रचार किया।[3]

इस सम्बन्ध में डा० फ़्लीट ने दो लेख लिखे थे। वे लेख इस सम्बन्ध में समस्त पाश्चात्य विचार का संग्रह करते हैं। उन के कथन का सार उन के लेखों के निम्नलिखित उद्धरणों से दिया जा सकता है—

But any such attempt ignores the fact that the

1—Epigraphia Indica, Vol. VI. p. 7

२—ज्योतिर्विदाभरण नामक ज्योतिष ग्रन्थ में इससे पहले का एक लेख है। परन्तु यह ग्रन्थ कितना पुराना है, यह अभी विवादास्पद है।

३—J. R. A. S. 1911, पृ० ४७१—४९९। तथा ६७५—६९८।

reckoning is an invented one, devised by the Hindu astronomers for the purposes of their calculations some thirtyfive centuries after that date.

The general idea of the Ages, with their names, and with a graduated deterioration of religion and morality, and shortening of human life,—with also some conception of a great period known as the kalpa or æon, which is mentioned in the inscription of Aśoka (B. C. 264-227),—seems to have been well established in India before the astronomical period. But we cannot refer to that early time any passage assigning a date to the beginning of any of the Ages, or even alloting them the specific lengths, whether in solar years of men or in divine years mentioned above.[1]

Literary instances are not at all common, even in astronomical writings.........The earliest available one seems to be one of A. D. 976 or 977 from Kashmir: it is the year in which Kayyata, son of Chandráditya wrote his commentary on the Devīśataka of Ánandavardhana, when Bhimagupta was reigning.[1]

अर्थात्—(क) कलि संवत् की गणना भारतीय ज्योतिषियों ने उस काल के कोई ३५ शताब्दी पश्चात् अपनी सुविधा के लिए निकाली है।

(ख) युगों और युगनामों आदि का विचार ज्यौतिष काल (पहली से तीसरी शताब्दी विक्रम) से पहले सुनिश्चित हो चुका था, परन्तु कोई एक युग कब आरम्भ होता है और उस में कितने सौर या दैव वर्ष हैं, ऐसा बताने वाला कोई प्राचीन वाक्य नहीं है।

(ग) ग्रन्थकार भी कलिसंवत् का प्रायः प्रयोग नहीं करते। सब से पुराना ग्रन्थकार कैयट है जो देवीशतक की अपनी टीका में कलि ४०७८ का उल्लेख करता है। यथा—

वसुमुनिगगनोदधिसमकाले याते कलेस्तथा लोके।
द्वापञ्चाशे वर्षे रचितेयं भीमगुप्तनृपे॥

१—पृ० ४८५, ४८६।

फ़्लीट-मत-परीक्षा और उस के दूषण

क—युगों, युगनामों और प्रत्येक युग के वर्षों की गणना का मत विक्रम की तीसरी चौथी शताब्दी में घड़ा गया, यह कहना ठीक नहीं। ४२७ शक के समीप ग्रन्थ लिखन वाला वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता के आरम्भ में लिखता है—

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥२॥
मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥३॥
आब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ॥५॥

अर्थात्—वराहमिहिर कहता है कि प्रथम मुनि ब्रह्मा से लेकर अन्य अनेक ऋषि मुनियों के विस्तृत ग्रन्थ देख कर मैंने यह संक्षिप्त शास्त्र लिखा है ।

हमारी दृष्टि के अनुसार जिस का आधार कि प्राचीन आर्य ऐतिह्य है, ये मुनिप्रोक्त ग्रन्थ महाभारत-काल और उस से भी बहुत पहले रचे गए थे । परन्तु यदि इस बात को अभी स्वीकार न भी किया जाए तो इतना तो मानना पड़ेगा कि ये ग्रन्थ वराहमिहिर से बहुत पहले के होंगे, अन्यथा वह इन्हें मुनि रचित और चिरन्तन न कहता। वराहमिहिर के काल तक जब कि भारत में इस्लामी आक्रमण नहीं हुआ था, जब आर्य सम्राटों के सरस्वती भण्डारों में प्राचीन साहित्य सुरक्षित रहता था, जब आर्य विद्वानों को अपनी परम्परा का, अपने सम्प्रदाय का अच्छा ज्ञान होता था, तब, हां तब, वराहमिहिर जैसा विद्वान् अपने से कुछ ही पहले के ग्रन्थों को मुनि रचित और चिरन्तन कहे, ऐसा कदापि नहीं हो सकता । वह जानता था कि गर्ग आदि मुनियों के रचे हुए ग्रन्थ बहुत पुरातन काल के हैं ।

यह वराहमिहिर बृहत्संहिता के सप्तर्षिचाराध्याय में लिखता है—

ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्वर्त्ती वोत्तरा भ्रमद्भिश्च ।
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥२॥

अर्थात्—उन सप्तर्षियों का चार मैं वृद्धगर्ग के मत से कहूंगा ।

तथा च वृद्धगर्गः—

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः॥

अर्थात्—कलिद्वापर की संधि में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे।

पराशर वराहमिहिर से बहुत ही पहले होने वाला एक संहिताकार है। वह पराशर वृद्धगर्ग से भिन्न पुनर्गर्ग के विषय में लिखता है—

कल्यादौ भगवान् गर्गः प्रादुर्भूय महामुनिः।
ऋषिभ्यो जातकं कृत्स्नं वक्ष्यत्येव कलिं श्रितः॥

अर्थात्—भगवान् गर्ग कलि ' आदि में उत्पन्न हुआ।

अब विचारना चाहिए कि पराशर और वृद्धगर्ग दोनों ही आचार्य कलि का आरम्भ और कलि और द्वापर की संधि को जानते हैं। अस्तु, जब वे कलि के आरम्भ को जानते हैं तो उन को वा उनके शिष्य-प्रशिष्यों को कलि काल की गणना करने में क्या अड़चन थी। अतः डा० फ़्लीट की पहली कल्पना कि कलिसंवत् की गणना और उसका प्रयोग कलिसंवत् के ३५०० वर्ष पश्चात् भारतीय ज्योतिषियों ने आरम्भ किया, सत्य नहीं।

(ख) फ़्लीट महाशय आगे चल कर कहते हैं कि प्रत्येक युग में कितने दैव या मानुष वर्ष थे, ऐसा बताने वाला कोई प्राचीन प्रमाण नहीं है। फ़्लीट महाशय की यह बात भी सत्य नहीं है। कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणी का काल पाश्चात्य लेखकों के अनुसार विक्रम से कोई ३०० वर्ष पूर्व का है। हमारे अनुसार तो उसका काल इस से भी बहुत पहले का है। बृहद्देवता इस सर्वानुक्रमणी से भी कुछ पूर्व का ग्रन्थ है। उस के सम्बन्ध में अध्यापक मैकडानल अपने बृहद्देवता के संस्करण की भूमिका में लिखता है—

The Brihaddevatá......could, therefore, hardly be placed later than 400 B. C.

अर्थात्—बृहद्देवता ४०० ईसा पूर्व के पीछे का नहीं हो सकता।

उस बृहद्दवता के आठवें अध्याय में लिखा है—

महानाम्न्य ऋचो गुह्यास्ता ऐन्द्यश्चैव यो वदेत्।
सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्ब्राह्मं स राध्यते॥१८॥

अर्थात्—इन्द्र देवता संबंधी रहस्यमयी महानाम्नी ऋचाओं को जो जपता है वह सहस्रयुग पर्यन्त रहने वाले ब्रह्मा के एक दिन को प्राप्त होता है।

इस श्लोक के उत्तरार्ध का पाठ स्वल्प पाठान्तरों के साथ भगवद्गीता ८।१७॥ निरुक्त १४।४॥ और मनुस्मृति १।७३॥ में मिलता है। इस के पाठ से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का लेखक जानता था कि एक ब्राह्मदिन में कितने वर्ष होते हैं। अतः उसको प्रत्येक युग के वर्षों की गणना का ज्ञान भी अवश्य था। ध्यान रहे कि बृहद्देवता का यह श्लोक अध्यापक मैकडानल निर्धारित उस की दोनों शाखाओं में मिलता है, और किसी प्रकार भी प्रक्षिप्त नहीं कहा जा सकता।

मनुस्मृति इस बृहद्देवता से कहीं पहले की है। पाश्चात्य विचार वाले इस मनुस्मृति को ईसा की पहली शताब्दी के समीप का मानते हैं। परन्तु यह बात नितान्त अयुक्त है। याज्ञवल्क्य स्मृति कौटल्य अर्थशास्त्र से कहीं पहले की है।[१] तथा कौटल्य अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के अमात्य चाणक्य की ही कृति है। और मनुस्मृति तो याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत पहले की है।[२] उस मनुस्मृति के आरम्भ में युगों, युगनामों और प्रत्येक युग के वर्षों की संख्या का तथा कल्प आदि की गणना का बड़ा विस्तृत वर्णन है। अतः फ़्लीट का यह लेख कि कलि के ३५०० वर्ष पश्चात् यहां के ज्योतिषियों ने युगों के वर्षों की गणना स्थिर करके कलि संवत् का गिनना आरम्भ कर दिया, सर्वथा भूल है।

१—तुलना करो—Mauryan Polity by V. R. Dikshitar M.A., 1932, p. 20-22.

२—देखो बार्हस्पत्य सूत्र की मेरी भूमिका पृ० ४-७।

धर्मशास्त्र का इतिहास लिखनेवाले श्री पाण्डूरङ्ग वामन काणे अपने इतिहास (सन् १९३०) के पृ० १४८ पर लिखते हैं—

Therefore it must be presumed that the Manusmriti had attained its present form at least before the 2nd century A.D.

अर्थात्—ईसा की दूसरी शताब्दी से पूर्व ही मनुस्मृति इस वर्तमान रूप में आ गई थी। अतः फ्लीट महाशय का यह कहना कि युगों का वर्षमान ईसा की चौथी शताब्दी में चला, एक भयङ्कर भूल है। हम तो वर्तमान मनुस्मृति को बहुत पहले का मानते हैं

लगध का वेदाङ्ग ज्योतिष एक बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। वेङ्कटेश वापूजी केतकर के अनुसार वह १४०० पूर्व ईसा में रचा गया था।[1] सम्भव है उपलब्ध याजुष ज्यौतिष यही हो। आर्च ज्यौतिष भी इसी का रूपान्तर प्रतीत होता है। मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के समान लगध का मूल ग्रन्थ सम्भवतः कभी बहुत बड़ा होगा। उसी मूल के अथवा उपलब्ध लगध की किसी और शाखा के कुछ श्लोक सिद्धान्तशिरोमणि की मरीचिटीका (शक १५६०) में उद्धृत हैं। मरीचिटीका का कर्ता मुनीश्वर है। वह ग्रहगणित के २५वें श्लोक की टीका में लिखता है—

पञ्चसंवत्सरैरेकं प्रोक्तं लघुयुगं बुधैः।
लघुद्वादशकेनैकं षष्टिरूपं द्वितीयकम्॥
तद्द्वादशमितैः प्रोक्तं तृतीयं युगसंज्ञकम्।
युगानां षट्शती तेषां चतुष्पादी कला युगे॥
चतुष्पादी कला संज्ञा तदध्यक्षः कलिः स्मृतः।

इति लगधप्रोक्तत्वात्।

अर्थात्—लगध के अनुसार लघुयुग ५ वर्ष का होता है। १२लघुयुगों अथवा ६० वर्षों का दूसरा युग होता है। ७२० वर्षों का तीसरा युग होता है। इस तीसरे युग को ६०० से गुणा करके कलि के ४३२००० वर्ष बनते हैं।

जब लगध समान प्राचीन ग्रन्थकार भी कलि आदि का वर्ष-मान जानता है, तो यह निर्विवाद है कि कलिसंवत् की कल्पना नवीन नहीं है।

(ग) डा० फ़्लीट ने देवीशतक के भाष्यकार का एक प्रमाण दिया है कि वह ग्रन्थ ४०७८ कलिसंवत् में रचा गया। उन के काल तक कलिसंवत् के प्रयोग के विषय में किसी ग्रन्थकार का इस से पुराना लेख नहीं मिला था। परन्तु हमने आचार्य हरिस्वामी का जो लेख दिया है, वह इस से बहुत पहले का है। आचार्य हरिस्वामी ने कलिसंवत् ३७४० का प्रयोग किया है।

कलिसंवत् का प्रयोग स्कन्दपुराण के दूसरे अर्थात् कौमारिका खण्ड में भी हुआ है। स्कन्दपुराण का लेख अत्यन्त अस्त-व्यस्त दशा में

1— Indian and foreign chronology, 1923, p. 107.

है। स्कन्दपुराण के इस खण्ड के हस्तलेख हमारे पास नहीं हैं। यदि होते तो हम इस पाठ को शुद्ध कर के देते। परन्तु इस से यह अनुमान नहीं करना चाहिए कि स्कन्दपुराण का लेख सर्वथा असत्य है। निम्नलिखित पाठ में क्योंकि बहुत अशुद्धियां हैं, अतः अधिक सामग्री के अभाव में हम अभी तक अन्तिम सम्मति नहीं दे सकते। विचारवान् पाठक इन पाठों के शोधने का यत्न करें, इसी अभिप्राय से ये श्लोक उद्धृत किए जाते हैं। स्कन्दपुराण के चतुर्युगव्यवस्था वर्णन नामक चालीसवें अध्याय में लिखा है—

त्रिषु वर्षसहस्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिवः।
त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति ॥२४९॥
शूद्रको नाम वीराणामधिपः सिद्धिमत्र सः।
ततस्त्रिषु सहस्रेषु दशाधिकशतत्रये।
भविष्यं नन्दराज्यं च चाणक्यो यान् हनिष्यति ॥२५१॥
ततस्त्रिषु सहस्रेषु विंशत्या चाधिकेषु च ॥२५२॥
भविष्यं विक्रमादित्यराज्यं सोऽथ प्रलप्स्यते।
ततः शतसहस्रेषु शतेनाप्यधिकेषु च।
शको नाम भविष्यश्च योऽति दारिद्र्यहारकः ॥२५४॥
ततस्त्रिषु सहस्रेषु षट्शतैरधिकेषु च।
मागधे हेमसदनादंजन्यां प्रभविष्यति ॥२५५॥
विष्णोरंशो धर्मपाता बुधः साक्षात्स्वयं प्रभुः।

इन श्लोकों का पाठ स्पष्ट बता रहा है कि इन में लेखक-प्रमाद अत्यधिक हुआ है, और श्लोकक्रम भी विपर्यस्त हो गया है। स्कन्दपुराण चाहे कभी लिखा गया हो, परन्तु बुद्ध आदि के जन्म की कोई प्राचीन गणना कलिसंवत् के अनुसार भारत में अवश्य प्रचलित थी। उसी गणना का उल्लेख स्कन्दपुराण में मिलता है।

कलिसंवत् का प्रयोग करने वाले पुराने लेख अभी तक क्यों नहीं मिले

वलभी, गुप्त, शालिवाहन, विक्रम और वीरनिर्वाण संवतों के अत्यधिक प्रचार के कारण गत २४०० वर्षों में कलिसंवत् का प्रयोग

स्वभावतः कम हुआ है। प्रतीत होता है कि उस से पहले भी भारत के सम्राट् किसी संवत् का प्रयोग बहुत कम करते थे। प्रियदर्शी महाराज अशोक के अनेक लेख इस समय तक मिल चुके हैं। महाराज खारवेल का शिलालेख भी विक्रम से पूर्वकाल का ही है। इन के शिलालेखों में कोई संवत् नहीं है। हां, उनके अपने अपने राजकाल के वर्षों की गणना तो मिलती है। परन्तु यह पूरी सम्भावना है कि अधिक सामग्री के मिलने पर बहुत पुराने काल में कलिसंवत् का प्रयोग मिलेगा अवश्य। यह स्मरण रखना चाहिए कि नेपाल की जो प्राचीन राजवंशावली मिलती है, उस में कई बहुत प्राचीन राजाओं का काल कलिगत संवत् में दिया गया है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। शक संवत् भारत में अब पर्याप्त प्रचलित है। इस का आरम्भ विक्रम से ७८ वर्ष पश्चात् हुआ था। इस शक संवत् का शक ५०० से पहले का अभी तक एक शिलालेख भी नहीं मिला, ऐसा पाश्चात्यों का कहना है।[1] परन्तु शक संवत् की तथ्यता में किसी को सन्देह नहीं हुआ। पुनः कलिसंवत् के पुराने शिलालेखों के अब तक प्राप्त न होने पर कलिसंवत् की तथ्यता में क्यों सन्देह किया जाए।

४—प्राचीन राजवंशावलियां

अनेक प्राचीन राजवंशावलियां जो इस समय भी उपलब्ध हैं, यही बताती हैं कि भारतीय इतिहास बहुत प्राचीन है। वे वंशावलियां निम्नलिखित हैं—

१—गढ़वाल-अल्मोड़ा की राजवंशावली।

२—काश्मीर की राजवंशावली।

1— The Siddhantas and the Indian Calendar, Robert Sewell, 1924, p. XIII.

इण्डियन अण्टीक्वेरी जून सन् १८८६ पृ० १७२-१७७ पर एक ऐसा शिलालेख छपा है, जो शक संवत् २६१ का है। उसी लेख की टिप्पणी में फ्लीट का मत है कि इस शिलालेख में दी गई तिथि कल्पित है। हम इसके विषय में अभी कुछ नहीं कहते।

३—कामरूप की राजवंशावली।

४—इन्द्रप्रस्थ की राजवंशावली।

५—बीकानेर की राजवंशावली।

६—पुराणान्तर्गत मगध की राजवंशावली।

७—नेपाल की राजवंशावली।

८—त्रिगर्त की राजवंशावली।

इन के अतिरिक्त भी और अनेक राजवंशावलियां होंगी। यथा—काशी, पाञ्चाल, कलिङ्ग, सिन्धु, उज्जैन, और पाण्ड्य आदि देशों की राजवंशावलियां। वे हमें हस्तगत नहीं हो सकीं। तो भी जो बात हम बताना चाहते हैं, वह पूर्व-निर्दिष्ट सात वंशावलियों से ही सिद्ध हो जाएगी। अतएव अब हम इन वंशावलियों के सम्बन्ध में क्रमशः कुछ आवश्यक बातें लिखते हैं।

१—गढ़वाल-अल्मोड़ा की राजवंशावली

कैपटेन हार्डविक ने सन् १७९६ में श्रीनगर-गढ़वाल के राजा प्रधूमन शाह से एक राज-वंशावली ली थी। वह एशियाटिक रीसर्चिज़ भाग प्रथम में छपी है। यह वंशावली उस राजवंश की प्रतीत होती है, जिस की राजधानी श्रीनगर रही होगी। इस वंशावली का आरम्भ बोधदन्त राजा से होता है। उस के पश्चात् १०० वर्ष तक के राजाओं के नाम और उन में से प्रत्येक का राज-काल लुप्त हो गया है। तत्पश्चात् सन् १७९६ तक ६० राजा हुए हैं।[1] उन सब का काल ३७७४ वर्ष ६ मास है। अर्थात् यह राजवंशावली ईसा से १९७८ वर्ष पूर्व से आरम्भ होती है।

इन्हीं पार्वत्य प्रदेशों के अन्तर्गत कमाऊँ देश के सम्बन्ध में फ़रिश्ता लिखता है—

रामदेव राठोर सन् ४४०–४७० तक राज करता था। उस का सामना कमाऊँ के राजा ने किया। कमाऊँ के इस राजा के पास उस का

1— The Himalayan Districts of the North-Western Provinces of India, by Edwin T. Atkinson. B. A., Vol: II. P, 445, 1884.

प्रान्त और मुकुट उन प्राचीन राजाओं से दायाद में आया था कि जिन की परम्परा में २००० वर्ष से अधिक से राज्य चला आता था।[1]

अर्थात्—कमाऊँ का यह राज्य १५०० पूर्व ईसा से तो अवश्य ही चला आया होगा।

२—काश्मीर की राज-वंशावली

काश्मीर की वंशावलीमात्र ही हमारे पास नहीं है, अपितु काश्मीर का तो एक विस्तृत इतिहास भी मिलता है। इस के लिए कल्हण पण्डित धन्यवाद का पात्र है। हम पहले कह चुके हैं कि कल्हण वराहमिहिर का अनुयायी था। अतः उसने कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर युधिष्ठिर का राज्य माना है।[2] परन्तु यह सत्य है कि उस के पूर्वज ऐसा नहीं मानते थे। वह स्वयं लिखता है—

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥[3]

अर्थात्—भारत युद्ध द्वापरान्त में हुआ था, ऐसा मान कर कई प्राचीन ऐतिहासिकों ने तभी से कालसंख्या की है।

कल्हण के अनुसार वे प्राचीन ऐतिहासिक ठीक न भी हों, पर हमारे अनुसार तो वही ठीक हैं। कल्हण एक और बात भी कहता है कि गोनन्द प्रथम से लेकर ५२ राजाओं का आम्नाय भ्रंश हो गया था। इस आम्नाय में से कुछ राजाओं के नाम और काल आदि की पूर्ति उस ने नीलमत पुराणादि से की है। तथापि ३५ राजाओं का आम्नाय उसे नहीं मिल सका। उस आम्नाय की पूर्ति महाराज जैनुलआबेदीन (सन् १४२३–१४७४) के ऐतिहासिक मुल्लाह अहमद ने एक रत्नाकर पुराण से की थी। मुल्लाह अहमद के ग्रन्थ की सहायता से कुछ काल हुआ हसन ने काश्मीर का इतिहास लिखा था। उस में से लुप्त राजाओं के वर्णन के भाग का अङ्ग्रेजी अनुवाद एशियाटिक सोसायटी बंगाल के शोधपत्र में छपा था।[4]

1—Dowson's Elliot Vol.V p. 561.
२—राजतरंगिणी १।५१ ॥
३—राजतरं १।४९ ॥
4—History of Kashmir by Pt. Anand Kaul Vol. VI. 1910, pp. 195-219.

उस सामग्री को और कल्हणकृत राजतरङ्गिणी को देख कर यह परिणाम निकलता है कि गोनन्द प्रथम जो श्रीकृष्ण का समकालीन था, कलिसंवत् के आरम्भ में ही हुआ होगा। अतः ३१०० पूर्व ईसा तक का काश्मीर का इतिहास अभी तक सुरक्षित है। यह सत्य है कि कल्हण के ग्रन्थ में अनेक बातों का उल्लेख रह गया है और कई राजाओं का काल संदिग्ध है, परन्तु इतने से उस के ग्रन्थ का वास्तविक मूल्य नष्ट नहीं होता। कलिसंवत् से पहले भी काश्मीर में अनेक राजा हो चुके थे। उन का इतिहास भी खोजा जा सकता है।

३—कामरूप की राजवंशावली

प्राचीन कामरूप ही वर्तमान आसाम है। कभी इसे चीन और वर्तमान चीन को महाचीन कहते थे।[1] प्राग्ज्योतिष इसी की राजधानी थी। दो सहस्र वर्ष पूर्व इस की सीमा बड़ी विस्तृत होगी। इसी देश का राजा भगदत्त महाभारत युद्ध में महाराज दुर्योधन का सहायक था। महाभारत में लिखा है—

स तानाजौ महेष्वासो निर्जित्य भरतर्षभ।
तैरेव सहितः सर्वैः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥३९॥
तत्र राजा महानासीद् भगदत्तो विशाम्पते।
तेनैव सुमहद्युद्धं पाण्डवस्य महात्मनः ॥४०॥
स किरातैश्च चीनश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्।
अन्यैश्च विविधैर्योधैः सागरानूपवासिभिः ॥४१॥[2]

अर्थात्—प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ था। भगदत्त के पिता का नाम नरकासुर और पितामह का नाम शैलालय था।[3] महाभारत युद्ध के समय भगदत्त बहुत वृद्ध था।

ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण आसाम की अनेक राजवंशावलियां अब तक मिलती हैं। वहां की भाषा में उन्हें बुरञ्जी कहते हैं। उन बुरञ्जियों

1—Hiuen Tsiang (A. D.629) Tr. by Samuel Beal 1906. vol. II. p. 198

२—महाभारत दाक्षिणात्य संस्करण, सम्पादक सुब्रह्मण्य शास्त्री सन् १९३२। सभापर्व अध्याय २४।

३—महाभारत आश्रमवासिकपर्व २१।१०॥

के अनुसार महाराज भगदत्त महाभारतकालीन था। उसके पिता नरकासुर और नरकासुर से भी पूर्व के कई राजाओं का वर्णन वहां मिलता है और भगदत्त से आगे तो इतिहास का क्रम अविच्छिन्न है। बुरञ्जियों में थोड़ा सा भेद तो अवश्य है, परन्तु मूल ऐतिहासिक तथ्य इन से सुविदित हो जाता है।[1]

इन बुरञ्जियों की मौलिक सत्यता को एक ताम्रपत्र का निम्नोद्धृत अंश भले प्रकार स्पष्ट करता है। यह ताम्रपत्र सन् १९१२ में मिला था। इसकी छाप और इसका अंगरेजी अनुवाद ऐपिग्राफिया इण्डिका सन् १९१३-१४ पृष्ठ ६५-७९ तक मुद्रित हुआ है। उस में लिखा है—

धात्रीमुज्ञिक्षिप्सोरम्बुनिधेः कपटकोलरूपस्य।
चक्रभृतः सूनुरभूत्पार्थिववृन्दारको नरकः ॥४॥
तस्मादहृष्टनरकान्नरकादजनिष्ट नृपतिरिन्द्रसखः[2]।
भगदत्तः ख्यातजयं विजयं युधि यः समाह्वयत ॥५॥
तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रगतिर्वज्रदत्तनामाभूत्।
शतमखमखण्डवलगतिरतोषयद्यः सदा संख्ये ॥६॥
वश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसहस्रत्रयं पदमवाप्य।
यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्म्माभूत् ॥७॥

अर्थात्—नरकासुर का पुत्र भगदत्त और भगदत्त का पुत्र वज्रदत्त[3] था। उस से ३००० वर्ष व्यतीत होने पर राजा पुष्यवर्मा हुआ।

ताम्रपत्र के अगले श्लोकों में पुष्यवर्मा के उत्तरवर्ती १२ राजाओं के नाम लिखे हैं। उन में अन्तिम राजा भास्करवर्मा अपरनाम कुमार-

---

१—इस विषय पर अधिक देखो—Assamese Historical Literature, article by Suryya Kumar Bhuyan M. A., Proceedings of the Fifth Indian Oriental Conference, Lahore, pp. 525—536.

२—द्रोणपर्व २९।४४॥ में इस भगदत्त को सुरद्विष और २९।५॥ में सखायमिन्द्रस्य तथा ३०।१॥ में प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायं—कहा गया है।

३—महाभारत, आश्वमेधिक पर्व ७५।२॥ में इस का नाम यज्ञदत्त कहा गया है। क्या कुम्भघोण संस्करण के पाठ में भूल हुई है? नीलकण्ठ टीका सहित मुम्बई संस्करण में वज्रदत्त ही पाठ है।

वर्मा है। इसी भास्करवर्मा का उल्लेख हर्षचरित और ह्यून्साङ्ग के यात्रा विवरण में मिलता है। इन १२ राजाओं का काल कम से कम ३०० वर्ष का होगा। ह्यून्साङ्ग लगभग सन् ६३०–४० तक भारत में रहा। तभी वह महाराज भास्करवर्मा से मिला होगा। इस प्रकार स्थूलरूप से गणना कर के महाभारत कालीन महाराज भगदत्त का थोडे से भेद के साथ लगभग वही काल निकलता है जो काल कि महाभारत युद्ध का हम पहले कह चुके हैं। कामरूप के राजाओं के सम्बन्ध में ह्यून्साङ्ग का निम्न-लिखित लेख भी ध्यान देने योग्य है—

उस काल से लेकर जब इस कुल ने इस देश का राज्य संभाला, वर्तमान राजा तक १००० (एक सहस्र) पीढ़ियां हो चुकी हैं।[1]

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में ५५९–५६८ श्लोक तक चीन के राजाओं का वर्णन है। यह वर्णन सम्भवतः प्रथम शताब्दी ईसा में होने वाले यक्षों के समकालिक राजाओं का है। जायसवाल इस वर्णन को सातवीं शताब्दी का मानता हैं, अस्तु। हम पृष्ठ १६ पर कह चुके हैं, कि वर्तमान आसाम ही कभी चीन कहाता था। जायसवाल का मत है कि मूलकल्प का चीन तिब्बत था। मूलकल्प में चीन के राजा हिरण्यगर्भ अथवा वसुगर्भ का वर्णन है। इस चीन के पूर्ण निर्णय की आवश्यकता है। स्मरण रहे कि मूलकल्प के ९१३ और ९१५ श्लोक में कामरूप का पृथक् उल्लेख हैं।

उद्योग पर्व १३०।५८॥ के अनुसार नरकासुर बड़ा दीर्घजीवी था। इसे श्रीकृष्ण ने मारा था। द्रोणपर्व २९।४४॥ में उस के मारने आर प्राग्ज्योतिष से श्रीकृष्ण के मणि, कुण्डल और कन्याएं लाने का उल्लेख है।

अस्तु, इस सम्बन्ध में हम इतना और कहेंगे कि कामरूप का इतिहास अध्ययनविशेष चाहता है। इसक पाठ से भारतीय इतिहास की अनेक ग्रन्थियां सुलझेंगी।

१—बील का अङ्गरेजी अनुवाद, पृ० १९६। थामस वाटर्स के अनुवाद में भी यही बात लिखी है—

The sovereignty had been transmitted in the family for 1000 generations. Vol. II. p. 186.

४—इन्द्रप्रस्थ की राजवंशावली

यह वंशावली श्री स्वामी दयानन्दसरस्वती रचित सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास के अन्त में छपी है। इस का मूल विक्रम संवत् १७८२ का एक हस्तलेख था। इसी से मिलती जुलती एक वंशावली दयानन्द कालेज के लालचन्द पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष पं० हंसराज ने लाहौर के एक ब्राह्मण के पास देखी थी। खुलासतुत् तवारीख नाम का एक इतिहास फारसी भाषा में है। उस में देहली साम्राज्य का इतिहास है। कर्ता उस का मुंशी सुजानराय पञ्जावान्तर्गत बटाला नगर निवासी था। इस का रचना-काल सन् १६३५ है। उस में यही वंशावली स्वल्प भेद के साथ मिलती है। कर्नल टाड ने सन् १८२९ में राजस्थान का इतिहास प्रकाशित करवाया था। उसकी दूसरी सूची में कुछ पाठान्तरों के साथ यही वंशावली मिलती है। तदनुसार परीक्षित से लेकर विक्रम तक ६६ राजा हुए हैं।

कर्नल टाड की वंशावली का मूल एक राजतरङ्गिणी=वंशावली थी। वह जयपुर क महाराज सवाई जयसिंह के सामने सन् १७४० में पण्डित विद्याधर और रघुनाथ ने एकत्र की थी। उस के लेखक का कहना है—

मैंने अनेक शास्त्र पढ़े हैं। उन सब में युधिष्ठिर से ले कर पृथ्वीराज तक इन्द्रप्रस्थ के राजसिंहासन पर १०० क्षत्रिय राजा लिखे हैं। उन सब का राज-काल ४१०० वर्ष था।

इस वंशावली के अनुसार युधिष्ठिर से ले कर खेमराज=क्षेमक तक १८६४ वर्ष होते थे। उतने काल में २८ राजाओं ने राज्य किया था।

सत्यार्थप्रकाशस्थ वंशावली के अनुसार संवत् १२४३ तक इन्द्रप्रस्थ के राजसिंहासन पर १२४ राजा बैठे थे। उन का राजकाल ४१५७ वर्ष ९ मास और १४ दिन था। युधिष्ठिर उन सब में पहला राजा था। इस वंशावली की गणना के अनुसार महाभारत युद्ध को हुए कुछ कम उतने ही वर्ष होते हैं जितने कि हम पूर्व लिख चुके हैं।

इस वंशावली के अन्तिम भाग से कुछ मिलती हुई एक वंशावली

आईने-अकवरी के सूबा देहली के वर्णन में मिलती है। विष्णुपुराण चतुर्थांश अध्याय २१ में इसी वंशावली के आरम्भ भाग के कुछ राजाओं के नाम दिए हैं। सत्यार्थप्रकाश की वंशावली का प्रथम वंश युधिष्ठिर से आरम्भ होकर क्षेमक पर समाप्त होता है। पुराण में भी इस वंश की समाप्ति क्षेमक पर ही है। परन्तु बीच के राजाओं में बहुत भेद है। जहां सत्यार्थप्रकाश की वंशावली में कुछ राजा रह गए हैं, वहां पुराणान्तर्गत वंशावली में कुछ राजाओं के नाम अधिक हैं और बहुत से दूसरों के नाम रह गए हैं। ब्रह्माण्ड, वायु आदि दूसरे पुराणों में भी इस पौरव वंश का वर्णन मिलता है। पुराणान्तर्गत पौरव वंश और सत्यार्थप्रकाशस्थ पौरव वंश में एक भेदविशेष ध्यान देने योग्य है। पुराणों में इस वंश का राज-काल लगभग १००० वर्ष है और सत्यार्थप्रकाश में १७७० वर्ष ११ मास १० दिन है।

इसी सन् १९३४ के मध्य में हमारे सुहृद श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने काशी से एक पुराना पत्रा हमारे पास भेजा था। उस पर क्षेमक तक राजाओं के नाम और उनका राज्यकाल लिखा है। इस पत्रे पर इन्हीं राजाओं के "लोकनाम" भी लिखे हैं। क्षेमक तक राजाओं का काल-मान १५८७ वर्ष और ६ दिन लिखा है। यह वंशावली संभवतः कलि के ३८७३ वर्ष में किसी ने लिखी होगी। उस पत्र पर "कलियुगगत" ३८७३ वर्ष दिया है। पुनः लिखा है कि २२८६ वर्ष, और ११ दिन "पीढी की तलासी मुनासब करणी। ८२९ संवत् वैसाख सुदी १३ दिल्ली वसी।" अन्तिम लेख किसी नए व्यक्ति ने लिखा होगा।

इन्द्रप्रस्थ पाण्डवों की राजधानी थी। कौरव राजधानी हस्तिनापुर थी। इस हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठने वाले युधिष्ठिर अथवा दुर्योधन के पूर्वज अनेक राजाओं का इतिहास महाभारत आदि में मिलता है। उस सब को देखकर यही निश्चय होता है कि शृंखलाबद्ध भारतीय = आर्य इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन है, और कलिसंवत् के सहस्रों वर्ष पूर्व से क्रमवार लिखा जा सकता है, तथा यह उतने प्राचीन काल तक का मिलता है, जितने का कि अन्य किसी देश का नहीं मिलता।

५—बीकानेर की राजवंशावली

एक राजवंशावली बीकानेर की मिलती है। सन् १८९८ में जो तारीख रियासत बीकानेर छपी थी, उस में पृ० ५१३ से आगे यह वंशावली मिलती है। इस की तथ्यता को जानने का अभी तक कोई काम नहीं हुआ। बीकानेर एक नवीन राज्य है, अतः वहां की वंशावली इतनी पुरानी नहीं हो सकती। इस वंशावली में १२२वां राजा सुमित्र है। यह वही सुमित्र है, जिस पर इक्ष्वाकुओं की पौराणिक वंशावली समाप्त होती है। पौराणिक वंशावली के सुमित्र से पूर्व के प्रायः सारे नाम इस में मिलते हैं। प्रतीत होता है कि अपने आपको इक्ष्वाकु वंश का सिद्ध करने के लिए किसी ने यह वंशावली इस ढंग पर बनवाई है। इस के अगले नामों पर हम विचार नहीं कर सके। क्या सम्भव हो सकता है कि इस के अगले नामों में से कुछ राजाओं के नाम कल्पित भी हों। इस वंशावली में सन् १८९८ तक २८६ राजा दिए हैं। हम ने इस का उल्लेख यहां इसी अभिप्राय से किया है कि इस वंशावली पर अधिक विचार किया जा सके। स्मरण रहे कि आधुनिक काल के अनेक रियास्तों के राजाओं ने अपने कुलों को प्राचीन सिद्ध करने के लिए ऐसी ही अनेक वंशावलियां बनवा रखी हैं। परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि महाभारत और पुराणान्तर्गत वंशावलियां भी कल्पित हैं।

६—पुराणान्तर्गत मगध-राजवंशावली

ब्रह्माण्ड, मत्स्य, विष्णु आदि पुराणों में कलिकाल में राज करने वाले मगध के राजाओं की एक वंशावली मिलती है। उस का आरम्भ महाभारत युद्ध में परलोक सिधारने वाले सहदेव के पुत्र सोमाधि या मार्जारी से होता है। सोमाधि से लेकर रिपुञ्जय तक २२ राजा हुए हैं। उन का राजकाल १००६ वर्ष था। पुराणों में वर्षसंख्या १००० दी है। इस वंश का नाम बार्हद्रथ वंश है। बार्हद्रथवंश के पश्चात् पुराणों में प्रद्योतवंश का उल्लेख है। सम्भवतः यह प्रद्योत वंश उज्जैन के राजसिंहासन पर राज करता था। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में इसी प्रद्योत को चण्ड कहा है। इस से प्रतीत होता है कि पुराणों में मगध-राजवंश का शृंखला-बद्ध वर्णन नहीं

किया गया। प्रद्योत वंश के पश्चात् शैशुनाग वंश का वर्णन पुराणों में मिलता है। इसी वंश का छठा राजा अजातशत्रु था। उस के आठवें राज-वर्ष में बुद्ध का निर्वाण माना जाता है।

पुराणस्थ वंशों में बहुत हस्तक्षेप हुआ है। इक्ष्वाकु वंश का वृत्तान्त देखने से यह ज्ञात हो जाएगा। पार्जिटर के अनुसार इक्ष्वाकु वंश में बृहद्बल से आरम्भ कर के ३१ राजा हुए थे। उन में २३वां शाक्य, २४वां शुद्धोदन, २५वां सिद्धार्थ, २६वां राहुल, २७वां प्रसेनजित् आदि हैं। परन्तु पुराणों के श्लोक जो समानकालीन राजाओं का उल्लेख करते हैं, २४ इक्ष्वाकु राजा बताते हैं। उन का राज-काल १००० वर्ष था। पुराणानुसार इक्ष्वाकु वंश में शाक्य से पूर्व २२ राजा हैं। हमने विष्णुपुराण के अनेक हस्तलेख देखे हैं। उन में से कई एक में २३ राजा दिए हैं। सम्भव है कि एक राजा का नाम और भी लुप्त हो गया हो। इस प्रकार यही २४ राजा १००० वर्ष तक राज कर चुके होंगे। पीछे किसी बुद्ध-भक्त ने शाक्यों का वंश भी उसी में जोड़ दिया होगा। यह बात इसलिए भी युक्त-प्रतीत होती है कि पुराणों और दूसरे आर्य ग्रन्थों के अनुसार बुद्ध या सिद्धार्थ महाभारत युद्ध के १००० वर्ष से कहीं पीछे हुआ था।

इतने लेख से यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि शैशुनाग वंश बृहद्रथ वंश के या प्रद्योत वंश के ठीक पश्चात् नहीं हुआ। शैशुनाग वंश का छठा राजा अजातशत्रु तो प्रद्योत का समकालीन था। अतः यह निश्चित है कि बृहद्रथ वंश के पश्चात् बहुत से काल का इतिहास पुराणों से लुप्त हो गया है, या किसी कारणविशेष से इन में लिखा ही नहीं गया।

यदि पुराणों की इक्ष्वाकु-वंशावली सत्य मान ली जाए तो सिद्धार्थ=बुद्ध जो २५वां राजा माना गया है, महाभारत युद्ध के ९०० वर्ष पश्चात् हुआ होगा। दूसरी ओर यदि शैशुनाग वंश को बार्हद्रथ वंश के ठीक पश्चात् माना जाए, तो पुराणों के ही अनुसार बुद्ध का समकालीन शैशुनाग वंशीय बिम्बसार महाभारत के ११०० वर्ष पश्चात् हुआ होगा। क्योंकि शैशुनाग वंशीय ५ राजाओं का काल कम से कम १०० वर्ष होगा। इस में

भी यही निर्णय होता है कि पुराणस्थ मागध-वंशों का वृत्तान्त क्रम-पूर्वक नहीं है, प्रत्युत उस में कोई बड़ा विच्छेद हो गया है।

इस विच्छेद का एक संकेत मैगस्थनीज के लेख में मिलता है। वहां लिखा है—

From the time of Dionysos (or Bacchus) to Sandrakottos the Indians counted 153 kings and a period of 6042 years, but among these a republic was thrice established——and another to 300 years, and another to 120 years.[1]

अर्थात्—वेक्कस के काल से अलक्षेन्द्र के काल तक भारतीय लोग १५३ राजा गिनते हैं। उन का राज-काल ६०४२ वर्ष था। इस अन्तर में तीन वार प्रजातन्त्र या गणराज्य स्थापित हुआ था। पहले गण-राज्य का काल कृमिभुक्त हो गया है। दूसरा गणराज्य ३००वर्ष तक और तीसरा १२० वर्ष तक रहा।

मैगस्थनीज के लेखानुसार वेक्कस कलि के आरम्भ से कोई ३२६० वर्ष पूर्व हुआ होगा। और मैगस्थनीज का संकेत मगध के राजवंशों की ओर ही होगा, क्योंकि वह मगध से विशेषतया परिचित था। अब यदि ये गणराज्य कलि-आरम्भ से पहले हों, तो हम कुछ नहीं कह सकते, परन्तु यदि पीछे हों तो सम्भव है कि बार्हद्रथवंश के ही पश्चात् हुए हों। उस अवस्था में नन्द से पूर्व इन का भी कुछ काल गिना जा सकता है।

नन्द से पूर्व और बार्हद्रथवंश के पश्चात् पुराणों के मागधवंशों में कुछ विच्छेद हुआ है, यह सत्यार्थप्रकाश की वंशावली के देखने से भी सुविदित होता है। अन्तिम बार्हद्रथ राजा के समकालीन पौरववंशीय क्षेमक के पश्चात् बुद्ध के काल तक इन्द्रप्रस्थ की इस वंशावली में कोई ९०० वर्ष का अन्तर अवश्य है। उस काल के राजाओं का पुराण में वर्णन नहीं मिलता। इस से दो ही परिणाम निकल सकते हैं। प्रथम यह कि इन्द्रप्रस्थ की वंशावली में ये राजा कल्पित हैं, और द्वितीय यह कि पुराणों में उस काल के राजाओं का उल्लेख नहीं है। अन्य आर्य ऐतिह्य को दृष्टि में रख कर हम ने दूसरा परिणाम ही स्वीकार किया है।

1—Indika of Arrian ch. IX.

इस प्रकार यह निश्चित है कि जो आधुनिक ऐतिहासिक मगध की राज-वंशावलियों से महाभारत का काल १४००–१५०० पूर्व विक्रम बताते हैं, वे इस बात को ठीक रूप से नहीं समझे। इन पुराणस्थ वंशों के बहुत अधिक शोधन की आवश्यकता है।

पार्जिटर और पुराणों के आधार पर भारत-युद्ध काल

प्राचीन भारतीय ऐतिह्य के पृ० १८२ पर पार्जिटर ने लिखा है कि भारत-युद्ध-काल ईसा से ९५० वर्ष पहले था। पौराणिक वंशावलियों को अपने अभिप्रायानुकूल बना कर उन्होंने यह परिणाम निकाला है। उन्हीं वंशावलियों के आधार पर श्री जायसवाल का यह परिणाम है कि भारत युद्ध ईसा से १४२४ वर्ष पूर्व हुआ। ये दोनों महाशय अत्यन्त यत्नशील होने पर भी तथ्य को नहीं देख सके। विस्तरभय से इस विषय पर हम यहां अधिक नहीं लिख सके।

७—नेपाल की राजवंशावली

यह वंशावली सब से पहले कर्नल किर्कपैट्रिक के नेपाल के वर्णन में छपी थी।[1] उक्त कर्नल ने सन् १७९३ में उस देश की यात्रा की थी। उसी यात्रा का फल यह ग्रन्थ था। तत्पश्चात् मुन्शी शिवशङ्करसिंह और पण्डित श्रीगुणानन्द ने पार्वतीय भाषा से नेपाल के इतिहास का अनुवाद किया था। उस अनुवाद का सम्पादन डेविअल राईट ने सन् १८७७ में किया। उस इतिहास में नेपाल की राजवंशावली का अनुवाद छपा है। फिर सन् १८८४ की इण्डियन अण्टीक्वेरी में पण्डित भगवानलाल इन्द्रजी ने एक और संक्षिप्त वंशावली मुद्रित की थी।[२] पुनः सैसिल बैण्डल ने नेपाल दरबार के ताड़पत्रों के सूचीपत्र के आरम्भ में एक प्राचीन राजवंशावली का उल्लेख किया है।[3] उन का कहना है कि यह वंशावली राजा जयस्थितिमल्ल

1—An account of the Kingdom of Nepal.

२—पृ० ४११–४२८।

3—A Catalogue of palm-leaf and selected paper Mss. belonging to the Durbar Library Nepal, Calcutta, 1905.
इसका ऐतिहासिक भाग सन् १९०३ में एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हो गया था।

(सन् १३८०–१३९४) के समय में लिखी गई होगी, क्योंकि इस की समाप्ति उस राजा पर होती है। इस से कहना पड़ता है कि दूसरी वंशावलियों की अपेक्षा इस वंशावली के लिखे जाने का काल बहुत पुराना है। इन सब के पश्चात् हमारे सुहृद् वयोवृद्ध श्री सिल्वेन लेवी ने फ्रांस देश की भाषा में नेपाल का इतिहास लिखा। यह इतिहास तीन भागों में है, और सन् १९०५–१९०८ तक प्रकाशित हुआ था।

इन सब वंशावलियों से यही पता लगता है कि नेपाल का राज्य बड़ा प्राचीन था। उस का आरम्भ कलियुग से बहुत पहले से हुआ था। यही नेपाल की वंशावलियां हैं, जिन में कलिगत संवत् का प्रयोग बहुधा हुआ है।

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में श्लोक ५४९–५५८ तक नेपाल के इतिहास का प्रसंग है। नेपाल में लगभग प्रथम शताब्दी के समीप लिच्छवी कुलोत्पन्न कोई मानवेन्द्र या मानवदेव राजा था। इन श्लोकों में अन्य अनेक राजाओं के नाम भी लिखे हैं। मूलकल्प की सहायता से नेपाल के अनेक राजाओं की तिथियां जो अबतक कल्पित की गई थीं, बदलनी पड़ेंगी।

अपनी वंशावली के सम्बन्ध में भगवानलाल इन्द्रजी ने लिखा है—

यह स्पष्ट है कि इस वंशावली में कई बातें ऐतिहासिक रूप से सत्य हैं, परन्तु समग्र वंशावली किसी काम की नहीं है।

भगवानलाल इन्द्रजी का यह लिखना कुछ आग्रह करना है। माना कि इन वंशावलियों में बहुत बातें आगे पीछे हो गई हैं और कई बातों में भूल भी हुई है, परन्तु इतने मात्र से सारी वंशावली को निरर्थक कहना उचित नहीं।

८—त्रिगर्त की राजवंशावली

पुरातत्त्व के विद्वान् जैनरल कनिंघम ने त्रिगर्त की कई राजवंशावलियां प्राप्त की थीं।[1] वे वंशावलियां बहुत पुराने काल तक जाती थीं, अतः कनिंघम को उन पर विश्वास नहीं हो सका। काङ्गड़ा और

1— Archeological Report, 1872—1873, by A. Cunningham, 1875, p. 150.

जालन्धर ज़िला के गैज़ेटियर्स में इन्हीं वंशावलियों का उल्लेख है। सन् १९१९ में ऐसी ही एक वंशावली हमने ज्वालामुखी से प्राप्त की थी। यह वहां के प्राचीन पुरोहितगृह से हमने स्वयं ढूंढी थी। पुरोहितों के कुल में पण्डित दीनदयालु विद्यमान हैं। वही हमें अपने घर ले गए थे। इस वंशावली के साथ काङ्गड़ा के वर्तमान छोटे २ राज्यों की भी कई वंशावलियां हैं।

इस वंशावली के साथ एक और पत्र भी हमें वहीं से मिला था। उस का ऐतिहासिक मूल्य बहुत अधिक है। किसी काल में वहां अनेक ऐसे पत्र रहे होंगे। यदि वे सब मिल जाते, तो हमारे इतिहास का बड़ा कल्याण होता। परन्तु खेद है कि वे हमें नहीं मिल सके। उस पत्र पर लिखे हुए कुछ श्लोक हम नीचे देते हैं—

भूमिचन्द्रं समारभ्य मेघचन्द्रान्तमुच्यते।
चतुःशतं क्षितीन्द्राणामेकपञ्चाशदुत्तरम् ॥१॥
त्रिलोकचन्द्रतनयं हरिश्चन्द्रनृपावधि।
चतुःशतं पुनस्तेषां चतुःषष्ट्युत्तरं मतम् ॥२॥
मेघचन्द्राद्वीजिपुंसः कुलमासीदनेकधा।
मनोरिव क्षितीन्द्राणां विचित्रचरिताश्रयम् ॥३॥
ज्येष्ठः पुत्रः कर्म्मचन्द्रो मेघचन्द्रस्य कथ्यते।
सुप्रतिष्ठं तस्य कुलं कोटे नगरपूर्वके ॥४॥
द्वितीयो मेघचन्द्रस्य हरिश्चन्द्रः सुतो मतः।
गोपाचले प्रपेदेऽस्य सन्ततिर्वसतिर्ध्रुवम् ॥५॥
जालन्धरधराधीश–धर्म्मचन्द्रमहीभृतः।
लक्ष्मीचन्द्रपूर्वतोऽभूत् पञ्चविंशत्तमो नृपः ॥१०॥

एवं देव्याः कुलमुपययौ वृद्धिमत्यूर्जितश्रि
स्थाने स्थाने विपयवसतो जातनानाविधानम्।
विश्वख्यातं विमलयशसा देवतांशानुभावान्
नो सम्भाव्यं तदनुसरणं तद्विभिन्नान्वयेन ॥११॥

अर्थात्—त्रिगर्त के आदि राजा भूमिचन्द्र से लेकर मेघचन्द्र तक ४५१ राजा हुए हैं। तत्पश्चात् त्रिलोकचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र तक

४६४ राजा हुए हैं। मेघचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र कर्मचन्द्र (४५२) था। उस का कुल नगरकोट में सुप्रतिष्ठित था। ४५१ संख्या वाले मेघचन्द्र का दूसरा पुत्र हरिश्चन्द्र गोपाचल=गुलेर में राजा हुआ। उस के पुत्र पौत्र वहीं पर राज करने लगे। ४५९ संख्या का राजा धर्मचन्द्र था। वह जालन्धर का भी राजा था। उस से २५ पीढ़ी पहले अर्थात्—४३४ संख्या का राजा लक्ष्मीचन्द्र था।

४५७ संख्या वाले प्रयागचन्द्र के विषय में उसी पत्र पर पुनः लिखा है—

श्रीरामचन्द्रोऽजनि जागरूकः प्रयागचन्द्रस्य सुतोऽवनीशः।
विन्ध्यादिकानां जगतीधराणां गुहा यदीयारिगृहा बभूवुः ॥१॥
आसीदथैतत्समकालमेव पपुर्वढाणोर्जितवंशदीपः।
सेकन्दराख्यो यवनाधिराजस् त्रिगर्तदुर्गग्रहणे प्रवृत्तः ॥२॥
द्वाविंशतिर्यस्य महाध्वजिन्यः पर्य्यायतो म्लेच्छपतेर्विलीनाः।
प्रयागचन्द्रात्मजबाहुवीर्य्ये वर्षाणि तावन्ति युधि प्रवृत्ताः ॥३॥
यो ब्रह्मखानो ऽजनि सूनुरस्य स पूर्ववन्नीतिपथं न भेजे।
विशीर्य्यदैश्वर्य्यनिसर्ग एष नूनं यदुन्मार्गगतिः प्रभूणाम् ॥४॥
प्राचीनदिल्लीपतिपारिजात-रत्नाकरे म्लेच्छवरिष्ठवंशे।
वीरस्ततो वावर आविरासीज्जिहीर्षुरस्माद्वसुधाधिपत्यम् ॥५॥
सहायमासाद्य स पारसीकराजजयोद्योगपरो बभूव।
सेकन्दरस्यापि सुतस्तदानीं स रामचन्द्रं वृतवान् सहायम् ॥६॥
स बद्धवैरोपि सदैव तेन विपद्यभूत्तस्य सहाय एव।
संसप्तकानां कुलधर्म एष यदापदि द्वेषिकुलोपकारः ॥७॥
पाणीपथभुवि प्रवृत्तमसमं युद्धं तयोर्म्लेच्छयो-
    र्लेभे भद्रं च बावरोरिविजयं दृष्ट्वारिवंशान्तकः।
यस्मिन्संगरमूर्द्धनि क्षितिपतिः श्रीरामचन्द्रो यश-
    स्तेने निर्मलमेष यत्समुचितं संसप्तकानां कुले ॥
सुशर्मवंशप्रभवक्षितीन्द्रावतंसरूपः खलु रामचन्द्रः।
जगाम वीरेन्द्रगतिं स्वदेहं रणे परित्यज्य विशुद्धबुद्धिः ॥

अर्थात्—इन श्लोकों में ४५८ संख्या वाले राजा रामचन्द्र का वर्णन है। यह प्रयागचन्द्र का पुत्र था। इस का समकालीन दिल्लीपति सिकन्दर लोधी था। सिकन्दर ने नगरकोट के राजा से कई युद्ध किए, परन्तु सदा हारता रहा। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उस के पुत्र इब्राहीम लोधी ने पानीपत के युद्ध में त्रिगर्त के राजा रामचन्द्र की सहायता ली। उस युद्ध में बाबर की विजय हुई, और रामचन्द्र युद्ध में ही मारा गया।

यह युद्ध १८ एप्रिल सन् १५२६ को समाप्त हुआ था।[1] इस से निश्चित होता है कि राजा रामचन्द्र की मृत्यु सन् १५२६ में हुई थी। कनिंघम और काङ्गड़ा गैज़ेटियर के लेखक का मत है कि राजा रामचन्द्र की मृत्यु सन् १५२८ में हुई। उन्होंने किस प्रमाण से ऐसा लिखा, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका।

मन्त्रार्थदीपिका का कर्ता शत्रुघ्न अपने मङ्गलश्लोकों में लिखता है—

बभूव राजन्यकुलावतंसः पुरा सुशर्मा किल राजसिंहः।
निहत्य यो भारतसंयुगेषु चकार भूमीधरभूमिरक्षाम् ॥३॥
तदन्वये यो महनीयकीर्तिः सुवीरचन्द्रः क्षितिपः किलासीत्।
चकार यः संयुगयज्ञभूमौ पशूनशेषानिव वैरिवीरान् ॥४॥
तस्मादसीमगुणसिन्धुरशेषबन्धुरासीत्समस्तजनगीतभुजप्रतापः।
श्रीदेवकीतनयपादरतः प्रयागचन्द्रः प्रजानयनरञ्जनपूर्णचन्द्रः ॥५॥

अर्थात्—सुशर्मा की कुल में सुवीरचन्द्र राजा हुआ। उस का पुत्र प्रयागचन्द्र था।

वंशावली में यह प्रयागचन्द्र संख्या ४५७ वाला है। अतः सुवीरचन्द्र संख्या ४५६ वाला हुआ। इन से पूर्व के भी कई राजाओं का वर्णन मुसलमानी इतिहासों में मिलता है। कल्हण पण्डित राजतरंगिणी में लिखता है कि काश्मीर के राजा शङ्करवर्मा ने त्रिगर्त के राजा पृथ्वीचन्द्र को हराया।[2] वंशावली में इस पृथ्वीचन्द्र का नाम हमें नहीं मिला। बहुत सम्भव है कि यह जालन्धर अथवा त्रिगर्तान्तर्गत किसी छोटी रियासत का

1—The Cambridge H. of India Vol. III. 1928, p. 250.
२—राजतरंगिणी ५।१४३, १४४॥

राजा हो। अथवा त्रिगर्त के किसी राजा का भाई आदि हो और त्रिगर्तों का सेनापति हो। पृथ्वीचन्द्र के पुत्र भुवनचन्द्र का नाम भी वहां मिलता है।

महाभारत द्रोणपर्व अध्याय २८–३० में सुशर्मा और उस के भ्राताओं का वर्णन है। वे सब पांच भाई थे। नाम थे उन के सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधनु और सुबाहु। पुनः आश्वमेधिक पर्व अध्याय ७४ में त्रिगर्तों के राजा सूर्यवर्मा का नाम मिलता है। इसी ने अर्जुन का घोड़ा रोका था। उस के दो भाई केतुवर्मा और धृतवर्मा थे। वंशावली में सुशर्मा के पश्चात् श्रीपतिचन्द का नाम लिखा है। यह श्रीपतिचन्द सूर्यवर्मा ही होगा।

हम यहां त्रिगर्त देश का इतिहास लिखने नहीं बैठे। अतः इस विषय पर अधिक विस्तार से नहीं लिख सकते। यहां तो दो चार मूल बातों का ही उल्लेख आवश्यक है। इस वंशावली में राजा रामचन्द्र तक ४५८ राजा हुए हैं। रामचन्द्र सन् १५२६ में परलोक सिधारा। इस वंशावली में २३१वां राजा सुशर्मा या सुशर्मचन्द्र था। इस सुशर्मा ने महाभारत युद्ध में भाग लिया था। इस सुशर्मा से पहले २३० राजा हो चुके थे। यदि सुशर्मा से लेकर प्रत्येक राजा का काल २० वर्ष भी माना जाए, तो इस वंशावली के अनुसार भी महाभारत युद्ध का वही काल निश्चित होता है, जो हम पूर्व कह चुके हैं। इस वंशावली के सम्बन्ध में इतना और प्रतीत होता है कि इस में राजाओं के साथ उन के भाईयों के नाम भी मिल गये हैं।

नगरकोट में प्राचीन राजवंशावलियां सुरक्षित थीं, यह अलबेरूनी के लेख से भी ज्ञात होता है। उस के लेख का भावार्थ हम नीचे देते हैं—

काबुल के शाहिय राजा एक के पश्चात् दूसरा लगभग ६० हुए थे। उन का इतिहास नहीं मिलता। परन्तु कई लोग कहते हैं कि नगरकोट दुर्ग में इन राजाओं की वंशावली रेशम पर लिखी हुई विद्यमान है।

जब काबुल के राजाओं की इतनी पुरानी वंशावली नगरकोट में हो सकती थी, तो त्रिगत के राजाओं की अपनी वंशावली भी अवश्य

सुरक्षित रखी गई होगी। हमारा अनुमान है कि जो वंशावली हमारे पास है, यह उसी वंशावली की नकल है। इस के अनुसार तो महाभारत से भी पांच छः सहस्र वर्ष पूर्व से त्रिगर्त का इतिहास मिल सकता है।

राजवंशावलियों पर एक सामान्य दृष्टि

इन राजवंशावलियों में कई भूलें हो चुकी हैं। यह हम पहले भी लिख चुके हैं। परन्तु हम जानते हैं कि इन की सहायता से प्राचीन इतिहास का निर्माण किया जा सकता है। जो लोग इन को उपेक्षा-दृष्टि से देखते हैं, वे भारतीय इतिहास के एक मूल स्रोत को परे फेंक देते हैं, जब अनेक वंशावलियों की कई बातें शिलालेखों से सिद्ध हो जाती हैं, तो भूलें होने पर भी इन वंशावलियों की उपादेयता में भेद नहीं पड़ता, प्रत्युत वंशावलियों के लेख शिलालेखों का भाव जानने में सहायक हो सकते हैं।

अभी सन् १९२५ में **आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प** नाम के एक बौद्ध तन्त्रग्रन्थ का अन्तिम भाग त्रिवन्द्रम से मुद्रित हुआ है। उस में एक सहस्र श्लोकों को लिख कर भारतीय इतिहास पर बड़ा प्रकाश डाला गया है। बुद्ध के काल से लेकर सातवीं शताब्दी ईसा तक का एक क्रमबद्ध इतिहास इस ग्रन्थ में मिलता है। उस के पाठ से ज्ञात होता है कि मूल-कल्प के लेखक के पास एक परिपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री थी। उस ग्रन्थ में बुद्ध से पूर्व के भी अनेक राजाओं के नाम हैं। यदि बुद्ध के काल से लेकर आगे नाम कल्पित नहीं हैं, तो बुद्ध से पूर्व के राजाओं के नाम भी ऐतिहासिक ही हैं। श्री जायसवाल जी धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने हमारे मित्र श्री राहुल सांकृत्यायन की सहायता से मूलकल्प का सुसम्पादन कर दिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने इस पर टिप्पणी लिख कर और भी उपकार किया है। यद्यपि हम उन की टिप्पणी की अनेक बातों से सहमत नहीं, परन्तु उन के ग्रन्थ का बड़ा उपकार मानते हैं।[1]

वास्तविक बात यह है कि प्राचीनकाल और मध्यकाल में प्रत्येक

1—An Imperial History of India, published by Moti Lal Banarsi Dass, Said Mitha, Lahore, 1934.

आर्यराजा अपने सरस्वती भण्डार में ऐसी सामग्री तय्यार करवाता रहता था, जो उस का अपना इतिहास हो।

अनेक राजाओं के काल की ऐसी ही सामग्री जब एक स्थान में एकत्र कर दी जाती थी, तो वही उन राजाओं का एक शृङ्खलाबद्ध इतिहास हो जाता था। पुनः उसी के आश्रय से राजवंशावलियां भी पूर्ण होती रहती थीं। कालक्रम से इन वंशावलियों में कुछ भूलें प्रविष्ट हो गई हैं, ऐसा देखा जाता है। परन्तु सब वंशावलियां निर्मूल हैं, ऐसा कहना एक बड़ी धृष्टता है।

कई लोग इन वंशावलियों को इस लिए भी उपेक्षादृष्टि से देखते और इन पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि इन में युधिष्ठिर के काल से लेकर अगले राजाओं का राज-काल निरन्तर लम्बा लम्बा लिखा है। आधुनिक ऐतिहासिक के लिए यह एक आश्चर्य की बात हो जाती है कि यह राजा इतने लम्बे काल तक कैसे राज्य करते रहे। इस लिए वह इन वंशावलियों को निरर्थक समझ कर फेंक देता है। प्राचीन राजाओं का राज्य-काल लम्बा होता था, इस विषय में मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर का लेख देखने योग्य है। वह सन् ८५१ में अपने ग्रन्थ में लिखता है—

इन के यहां अरब निवासियों की तरह तारीख़ की गणना हज़रत मुहम्मद साहब के समय से नहीं है, बल्कि तारीख़ का सम्बन्ध राजाओं के साथ है। इन के बादशाहों की आयु प्रायः बहुत हुआ करती है। बहुत से बादशाहों ने प्रायः पचास पचास वर्ष तक राज्य किया।[1]

सुलेमान के इस लेख से पता लगता है कि नवम शताब्दी ईसा के आरम्भ में भी भारत के अनेक राजा प्रायः पचास पचास वर्ष तक राज्य करते थे। हम यह भी जानते हैं कि महाभारत काल में आजकल या आज से दो सहस्र वर्ष पहले की अपेक्षा भी लोगों की आयु कहीं

१—सुलेमान सौदागर, भाषानुवाद, मौलवी महेशप्रसादकृत, पृ० ५०—५१। संवत् १९७८।

अधिक होती थी। भगवान् श्रीकृष्ण वासुदेव का निर्वाण १२० वर्ष की अवस्था में हुआ। तब महाराज युधिष्ठिर को राज्य करते करते ३६ वर्ष हो चुके थे। उस समय भी युधिष्ठिर ने अपनी इच्छा से राज्य छोड़ा था। युद्ध के समय महाराज युधिष्ठिर का आयु लगभग सत्तर वर्ष था। इन के पश्चात् भी देर तक राजा लोग दीर्घजीवी रहे। कई वार पिता के पश्चात् पुत्र सिंहासन पर नहीं बैठा, प्रत्युत पौत्र बैठा। इस प्रकार प्रत्येक राजा का राज्य-काल निरन्तर दीर्घ ही रहा। इस पर भी हम मानते हैं कि वंशावलियों के इस प्राचीन काल में कुछ भूलें हो गई हैं, परन्तु हर एक राजा के लम्बे काल को देखकर इन वंशावलियों पर जितना सन्देह आधुनिक ऐतिहासिक करते हैं, वह सब निराधार है। ऐसा सन्देह करने वाले ऐतिहासिकों को सुलेमान का लेख ध्यान से पढ़ना चाहिए। मूलकल्प में भी अनेक पुराने राजाओं का राज्काल लम्बा ही दिया है।

मैगस्थनीज़ का जो लेख मगध की राजवंशावली के प्रकरण में पहले उद्धृत किया गया है, तदनुसार प्रत्येक राजा का राज्य-काल लगभग ३४ वर्ष पड़ता है। मैगस्थनीज़ के काल में आजकल की अपेक्षा भारतीय लोग अपने इतिहास को बहुत अधिक जानते थे। अतः मैगस्थनीज़ के इस लेख पर सहसा अविश्वास नहीं हो सकता। वस्तुतः ही प्राचीन राजाओं का राज्य-काल लम्बा होता था।

कौटल्य अर्थशास्त्र महाराज चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य का रचा हुआ है। उस के काल को अर्वाचीन सिद्ध करने के लिए तीन चार पाश्चात्य लेखकों ने व्यर्थ चेष्टा की है। वस्तुतः वर्तमान अर्थशास्त्र कौटल्य की ही कृति है। मूलकल्प के अनुसार चाणक्य बड़ा दीर्घजीवी था। वह चन्द्रगुप्त, बिम्बसार और अशोक, इन तीनों का मन्त्री रहा। अतः उसके ग्रन्थ के विषय में हम अधिक से अधिक इतना ही कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र का काल अशोक-काल से पश्चात् का नहीं है। उस में निम्नलिखित प्राचीन राजाओं का उल्लेख हैं—

दाण्डक्य भोज। वैदेह कराल। जनमेजय (द्वितीय)। तालजङ्घ। ऐल। सौवीर अजबिन्दु। रावण। दुर्योधन। डम्भोद्भव।

हैहय अर्जुन । वातापि । वृष्णिसंघ । जामदग्न्य । अम्बरीष नाभाग ।[१]

कौटल्य सदृश विद्वान्, जो आर्य इतिहास का प्रवीण पण्डित था, जो इतिहास के अध्ययन को राजा की दिनचर्या में सम्मिलित करता है,[२] पूर्वोक्त राजाओं को कोई कल्पित राजा नहीं मानता। उस के लेख से स्पष्ट ज्ञात होता हैं कि उस की दृष्टि में ये सब राजा ऐतिहासिक थे। यदि उस के पास प्राचीन ऐतिह्य-ग्रन्थ न होते, तो वह ऐसा न लिख सकता। अर्थशास्त्र में स्मरण किए गए ये राजा महाभारत और उस से पहले कालों के हैं। कराल जनक का संवाद महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३०८ आदि में मिलता है। इस से निश्चित होता है कि आर्यावर्त में आर्य लोग अपने इतिहास को सदा से जानते रहे हैं। वे अपनी राज-वंशावलियों को सदा पूरा करते रहते थे। गत छः सात सौ वर्ष में ही यह प्राचीन सामग्री कुछ नष्ट हुई है। विदेशियों के अनवरत आक्रमण इस नाश का कारण ह। परन्तु जो कुछ भाग बचा है, यत्न से वह ठीक हो सकता है, ऐसी हमारी धारणा है।

५—यवन यात्री मैगस्थनीज़ का लेख

भारतीय इतिहास की प्राचीनता के सम्बन्ध में यूनानी राजदूत मैगस्थनीज़ का लेख उसके तीन देशवासियों ने इस प्रकार से सुरक्षित किया है—

From the days of Father Bacchus to Alexander the Great their kings are reckoned at 154 whose reigns extend over 6451 years and three mouths. (Pliny)

Father Bacchus was the first who invaded India and was the first of all who triumphed over the vanquished Indians. From him to Alexander the Great 6451 years are reckoned with three months additional, the calculation being made by counting the kings who reigned in the intermediate period, to the number of 153 (Solin 52.5.)

१—अर्थशास्त्र १।६॥

२—अर्थशास्त्र १।५॥

From the time of Dionysos (or Bacchus) to Sandrakottos the Indians counted 153 kings and a period of 6042 years, but among these a republic was thrice established—— and another to 300 years, and another to 120 years. The Indians also tell us that Dionysos was earlier than Herakles by fifteen generations. (Indika of Arrian ch. IX.)

अर्थात्—बेक्कस के काल से अलक्षेन्द्र के काल तक ६४५१ वर्ष हो चुके हैं और इतने काल तक १५३ या १५४ राजाओं ने राज्य किया है।

तीसरे लेख में ४०९ वर्ष कम दिए हैं।

इस लेख से इतना निश्चित होता है कि महाराज चन्द्रगुप्त या उस के पुत्र अथवा पौत्र के काल में जो परम्परा मगध में प्रसिद्ध थी, और जिस का उल्लेख मैगस्थनीज़ ने किया, तदनुसार भारत पर किसी विदेशीय आक्रमक बेक्कस के काल से ले कर चन्द्रगुप्त के काल तक मगध में १५३ राजाओं ने ६०४२ वर्ष तक राज्य किया। इस लम्बे अन्तर में तीन वार प्रजातन्त्र या गणराज्य स्थापित हुआ। उस का काल यदि ७४२ वर्ष मान लिया जाए, तो कुल राजाओं ने अनुमानतः ५३०० वर्ष राज्य किया होगा। इस प्रकार प्रत्येक राजा का काल लगभग ३४ वर्ष निकलता है। प्लायनी की गणना के अनुसार प्रत्येक राजा का राज्य काल लगभग ४२ वर्ष होगा।

अलबेरूनी अपने भारत इतिहास में लिखता है—

हिन्दुओं में कालयवन नाम का एक संवत् प्रचलित है। इस के सम्बन्ध में मुझे पूरी सूचना नहीं मिल सकी। वे इस का आरम्भ गत द्वापर के अन्त में मानते हैं। इस यवन ने इन के धर्म और देश पर बड़े अत्याचार किए थे।

क्या यही यवन बेक्कस हो सकता है? मैगस्थनीज़ के अनुसार बेक्कस कलि के आरम्भ से कोई ३२६० वर्ष पूर्व हुआ होगा, अर्थात् जब द्वापर के ३२६० वर्ष शेष थे। इस प्रकार सम्भव हो सकता है कि मैगस्थनीज़ का बेक्कस अलबेरूनी का यवन हो।

विक्रमखोल, हड़प्पा और मोहेञ्जोदारो के लेख

गत वर्ष बिहार और उड़ीसा प्रान्त में से एक नए शिलालेख के अस्तित्व का पता लगा था। उस की छाप आदि इण्डियन अण्टीक्वेरी मार्च सन् १९३३ में मुद्रित हुई है। मुद्रण-कर्ता का नाम श्री काशीप्रसाद जायसवाल है। उन के मत में यह लेख लगभग १५०० ईसा पूर्व का और पौराणिक भौगोलिक स्थिति के अनुसार राक्षस देश का है।

विक्रमखोल से बहुत पूर्व के लेख हड़प्पा और मोहेञ्जोदारो में मिले हैं। उन के सम्बन्ध में सर जॉन मार्शल और उन के कुछ सहकारियों का मत है, कि ये लेख आर्य-काल से पूर्व के हैं। इन सब लोगों के हृदय में एक भ्रान्त-विश्वास बैठा हुआ है, कि भारत में आर्यों का आगमन विक्रम से कोई दो सहस्र वर्ष पहले कहीं बाहर से हुआ। उसी के अनुसार ये लोग अपने दूसरे सारे मत स्थिर कर लेते हैं। हमें इन लोगों पर दया आती है। पहले तो ये लोग भारतीय इतिहास को बहुत पुराना इस लिए नहीं मानते थे कि यहां के बहुत पुराने लेख, नगर आदि नहीं मिले थे। अब जब वे पदार्थ मिल गए हैं तो भारतीय-आर्य-सभ्यता बहुत पुरानी न हो जाए, इस भय से इन्होंने इन लेख आदिकों को पूर्व-आर्य-काल का कहना आरम्भ कर दिया है।

गत पृष्ठों में हम अनेक प्रमाणों से बता चुके हैं कि भारतीय इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। उस दृष्टि के अनुसार यह निश्चित है कि पूर्वोक्त सब लेख आर्यों के ही हैं। अब तो इन के ठीक ठीक पढ़ने के लिए महान् परिश्रम की आवश्यकता है।

रामायण और महाभारत की राजवंशावलियाँ

कलि से पूर्व के आर्यराजाओं का वृत्तान्त रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलता है। वह वृत्तान्त बहुत संक्षिप्त और प्रत्येक वंश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजाओं का है।[1] क्रमबद्ध और विस्तृत इतिहास

१—तुलना करो विष्णुपुराण ४।५।११३॥
एते इक्ष्वाकुभूपालाः प्राधान्येन मयेरिताः।
तथा ब्रह्माण्ड ३।७४।२४७, ४८॥ —
बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले।
पुनरुक्तिबहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिताः॥

के न मिलने का एक कारण है। आर्यजाति अत्यन्त प्राचीन है। इस का इतिहास कल्प कल्पान्तरों तक का है। इतने लम्बे काल के इतिहास को कौन सुरक्षित रख सकता है। इसे सुरक्षित रखने के लिए सैकड़ों महाभारतों की आवश्यकता है। अतः आर्य ऋषियों ने उस इतिहास में से अत्यन्त उपयोगी भाग संगृहीत कर दिए। वे भाग रामायण और महाभारत में सुरक्षित हैं। इतिहास के कुछ और भी ग्रन्थ होंगे, परन्तु वे अब अप्राप्य हैं। रामायण, महाभारत और पुराणों की कलि से पहले की राजवंशावलियां भी उसी सुरक्षित इतिहास का एक अङ्ग हैं। ये वंशावलियां बहुत दूर तक के राजाओं के नाम बताती हैं। जिस प्रकार शाखाकार अनेक ऋषियों के नाम पुराणों में सुरक्षित हैं, और वहीं से हमें उन का ज्ञान हुआ है, ठीक उसी प्रकार इन वंशावलियों के त्रुटित होने पर भी प्राचीन राजाओं का ज्ञान हमें इन्हीं से होता है। अतः यह कहना वस्तुतः सत्य है कि भारतीय इतिहास लाखों वर्ष पुराना है। हमारा यह लेख श्रद्धामात्र से नहीं है प्रत्युत एक गम्भीर गवेषणा के आधार पर लिखा गया है। इस पर विस्तृत विचार पुनः एक पृथक् ग्रन्थ में करेंगे।

दूसरा अध्याय

भारत के आदिम निवासी आर्य लोग

और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़ कर जय पाके निकाल के इस देश के राजा हुए।

दयानन्दसरस्वतीकृत सत्यार्थप्रकाश

प्रथम अध्याय में हमने इस बात का दिग्दर्शन करा दिया कि भारतीय इतिहास सहस्रों, लाखों वर्ष पुराना है। अब हम संक्षेप में यह बताना चाहते हैं कि यह भारतीय इतिहास आर्यों का ही इतिहास है और आर्य ही यहां के आदिम निवासी हैं।

१—मैगस्थनीज़ का लेख

इस विषय में विक्रम संवत् से तीन चार सौ वर्ष पूर्व के भारतीय विश्वास के आधार पर मैगस्थनीज़ लिखता है—

It is said that India, is peopled by races both numerous and diverse, of which not even one was originally of foreign descent, but all were evidently indigenous, and moreover that India neither received a colony from abroad, nor sent out a colony to any other nation.[1]

अर्थात्—कहा जाता है कि भारत अनगिनत और विभिन्न जातियों से बसाया हुआ है। इन में से एक भी मूल में विदेशीय नहीं थी, प्रत्युत स्पष्ट ही सारी इसी देश की थीं। तथा भारत में बाहर से आकर कोई जातिसंघ नहीं बसे, न ही भारत ने अपने से भिन्न किसी जाति में कोई उपनिवेश बनाया।[१]

१—कम्बोज, जावा आदि की बस्तियां भारत का अङ्ग ही समझी जाती थीं। मूलकल्प में उन का उल्लेख इसी अभिप्राय का द्योतक है।

हम पहले कई वार लिख चुके हैं, कि विक्रम संवत् सात आठ सौ तक यहां के लोग अपनी परम्परा को भले प्रकार सुरक्षित रखते थे। विक्रम-संवत् से पूर्व तो यह परम्परा और भी अधिक सुरक्षित थी। उस काल में मैगस्थनीज़ ने यह पंक्तियां लिखीं। अतः इन की सत्यता का आधार-विशेष होगा।

२—मानव-धर्मशास्त्र

वर्तमान स्मृतियों में से मानवधर्मशास्त्र सब से पुराना है। मानव-धर्मशास्त्र की इस समय यद्यपि भृगु और नारद आदि की संहिताएं मिलती हैं, परन्तु उन्होंने मूल का लोप नहीं किया। भृगु और नारद की संहिताओं में सैकड़ों श्लोकों की समानता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसी मूल का उन्होंने सम्पादनमात्र किया है। इस प्रकार हम जानते हैं कि मानव-धर्मशास्त्र ब्राह्मण ग्रन्थों के भी अनेक भागों से पुराना है। ब्राह्मण ग्रन्थों का बहुत सा भाग महाभारत-काल का है। वह याज्ञवल्क्य आदि की कृति है। श्लोकबद्ध मानवधर्मशास्त्र उन से भी पहले विद्यमान था। उस मानवधर्मशास्त्र में **ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षिदेश, मध्यदेश** और **आर्यावर्त** का लक्षण कहा गया है।[1] कहीं कहीं ब्रह्मावर्त के स्थान में आर्यावर्त पाठ भी है।[2]

मनुस्मृति के लेख से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्रह्मावर्त आदि देश अत्यन्त प्राचीन और देवताओं तथा ब्रह्मर्षि लोगों के बनाए हुए हैं। तथा उस समय भी संसार में म्लेच्छ देश थे। यदि आर्य लोग विदेश से आकर यहां बसे होते तो भारत के मध्यस्थ देशों को इतना पवित्र और भारत से बाहर के देशों को म्लेच्छदेश और इतना अपवित्र न कहते। मनुस्मृति के अगले श्लोकों से तो यह पता लगता है कि भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के समीप के लोग भी पहले क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मण उपदेशकों के वहां न पहुंचने से कालान्तर में शूद्र हो गए।[3] व जातियां पौण्ड्र, चौड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, और

१—मनु २।१७-२२॥

२—मानवधर्म प्रकाश। अनुवादक गुलजार पण्डित, बनारस, सन् १८५८।

३—१०।४३,४४ ॥ तथा देखो ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८ ॥

खश थीं। इन में से यवन और शक तो निस्सन्देह वर्तमान अफ़गानिस्तान से परे की जातियां थीं।

३—प्राचीन इतिहास

आर्यावर्त का सारा प्राचीन इतिहास इस बात में सहमत है कि मनु हमारा एक प्राचीनतम पुरुष और अयोध्या भारत में हमारा पहला नगर है। इस अयोध्या के विषय में वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड ५।२।।में लिखा है —

अयोध्या नाम तत्रासीन्नगरी लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण यत्नेन परिनिर्मिता।।

अर्थात्—मनुष्यों के राजा मनु ने जो अयोध्या नगरी बनाई।

इस मनु का इतिहास महाभारत से लाखों वर्ष पहले के काल से सम्बन्ध रखता है। जब आर्य लोग उस काल से इस देश में बस रहे हैं, तब यह मानना कि विक्रम से २०००–२५०० वर्ष पहले आर्य लोग भारत में आए, एक स्वप्नमात्र है।

भला पश्चिमीय विचारों के मानने वाले आधुनिक अध्यापकों से पूछो तो सही कि क्या प्रसेनजित् कोसल, चण्ड प्रद्योत, बिम्बसार आदि के कोई शिलालेख अभी तक मिले हैं या नहीं। यदि नहीं मिले तो पुनः आप बौद्ध और जैन साहित्य में उल्लेखमात्र होने से इन का अस्तित्व क्यों मानते हो। यदि सहस्रों गप्पों के होते हुए भी बौद्ध और जैन साहित्य इतना प्रामाणिक है, तो दो चार असम्भव बातों के आ जाने से महाभारत और दूसरे आर्ष-ग्रन्थ क्यों प्रमाण नहीं।

बात वस्तुतः यह है कि महाभारत आदि को प्रायः सत्य इतिहास मानने से पश्चिमीय विचार वालों की अनेक निराधार कल्पनाओं का अनायास ही खण्डन हो जाता है, अतः इन के सत्य मानन में उन्हें पूर्ण संकोच रहता है। बस इसी कारण इन लोगों ने ठेका ले लिया है कि हमारे सारे प्राचीन ऐतिह्य को असत्य सिद्ध किया जाए।

४—आधुनिक पश्चिमीय विचार की परीक्षा

आधुनिक पश्चिमीय विचार के अनुसार आर्य लोग ईरान आदि किसी देश से भारत में आए। इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला

अध्यापक रैपसन का मत पृ० २ पर उद्धृत किया जा चुका है। तदनुसार भारत में आर्यों का आगमन २५०० पूर्वविक्रम के पश्चात् हुआ होगा। इस विषय में जो प्रमाणराशि पश्चिम के लेखकों ने एकत्र की है, वह दो भागों में बांटी जा सकती है। वे दो भाग निम्नलिखित हैं—

१—आर्यों के मूल ग्रन्थ वेद में दूसरी भाषाओं के शब्दों का अस्तित्व।

२—भारतीय आर्यों के अस्थि-परिमाण की पश्चिमीय-आर्यों के अस्थि-परिमाण से समानता और आर्येतर भारतीयों से असमानता

क्या यह प्रमाणराशि सत्य पर आश्रित है, अब इस की परीक्षा की जाती है।

१—वेद में दूसरी भाषाओं के शब्दों का अस्तित्व

आधुनिक पश्चिमीय विचार वाले लोग कहते हैं कि वेदों में अनेक ऐसे शब्द हैं जो संसार की अन्य भाषाओं से लिए गए हैं। तथा कई ऐसे शब्द भी हैं कि जिन के रूप पर गम्भीर ध्यान देने से पता लगता है कि उन का पूर्वरूप कुछ और था। पहले मत का एक उदाहरण परलोकगत पण्डित बालगङ्गाधर तिलक ने उपस्थित किया है।[1] उन का कथन है कि अथर्ववेदान्तर्गत आलिगी, विलिगी, उरुगूळ और ताबुवं शब्द चालडियन भाषा के हैं। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ भी वहीं पर प्रचलित था। उन्हीं के संसर्ग से ये शब्द वेद में आए। इसी मत के सम्बन्ध में दूसरे लोगों का कहना है कि वेद और ज़न्द अवस्था के कई शब्द समान-रूप के हैं। परन्तु वे दोनों शब्द भाषा-विज्ञान की दृष्टि से पीछे के हैं। उन का पहले कोई और रूप था। और क्योंकि ज़न्द अवस्था की रचना ईरान में की गई तथा वेद की भारत में, अतः इन रचनाओं के काल से पहले भारतीय और ईरानी आर्य किसी ऐसे स्थान में एकत्र रहते थे, जहां ज़न्द और वेद की भाषा से पूर्व की भाषा अथवा इन दोनों भाषाओं की मातृ-भाषा बोली जाती थी।

१—भण्डारकर कमैमोरेशन वॉल्यूम पृ० २१–२४।

भाषा-विज्ञान पर स्थिर इन दोनों मतों की परीक्षा

हम ऐतिहासिक हैं, इतिहास, यथार्थ इतिहास, कल्पना की कोट से रहित इतिहास हमें प्रमाण है। यदि इतिहास से पूर्वोक्त बातें सिद्ध हो जाएं, तो हम उन्हें सहर्ष स्वीकार कर लेंगे, परन्तु यदि इतिहास इन के विपरीत कहता है, तो हम इन को स्वीकार नहीं करेंगे। आधुनिक भाषा-विज्ञान ने जो सामग्री एकत्र कर दी है, हम उस से पूरा लाभ उठाते हैं, परन्तु उस सामग्री के आधार पर जो वाद स्थिर किए गए हैं, हम उन में से अधिकांश को नहीं मानते।

भाषा विज्ञानियों का सब से बड़ा दोष

आधुनिक भाषा-विज्ञानियों में से अनेक लोगों ने इस विज्ञान के वादों या सिद्धान्तों को अक्षरशः सत्य मान कर इन्हीं के ऊपर प्राचीन इतिहास की अपनी कल्पना खड़ी की है। इस प्रकार वे कोई प्राचीन इतिहास तो नहीं जान सके, हां उन्होंने अपनी कल्पनाओं का भार संसार पर अवश्य डाल दिया है। इस का उदाहरण हमारा अपना इतिहास है। विण्टर्निट्ज़ लिखता है—

The only serious objection against dating the earliest Vedic hymns so far back as 2000 or 2500 B.C. is the close relationship between the language of the old Persian cuneiform inscriptions and the Awesta. The date of the Awesta is itself not quite certain. But the inscriptions of the Persian Kings are dated, and are not older than the 6th Century B. C. Now the two languages, Old Persian and Old High Indian, are so closely related, that it is not difficult to translate the old Persian inscriptions right into the language of the Veda.

अर्थात्—वेद २००० या २५०० पूर्व ईसा का माना तो जा सकता है, परन्तु वेद की भाषा पुराने फारसी शिलालेखों से इतनी मिलती है कि ऐसा मानने में एक बड़ी कठिनाई है। वेद की भाषा से मिलते जुलते वे फारसी शिलालेख छठी शताब्दी पूर्व ईसा के हैं।

इस लेख के यहां उद्धृत करने का यही प्रयोजन है कि पाश्चात्य

1— Some Problems of Indian Literature 1925. p. 17.

विचार वालों ने भाषा-विज्ञान के अर्ध-विकसित सिद्धान्तों द्वारा पहले एक क्रम अपने मनों में दृढ़ कर लिया है, और पुनः वह उसी के आश्रय पर इतिहास की कल्पना करते हैं। हमारा मत है कि यदि सत्य का अन्वेषण करना है तो खोज ठीक इस के विपरीत होनी चाहिए।

यथार्थ अन्वेषण की रीति

हमारा ध्येय इतिहास के यथार्थ अध्ययन से सफल हो सकता है। आधुनिक भाषा-विज्ञान की प्रत्येक बात को परखने के लिए हमें देखना होगा कि उस के द्वारा निकाले गए परिणाम यथार्थ इतिहास से टक्कर खाते हैं, या नहीं। फारस, यूनान, चालडिया, ऐसीरिया आदि देशों का वह प्राचीन इतिहास नष्ट हो चुका है। जो बचा है, वह पश्चिमीय ऐनक से देखा गया है। भला आज कौन कह सकता है कि वर्तमान यूनानी भाषा कब से प्रचलित है। अमुक शताब्दी में अपने से पूर्व की भाषा से इस में अमुक अमुक परिवर्तन आए। कौन बता सकता है कि ईरान देश में छठी शताब्दी पूर्व ईसा में प्रचलित फारसी भाषा कब से वहां बोली या लिखी जाती थी। उन देशों के इतिहासों के प्राचीन वृत्तान्त प्रायः नष्ट हो चुके हैं। यह तो भारत ही है कि जहां प्राचीन इतिहास की सामग्री भरपूर सुरक्षित है। भारत के उस इतिहास से हमें पता लगता है कि महाभारत-काल (३०५० पूर्व विक्रम के समीप) में भारत में जहां ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक भागों का प्रवचन हो रहा था, वहां ठीक उसी काल में साधारण संस्कृत में अनेक ग्रन्थ रचे जा रहे थे। महाभारत का अधिकांश भाग तब ही रचा गया। अग्निवेश की चरक संहिता उन्हीं दिनों में लिखी गई। अनेक शिक्षा ग्रन्थ तभी प्रणीत हुए। आपस्तम्ब, बोधायन आदि के गृह्य और धर्मसूत्र तब ही सूत्रित हुए। यही नहीं, सैकड़ों अन्य ग्रन्थ उसी काल की कृति हैं। यह एक ऐतिहासिक सत्य है और आर्य इतिहास में इस के अकाट्य प्रमाण हैं।

इस के अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं, कि साधारण संस्कृत तो उस काल से भी सहस्रों वर्ष पहले से चली आ रही है। उस संस्कृत का दूसरी भाषाओं से क्या सम्बन्ध है, ऐतिहासिक दृष्टि से यह अभी विचारा ही नहीं गया।

देखिए जीन प्रज़ाईलुस्की लिखता है कि संस्कृत का बाण शब्द जो ऋग्वेद ६।७५।१७॥ में मिलता है अनार्य भाषाओं से लिया गया है।[1] हम पूछते हैं कि उन अनार्य भाषाओं में वाण शब्द के मूल का जो स्वरूप है, वह उन भाषाओं में कब से प्रयुक्त हुआ है ? प्रज़ाईलुस्की और उस के साथी कहेंगे कि यह हम नहीं बता सकते। हम तो अपने 'सच्चे' भाषा-विज्ञान से यही कह सकते हैं कि वह रूप वेद में आए बाण शब्द से पहले था।

इस पर हमारा कथन यह है कि ऐ नाममात्र के भाषा विज्ञान के मानने वालो तुम्हारा कथन साध्य-सम-हेत्वाभास है। तुम्हारे जिस भाषा-विज्ञान की हम परीक्षा कर रहे हैं, तुम उसे ही प्रमाणरूप से उद्धृत कर रहे हो। यह भारी अन्याय है, और तुम इसी कारण भारी भ्रान्ति में पड़ गए हो। यदि कहो कि हमारा इतिहास भी अभी सिद्ध नहीं हुआ, तो यह तुम्हारी भूल है। इतिहास, ऐतिह्य, शब्दप्रमाणान्तर्गत है, और प्रमाण का प्रमाण नहीं होता। अतः हम पर आक्षेप नहीं आ सकता। हां, हम इतना तो मानते हैं, कि हमारा इतिहास जहां टूट फूट चुका है, उसे ठीक कर लेना चाहिए। उस के लिए हमारे ग्रन्थों में पर्याप्त सामग्री है। हमारे उस इतिहास से यही निश्चित होता है कि संसार की भिन्न भिन्न आधुनिक जातियां आर्यों के मूल स्थान हिमालय से ही निकली थीं।[2] उन सब की भाषाओं का संस्कृत से गहरा सम्बन्ध है। आर्य-प्रकृति की ही भाषाओं का नहीं, प्रत्युत अरबी, इब्रानी (Hebrew) आदि का भी अत्यन्त प्राचीन काल में संस्कृत से सम्बन्ध था।

हिमालय से ही हमारे पूर्वज सीधे भारत में आ कर बसे। उन दिनों कोई अन्य यहां न रहता था। उन्हीं आर्यों से आगे जल-वायु के प्रभाव से लाखों वर्षों के व्यतीत होने पर अनेक आधुनिक जातियां उत्पन्न हुईं।

1— Pre-Aryan and Pre-Draviḍian in India, University of Calcutta, 1929. pp. 19—23.

२—ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८॥ में भारत-सीमा के पार रहने वाले अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मूतिब विश्वामित्र की सन्तान कहे गए हैं

पण्डित बालगङ्गाधर तिलक के लेख का भी यही हाल है। चालडियन भाषा की उत्पत्ति से भी सहस्रों वर्ष पूर्व अथर्ववेद विद्यमान था। अतः वेद से ये शब्द चालडियन भाषा में गए हैं, चालडियन भाषा से ये वेद में नहीं आए।

आधुनिक भाषा-विज्ञान के कुछ अधूरे नियमों का खण्डन हमारे मित्र परलोकगत पण्डित रघुनन्दनशर्मकृत वैदिकसम्पत्ति पृ० २६१,२६२ पर देखने योग्य है।

२—अस्थि-शास्त्र

जातियों का वर्गीकरण करने के लिए अस्थि-शास्त्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार भाषा-विज्ञानियों ने हमारे लिए एक उपादेय सामग्री उपस्थित कर दी है, उसी प्रकार अस्थि-शास्त्र वालों ने भी उपयुक्त सामग्री एकत्र की है। परन्तु जिस प्रकार हम आधुनिक भाषा विज्ञान के निकाले हुए सारे वादों को सत्य नहीं मानते, ठीक वैसे ही हम इस अस्थि-शास्त्र के भी सारे वादों को सत्य स्वीकार नहीं करते। वाद तो मनुष्य-बुद्धि का फल हैं, और उन में भ्रान्ति सम्भव है। इतिहास हमें उस भ्रान्ति के जानने में सहायता करता है।

आर्य लोग सदा से अपने मृतकों को जलाते रहे हैं। हां, जो लोग युद्धों में मारे गए, भूंचाल आदि में दब गए, या कभी नदी आदि में डूब गए, और उन का शव दलदल में फँस कर दब गया, या कुष्ठ आदि रोगों से मरे, ऐसे लोगों के शव जलाए नहीं जा सके होंगे। पुराने आर्यों के यदि कोई अस्थि-पञ्जर मिल सकते हैं, तो वे ऐसे ही शवों के होंगे। पांच सहस्र या उस से अधिक पुराने मोहेञ्जोदारो नगर में तो जलाने की ही प्रथा प्रसिद्ध थी।[1] जो दो प्राचीन अस्थि-पञ्जर बयाना और स्यालकोट में से मिले हैं, उन का काल निश्चित नहीं हो सका। परन्तु हैं वे दोनों अत्यधिक पुराने और आधुनिक पञ्जाबी या आर्य प्रकार के।[2] मोहेञ्जोदारो में अन्य प्रकार के भी पञ्जर मिले हैं। उन के शिर आदिकों को चार प्रकार

1— Mohenjo Daro and the Indus Civilization, 1931, pp. 79-89.
2— Prehistoric India, 1927, pp. 378-382.

में बांटा गया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन काल के विशुद्ध आर्यदेश ब्रह्मावर्त और मध्यदेश आदि देश ही हैं। इन्हीं देशों के रहने वाले आर्य और विशेष कर ब्राह्मण अपनी मौलिक जातीयता को पवित्र रखते रहे हैं। अन्य देशों के लोग वैसी पवित्रता स्थिर नहीं रख सके। अतः आर्यों के अस्थि-पञ्जरों का यथार्थ अध्ययन करने के लिए हमें ध्यानविशेष से ब्रह्मावर्तादि देशों के प्राचीन ब्राह्मणों के अस्थि-पञ्जर ढूंढने पड़ेंगे। यदि ये मिल जाएं, जोकि बहुत असम्भव है, तो फिर विचार आगे बढ़ सकता है।

अस्थि-पञ्जरों में विभिन्नता का कारण

पुष्पों, फलों और पशु पक्षियों के दूर देशस्थ और कुछ कुछ भिन्नता रखने वाले प्रकारों में यदि मेल करने से नए और बड़े पुष्प, फल और पशु आदि उत्पन्न किए जा सकते हैं, तो मनुष्यों में भी भिन्न जातियों के मेल से ऐसे मनुष्य उत्पन्न हुए होंगे कि जिन के अस्थि-पञ्जर कुछ भिन्न हो गए हों। एक ही जीवित अमीवा=प्रथम कीटाणु से सारी प्राणी सृष्टि की उत्पत्ति मानने वाले लोगों को इस बात के मानने में अणुमात्र भी आग्रह नहीं करना चाहिए कि जल-वायु के प्रभाव से सहस्रों वर्षों के अन्तर में लोगों के अस्थि-पञ्जर वैसे भी बदल सकते हैं। यदि यह बात स्वीकार हो जाए, तो इस विषय में अधिक विवाद ही नहीं रहता।

आर्य लोग पहले हिमालय पर थे। वहां का जल-वायु और प्रकार का था। पुनः वे आर्यावर्त में आ कर बसे। इस बात को लाखों वर्ष हो गए। इतने लम्बे काल में इस आर्यावर्त में ही जल-वायु के अनेक परिवर्तन हुए। उन के प्रभावों से आर्यों में ही अनेक उपजातियां बन गईं। मैगस्थनीज़ के पूर्वोद्धृत लेख का भी यही अभिप्राय है। अत्यन्त प्राचीन काल में आर्यावर्त के दक्षिण का भाग अफ्रीका आदि से मिला हुआ था। अफ्रीका के जल-वायु के प्रभाव से वहां भी अनेक जातियां हो चुकी थीं। दक्षिण के लोग उन से सम्बन्ध करते रहे और विशुद्ध आर्यों से बहुत भिन्न हो गए। इसी भिन्नता को ध्यान में रख कर आर्य ऋषि उन्हें पुनः कई बार शुद्ध आर्य बनाने का यत्न करते रहे। परन्तु

वास्तविक परम शुद्ध आर्य प्रदेश मध्यदेश आदि ही रहे। इसी लिए मनु में कहा गया है कि इन्हीं देशों के ब्राह्मणों से पृथिवी के सब लोग शिक्षा ग्रहण करें।[1] इन दाक्षिणात्य लोगों के कई समुदाय हैं जो भील संथाल आदि के रूप में भारत में अब भी विद्यमान हैं। इन्हीं का साथी कोई अन्य भयङ्कर समुदाय था कि जिन्हें कभी राक्षस कहते थे।

मृतकों को जलाने की प्रथा

पुराने यूनानी अपने मृतकों को कभी कभी जला देते थे।[2] ईसा से २०००—३००० वर्ष पूर्व की भारतीयेतर अन्य ज्ञातियां अपने मृतकों को जलाती न थीं। हमें अभी तक ऐसा ही ज्ञात है। चाइलडे ने अपने आर्यन नामक ग्रन्थ में जलाने के जो उदाहरण २४००—१८०० पूर्व ईसा के मध्य योरूप के दिए हैं, वे इस से पहले काल के प्रतीत होते हैं।[3]

भारतीय=आर्य लोग सदा से अपने मृतकों को जलाते रहे हैं। यदि आर्य लोग कहीं बाहर से आ कर भारत में बसे होते, तो वे अपने मृतकों को दबाते ही रहते। यदि कहो, कि उन्होंने भारत में आ कर जलाना सीख लिया होगा, तो यह एक क्लिष्ट कल्पना है। भला कितने विजेता मुसलमानों ने गत १००० वर्ष में और कितने पाश्चात्यों ने गत २५० वर्षों में यहां आ कर अपने मृतकों को जलाना सीखा है। यह एक धार्मिक विश्वास की बात है और बदली नहीं जा सकती। मूल धार्मिक विश्वासों में परिवर्तन के लिए एक बहुत लम्बे काल की आवश्यकता है। इस के विपरीत हम जानते हैं कि लाखों वर्ष पहले हिमालय से ही आर्यों के अनेक समूह संसार में फैले। वे सब अपने मृतकों को जलाते थे। कालान्तर में धर्म-परिवर्तन से उन का व्यवहार बदला। परन्तु आर्यावर्त में धर्म की स्थिरता से वह व्यवहार चिरकाल से बना रहा है और आगे बना रहेगा।

वास्तविक याजुष प्रतिज्ञापरिशिष्ट में लिखा है—

का प्रकृतिर्ब्राह्मणस्य। मध्यदेशः। कतरो मध्यदेशः। प्राग्

१—मनु २।२०॥

२—अलबेरूनी, अध्याय ७३।

3— The Aryans by V. G. Childe. 1926, p. 145.

दशार्णात् प्रत्यक् कांपिल्याद् उदक् पारियात्राद् दक्षिणे हिमवतो गङ्गायमुनयोरन्तरमेके मध्यदेशमित्याचक्षते ।

अर्थात्—कौन मूल स्थान है ब्राह्मण का। उत्तर है मध्यदेश। आगे उस मध्यदेश की सीमाएं बताई हैं।

पूर्वोक्त वचन कात्यायन के वास्तविक प्रतिज्ञा ग्रन्थ का है। नासिकक्षेत्र-वासी श्री अण्णाशास्त्री वारे के ग्रन्थ से इस की प्रतिलिपि हम ने स्वयं अपने हाथ से की थी। ग्रन्थ की तथ्यता आदि की विवेचना हम यथास्थान करेंगे। इस लेख से पता चलता है कि ५००० वर्ष पूर्व भी आर्य विद्वानों का यही मत था कि मध्यदेश ब्राह्मणों का मूलस्थान था।

आर्यावर्तस्थ उसी मध्यदेश आदि के मूल निवासी आर्य हैं कि जिन का वेद से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। उसी वेद और तत्सम्बन्धी वैदिक वाङ्मय का इतिहास अब आगे लिखा जायगा।

तीसरा अध्याय

वेद शब्द और उसका अर्थ

स्वरभेद से दो प्रकार का वेद शब्द

स्वर भेद से दो प्रकार का वेद शब्द प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। एक है आद्युदात्त और दूसरा है अन्तोदात्त। आद्युदात्त वेद शब्द प्रथमा के एक वचन[1] में ऋग्वेद में १५ वार प्रयुक्त हुआ है, और तृतीया के एक वचन[2] में एक वार। अन्तोदात्त वेद शब्द ऋग्वेद में नहीं मिलता। यजुर्वेद और अथर्ववेद में अन्तोदात्त[3] वेद शब्द मिलता है।

वेद शब्द के इन्हीं दो प्रकारों का ध्यान करके पाणिनि ने उञ्छादि ६।१।१६०॥ और वृषादि ६।१।२०३॥ दो गणों में वेद शब्द दो वार पढ़ा है। दयानन्दसरस्वती अपने सौवर ग्रन्थ में उञ्छादि सूत्र की व्याख्या में लिखते हैं—

करण कारक में प्रत्यय किया हो तो घञन्त वेग [वेद। वेष्ट। बन्ध] आदि चार शब्द अन्तोदात्त हों।············वेत्ति येन स वेदः।···और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय होगा तो आद्युदात्त ही समझे जावेंगे।

वेद शब्द की व्युत्पत्ति

१—संहिता और ब्राह्मण में

काठक, मैत्रायणीय आर तैत्तिरीय संहिताओं में वेद शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार से पाई जाती है—

१—वेदः १।७०।५॥३।५३।१४॥ इत्यादि

२—वेदेन=स्वाध्यायेन इति वेङ्कटमाधवः। तथा वेदेन=वेदाध्ययनेन ब्रह्मयज्ञेन इति सायणः।८।१९।५॥

३—वेदः य० २।२१॥ अ० ७।२९।१॥

वेदेन वै देवा असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त तद्वेदस्य वेदत्वम्।
तै० सं० १।४।२०॥

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऐसा वचन मिलता है—

वेदिर्देवेभ्यो निलायत। तां वेदेनान्वविन्दन्।
वेदेन वेदिं विविदुः पृथिवीम्। तै० ब्रा० ३।३।९।६९॥

पूर्वोक्त प्रमाणों में—अन्वविन्दन्। अविन्दन्। अविन्दन्त। और विविदुः—आदि सब प्रयोग पाणिनीय मतानुसार विद्लृ=लाभे से व्युत्पन्न हुए हैं। भट्टभास्कर तै० सं० के प्रमाण के अर्थ में लिखता है—

विद्यते=लभ्यते ऽनेनेति करणे घञ्।
उञ्छादित्वादन्तोदात्तम्॥

और तै० ब्रा० के प्रमाण के अर्थ में वह लिखता है—

विविदुः=लब्धवन्तः।[1]

२—आथर्वण पिप्पलाद शाखा संबन्धी किसी नवीन उपनिषद अथवा खिल में

आनन्दतीर्थ ने अपने विष्णुतत्वनिर्णय में वेद शब्द की व्युत्पत्ति दिखाने वाला एक प्रमाण दिया है—

नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदा ह्येवैनं वेदयन्ति।
तस्मादाहुर्वेदा इति पिप्पलादश्रुतिः॥[2]

३—आयुर्वेद के ग्रन्थों में

क—सुश्रुत संहिता में लिखा है—

आयुरस्मिन् विद्यते ऽनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः।
सूत्रस्थान १।१४॥

इस वचन की व्याख्या में डल्हण लिखता है—

आयुर् अस्मिन्नायुर्वेदे विद्यते=अस्ति··विद्यते=ज्ञायतेऽनेन··

१—तै० सं० ३।३।४।७॥ के भाष्य में भट्टभास्कर लिखता है—
पुरुषार्थानां वेदयिता वेद उच्यते।

२—प्रथम परिच्छेद का आरम्भ।

विद्यते=विचार्यतेऽनेन वा······आयुरनेन विन्दति=प्राप्नोति इति वा आयुर्वेदः ।

सुश्रुत के वचन से प्रतीत होता है, कि सुश्रुतकार करण और अधिकरण दोनों अर्थों में प्रत्यय हुआ मानता है । और उस का टीकाकार डल्हण समझता है कि विद्=सत्तायाम् । विद्=ज्ञाने । विद्=विचारणे । और विद्लृ=लाभे इन सभी धातुओं से सुश्रुतकार को वेद शब्द की सिद्धि अभिप्रेत थी ।

ख—चरक संहिता में लिखा है—

तत्रायुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः । सूत्रस्थान ३०।२०॥

चरक का टीकाकार चक्रपाणि इस पर लिखता है—

वेदयति=बोधयति ।

अर्थात्—विद्=ज्ञाने से कर्त्ता में प्रत्यय मान कर वेद शब्द बना है ।

४—नाट्यवेद में

नाट्यशास्त्र १।१॥ की विवृत्ति में अभिनवगुप्त लिखता है—

नाट्यस्य वेदनं सत्ता लाभो विचारश्च यत्र तन्नाट्यवेद-शब्देन······उच्यते ।

इस से प्रतीत होता है कि अभिनवगुप्त भाव में भी प्रत्यय मानता है । और सत्ता, लाभ तथा विचार अर्थ वाले विद् धातु से वेद शब्द की सिद्धि करता है ।

५—कोष और उन की टीकाओं में

क—अमरकोष १।५।३॥ की टीका में क्षीरस्वामी लिखता है—

विदन्त्यनेन धर्मं वेदः ।

और सर्वानन्द लिखता है—

विदन्ति धर्मादिकमनेनेति वेदः ।

ख—जैनाचार्य हेमचन्द्र अपनी अभिधानचिन्तामणि पृ० १०६ पर लिखता है—

विन्दत्यनेन धर्मं वेदः ।

इन लेखों से विदित होता है कि क्षीरस्वामी, सर्वानन्द और

हेमचन्द्र प्रत्यय तो करण में ही मानते हैं, पर पहले दोनों विद्वान् वेद शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञान अर्थ वाले विद् धातु से मानते हैं और तीसरा विद्लृ धातु से मानता है।

६—मानवधर्मशास्त्र-भाष्य में

मानवधर्मशास्त्र २।६॥ के भाष्य में मेधातिथि लिखता है—

व्युत्पाद्यते च वेदशब्दः। विदन्त्यनन्यप्रमाणवेद्यं धर्मलक्षणमर्थमस्मादिति वेदः। तच्च वेदनमेकैकस्माद्वाक्याद् भवति।

७—आपस्तम्बपरिभाषा-भाष्य में

आप० सूत्र १।३३॥ के भाष्य में कपर्दीस्वामी लिखता है—

निःश्रेयसकराणि कर्माण्यावेदयन्ति वेदाः।

और सूत्र १।३॥ की वृत्ति में हरदत्त लिखता है—

वेदयतीति वेदः।

८—ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में

दयानन्दसरस्वती स्वामी ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है—

विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति अथवा विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति, सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।

इस प्रकार विदित होता है कि काठकादि संहिताओं के काल से लेकर वर्तमानकाल तक १—विद्=ज्ञाने, २—विद्=सत्तायाम्, ३—विद्लृ=लाभे, ४—विद् विचारणे, इन चारों धातुओं में से किसी एक वा चारों से करण अथवा अधिकरण में प्रत्यय हुआ मान कर विद्वान् वेद शब्द को सिद्ध करते आए हैं। तथा कई ग्रन्थकार भाव में प्रत्यय मान कर भी वेद शब्द को सिद्ध करते हैं।

स्वामी हरिप्रसाद अपने वेदसर्वस्व के उपोद्घात में अधिकरण अर्थ में प्रत्यय मानना और सत्ता, लाभ तथा विचार अर्थ वाले विद् धातु से व्युत्पत्ति मानना असम्भव या निरर्थक समझते हैं। पूर्वोक्त प्रमाण समूह से यह पक्ष युक्तिशून्य प्रतीत होता है।

जिस वेद शब्द की व्युत्पत्ति का प्रकार पूर्व कहा गया है, वह वेद शब्द वेद संहिताओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। कहीं कहीं भाष्यकारों ने उस से दर्भमुष्टि आदि अर्थ का भी ग्रहण किया है। परन्तु इस अर्थ वाले वेद शब्द से हमें यहां प्रयोजन नहीं।

वेद संहिता अर्थ वाले वेद शब्द को वे भाष्यकार अन्तोदात्त समझते हैं। वेद शब्द से हमारा अभिप्राय यहां मन्त्र-संहिताओं से है। अनेक विद्वान् मन्त्र ब्राह्मण दोनों को ही वेद मानते हैं। उन की परम्परा भी पर्याप्त पुरानी है। उन के मत की विस्तृत आलोचना इस ग्रन्थ के ब्राह्मण भाग में करेंगे। हिरण्यकेशीय श्रौत सूत्र २७।१।१४॥ में लिखा है—

शब्दार्थमारम्भणानां तु कर्मणां समाम्नयसमाप्तौ वेदशब्दः।

अर्थात्—प्रत्यक्ष आदि से न सिद्ध होने वाले, परन्तु शब्द प्रमाण से विहित कर्मों के समाम्नाय की समाप्ति पर वेद शब्द प्रयुक्त होता है।

इस का अभिप्राय वैजयन्तिकार महादेव यह लिखता है कि मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प सब ही वेद शब्द से अभिप्रेत हैं। यह लक्षण बहुत व्यापक और औपचारिक है। अस्तु, यहां हम ने सामान्य रूप से वेद शब्द की सिद्धि का प्रकार दिखा दिया है। वेद शब्द की जैसी सिद्धि और जो अर्थ स्वामी दयानन्दसरस्वती ने बताया है, उस में सारा अभिप्राय आ जाता है।

चतुर्थ अध्याय

क्या पहले वेद एक था और द्वापरान्त में वेदव्यास ने उस के चार विभाग किए

आर्यावर्तीय मध्य-कालीन अनेक विद्वान् लोग ऐसा मानते थे कि आदि में वेद एक था। द्वापर तक वह वैसा ही चला आया और द्वापर के अन्त में व्यास भगवान् ने उसके चार अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद, विभाग किए।

पूर्व पक्ष

देखिए मध्य-कालीन ग्रन्थकार क्या लिखते हैं—

१—महीधर अपने यजुर्वेद-भाष्य के आरम्भ में लिखता है—

तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान् विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा व्यस्य ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यांश्चतुरो वेदान् पैलवैशम्पायनजैमिनिसुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश।

अर्थात्—वेदव्यास को ब्रह्मा की परम्परा से वेद मिला और उसने उस के चार विभाग किए।

२—महीधर का पूर्ववर्ती भट्टभास्कर अपने तैत्तिरीय-संहिता-भाष्य के आरम्भ में लिखता है—

पूर्वं भगवता व्यासेन जगदुपकारार्थमेकीभूयस्थिता वेदा व्यस्ताः शाखाश्च परिच्छिन्नाः।

अर्थात्—भगवान् व्यास ने एकत्र स्थित वेदों का विभाग कर के शाखाएं नियत कीं।

३—भट्टभास्कर से भी बहुत पहले होने वाला आचार्य दुर्ग निरुक्त १।२०॥ की वृत्ति में लिखता है—

वेदं तावदेकं सन्तमतिमहत्त्वाद् दुरध्येयमनेकशाखाभेदेन समाम्नासिषुः। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः।

अर्थात्—वेद पहले एक था, पीछे व्यास द्वारा उस की अनेक शाखाएं समाम्नान हुईं ।

इस मत का स्वल्प मूल पुराणों में मिलता है । विष्णुपुराण में लिखा है—

जातुकर्णो ऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः ।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ॥
एको वेदश्चतुर्धा तु यैः कृतो द्वापरादिषु ।
विष्णु पु० ३।३।१९, २०॥

वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।
मत्स्य पु० १४४।११॥

अर्थात्—प्रत्येक द्वापर के अन्त में एक ही चतुष्पाद वेद चार भागों में विभक्त किया जाता है । यह विभाग-करण अब तक २८ वार हो चुका है । जो कोई उस विभाग को करता है उसका नाम व्यास होता है ।

उत्तर पक्ष

दयानन्दसरस्वतीस्वामी इस मत का खण्डन करते हैं । सत्यार्थप्रकाश समुल्लास एकादश में लिखा है—

······जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठे किये, यह बात झूठी है । क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे ।

इन दोनों पक्षों में से कौन सा पक्ष प्राचीन और सत्य है, यह अगली विवेचना से स्पष्ट हो जायगा ।

मन्त्रों में अनेक वेदों का उल्लेख

१—समस्त वैदिक इस बात पर सहमत हैं कि मन्त्र अनादि हैं । मन्त्रों में दी गई शिक्षा सर्वकालों के लिए है । अतः यदि मन्त्रों में बहुवचनान्त वेदाः पद आ जाए तो निश्चय जानना चाहिए कि आदि से ही वेद बहुत चले आये हैं । अब देखिए अगला मन्त्र क्या कहता है—

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ।
अथर्व० ४।३५।६॥

अर्थात्—जिस परब्रह्म में समस्त विद्याओं के भण्डार वेद स्थिर हैं।

२—पुनः—

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु॥

अथर्व० १९।९।१२॥

यहां भी वेदाः बहुवचनान्त पद आया है। इस मन्त्र पर भाष्य करते हुए आचार्य सायण लिखता है—

वेदाः साङ्गाश्चत्वारः।

अर्थात्—इस मन्त्र में बहुवचनान्त वेद पद से चारों वेदों का अभिप्राय है।

३—पुनरपि तैत्तिरीयसंहिता में एक मन्त्र आया है—

वेदेभ्यः स्वाहा ॥७५।११।२॥

४—यही पूर्वोक्त मन्त्र काठकसंहिता ५।२॥ में भी मिलता है।

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि प्राचीनतम काल से वेद अनेक चले आए हैं।

ब्राह्मणग्रन्थों का मत

इस विषय में ब्राह्मणों की भी यही सम्मति है। इतना ही नहीं, उन में तो यह भी लिखा है कि चारों वेद आदि से ही चले आ रहे हैं। माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण काण्ड ११ के स्वाध्याय-प्रशंसा-ब्राह्मण के आगे आदि से ही अनेक वेदों का होना लिखा है। ऐसा ही ऐतरेयादि दूसरे ब्राह्मणों में भी लिखा है।

१—कठब्राह्मण में लिखा है—

चत्वारि शृंगा इति वेदा वा एतदुक्ताः।[1]

अर्थात्—चत्वारि शृंगाः प्रतीक वाले प्रसिद्ध मन्त्र में चारों वेदों का कथन मिलता है।

पुनः—

२—काठक शताध्ययन ब्राह्मण के आरम्भ के ब्रह्मौदन प्रकरण

१—वै०वा० का इतिहास द्वितीय भा० पृ० २६९। पुराना संस्करण।

में अथर्ववेद की प्रधानता का वर्णन करते हुए चार ही वेदों का उल्लेख किया है—

······आथर्वणो वै ब्रह्मणः समानः···········चत्वारो हीमे वेदास्तानेव भागिनः करोति मूलं वै ब्रह्मणो वेदाः वेदानामेतन्मूलं यदृत्विजः प्राश्नन्ति तद् ब्रह्मौदनस्य ब्रह्मौदनत्वम्।

अर्थात्—चार ही वेद हैं। अथर्व उन में प्रथम है, इत्यादि।

३—गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग १।१६॥ में लिखा है—

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे। स···सर्वांश्च वेदान्······।

अर्थात्—परमात्मा ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया। उसे चिन्ता हुई। किस एक अक्षर से मैं सारे वेदों को अनुभव करूं।

उपनिषदों का मत

उपनिषदों के उन अंशों को छोड़ कर कि जिन में अलङ्कार, गाथाएं या ऐतिहासिक कथाएं आती हैं, शेष अंश जो मन्त्रमय हैं, निर्विवाद ही प्राचीनतमकाल के हैं। श्वेताश्वतरों की उपनिषद् मन्त्रोपनिषद् कही जाती है। उसका एक मन्त्र विद्वन्मण्डल में बहुत काल से प्रसिद्ध चला आता है। उस से न केवल व्यास से पूर्व ही वेदों का एक से अधिक होना निश्चित होता है प्रत्युत सर्गारम्भ में ही वेद एक से अधिक थे, ऐसा सुनिर्णीत हो जाता है। वह सुप्रसिद्ध मन्त्र यह है—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

इत्यादि ६।१८॥

अर्थात्—जो ब्रह्मा को आदि में उत्पन्न करता है और उसके लिए वेदों को दिलवाता है।

हमारे पक्ष में यह प्रमाण इतना प्रबल है कि इस के अर्थों पर सब ओर से विचार करना आवश्यक है।

(क) शङ्कराचार्य का अर्थ

वेदान्त सूत्र भाष्य १।३।३०॥ तथा १।४।१॥ पर स्वामी शङ्कराचार्य लिखते हैं—

ईश्वराणां हिरण्यगर्भादीनां वर्तमानकल्पादौ प्रादुर्भवतां

परमेश्वरानुगृहीतानां सुप्तप्रबुद्धवत् कल्पान्तरव्यवहारानुसंधानोपपत्तिः। तथा च श्रुतिः—यो ब्रह्माणं···इति।

शङ्कर स्वामी ब्रह्मा से हिरण्यगर्भ अभिप्रेत मानते हैं। यही उनका ईश्वर है। वह मनुष्यों से ऊपर है। उस देव ब्रह्मा को कल्प के आरम्भ में परमेश्वर की कृपा से अपनी बुद्धि में वेद प्रकाशित हो जाते हैं। वाचस्पतिमिश्र 'ईश्वर' का अर्थ **धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यातिशयसंपन्न** करता है।

अब वैदिक देवतावाद में ऐसे स्थानों पर 'देव' का अर्थ विद्वान् मनुष्य भी होता है। अतः पहले सर्वत्र अधिष्ठातृ-देवता का विचार करना, पुनः वैदिक ग्रन्थों की तदनुसार संगति लगाना क्लिष्टकल्पना मात्र है। अतः अलमनया क्लिष्टकल्पनया।

ब्रह्मा आदि सृष्टि का विद्वान् मनुष्य है, इस अर्थ में मुण्डकोपनिषद् का प्रथम मन्त्र भी प्रमाण है—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥

यहां पर भी शङ्कर वा उस के चरण चिन्हों पर चलने वाले लोग **देवानां** पद के आ जाने से ब्रह्मा को मनुष्येतर मानते हैं। पर आगे 'ज्येष्ठपुत्राय' पद जो पढ़ा गया है, वह उन के लिए आपत्ति का कारण बनता है। क्योंकि अधिष्ठाता ब्रह्मा के पुत्र ही नहीं हैं, तो उन में से कोई ज्येष्ठ कैसे होगा ?[1] इस लिए पूर्व प्रमाण में ब्रह्मा को मनुष्येतर मानना युक्तियुक्त नहीं। इसी ब्रह्मा को आदि सृष्टि में अग्नि आदि से चार वेद मिले।

(ख) श्रीगोविन्द की व्याख्या

वेदान्त सूत्र १।३।३०॥ के शाङ्करभाष्य की व्याख्या करते हुए श्रीगोविन्द लिखता है—

पूर्वं कल्पादौ सृजति तस्मै ब्रह्मणे प्रहिणोति=गमयति=तस्य बुद्धौ वेदानाविर्भावयति।

१—यद्यपि जड़ पदार्थों में भी कारणकार्य भाव स पुत्र आदि शब्द का प्रयोग देखा जाता है, परन्तु अथर्वा जड़पदार्थ नहीं है।

यहां भी चाहे उस का अभिप्राय अधिष्ठातृदेवता-वाद से ही हो, पर वह भी वेदों का आरम्भ में ही अनेक होना मानता है।

(ग) आनन्दगिरीय व्याख्या

इस सूत्र के भाष्य पर आनन्दगिरि लिखता है—

विपूर्वो दधातिः करोत्यर्थः। पूर्वं कल्पादौ प्रहिणोति ददाति।

आनन्दगिरि भी ब्रह्मा को ही वेदों का मिलना मानता है।

दूसरे स्थल पर जो शङ्करादिकों ने यह प्रमाण उद्धृत किया है, वहां पर भी हमारे प्रदर्शित अभिप्राय से उस का कोई विरोध नहीं पड़ता। यही आदि ब्रह्मा था जिसे महाभारत में धर्म, अर्थ आर कामशास्त्र के बृहत् शास्त्र का कर्ता कहा गया है।[1]

चार वेद के जानने से ब्रह्मा होता है। ऐसे ब्रह्मा आदिसृष्टि से अनेक होते आए हैं। व्यास जी के प्रपितामह का पिता भी एक ब्रह्मा ही था। इन सब में से पहला अथवा आदिसृष्टि का ब्रह्मा मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मन्त्र में कहा गया है। उसी उपनिषद् में उस का वंश ऐसा लिखा है—

ब्रह्मा
अथर्वा
अङ्गिरः
भारद्वाज सत्यवाह
अङ्गिरस्
शौनक

यह शौनक, बृहद्देवता आदि के कर्ता, आश्वलायन के गुरु शौनक से बहुत पूर्व का होगा। अतः कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास और पुराण से स्वीकृत प्रथम वेदव्यास से भी बहुत पहले का है। इसी शौनक को उपदेश देते हुए भगवान् अङ्गिरस् कह रहे हैं—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।

जब इतने प्राचीन काल में चारों वेद विद्यमान थे, तो यह

१—देखो मेरा बार्हस्पत्य सूत्र पृ० १६।

कहना कि प्रत्येक द्वापरान्त में कोई व्यास एक वेद का चार वेदों में विभाग करता है, अथवा मन्त्रों को इकठ्ठा कर के चार वेद बनाता है, युक्त नहीं।

प्राचीन इतिहास में

पूर्व दिए गए प्रमाण इतिहासेतर ग्रन्थों के हैं। इतिहास इस विषय में क्या कहता है, अब यह देखना है। हमारा प्राचीन इतिहास रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलता है। इन से भी प्राचीनकाल के अनेक उपाख्यान अब इन्हीं ग्रन्थों में सम्मिलित हैं। हमारे इन इतिहासों को प्रमाण कोटि से गिराने का अनेक विदेशीय विद्वानों ने यत्न किया है। कतिपय भारतीय विद्वान् भी उन्हीं का अनुकरण करते हुए देखे जाते हैं। माना, कि इन ग्रन्थों में कुछ प्रक्षेप हुआ है, कुछ भाग निकल गया है, कुछ असंगत है और कुछ आधुनिक सभ्यता वालों को भला प्रतीत नहीं होता, परन्तु इन कारणों से सकल इतिहास पर अविश्वास करना आग्रहमात्र है।

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। उसी के शिष्य प्रशिष्यों ने ब्राह्मणादि ग्रन्थों का संकलन किया। उसी ने महाभारत रचा। उसी के पिता पितामह पराशर, शक्ति आदि हुए हैं। वही आर्य-ज्ञान का अद्वितीय पण्डित था। उस को कल्पित कहना इन विदेशीय विद्वानों की ही धृष्टता है।[1] ऐसा दुराग्रह संसार की हानि करता है, और जनसाधारण को भ्रम में डालता है।

---

1 a—In other words, there was no one author of the great epic, though with a not uncommon confusion of editor with author, an author was recognized, called Vyasa. Modern scholarship calls him The Unknown, Vyasa for convenience.
W. Hopkins, The Great Epic of India, p. 58.
but this Vyasa is a vevy shadowy person. In fact his name probably covers a guild of revisors and retellers of the tale.
W. Hopkins, India Old and New, p. 69.

b—Badarayana is very loosely identified with the legendry person named Vyasa.
Monior Williams, Indian Wisdom, p. 111. footnote 2.

हम अगले प्रमाण महाभारत से ही देगें। हमारी दृष्टि में यह ग्रन्थ वैसा ही प्रामाणिक है, जैसा संसार के अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ। नहीं, नहीं, यह तो उन से भी अधिक प्रामाणिक है। यह इतिहास ऋषिप्रणीत है। हां इस के साम्प्रदायिक भाग नवीन हैं।

क—महाभारत शल्यपर्व अध्याय ४१ में कृतयुग की एक वार्ता सुनाते हुए मुनि वैशंपायन महाराज जनमेजय को कहते हैं—

पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः।
वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥ ३॥
तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च।
समाप्तिं नागमद्विद्या नापि वेदा विशांपते ॥ ४॥

अर्थात्—प्राचीन काल में कृतयुग में आर्ष्टिषेण गुरुकुल में पढ़ता था। तब वह न ही विद्या को समाप्त कर सका और न ही वेदों को।

ख—दाशरथि राम के राज्य का वर्णन करते हुए महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ५१ में लिखा है—

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः।
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च ॥२२॥

अर्थात्—राम के राज्य में चारों वेद पढ़े विद्वान् थे।

ग—आदि पर्व ७६।१३॥ में ययाति देवयानी से कहता है कि मैं ने सम्पूर्ण वेद पढ़ा है—

ब्रह्मचर्येण कृत्स्नो मे वेदः श्रुतिपथं गतः।

घ—शान्तिपर्व ७३।५॥ से भीष्म जी उशना के प्राचीन श्लोक सुना रहे हैं। उशना कहता है—

राज्ञश्चाथर्ववेदेन सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ ७॥

---

c—Tradition invented as the name of its author the designation Vyasa ('arranger').

A. A. Macdonell, India's Past, p. 88.

To Ramanuja the legendry Vyasa was the seer.

A. A. Macdonell, India's Past, p. 149.

d—Vyasa Parasarya is the name of a mythical sage.

A.A. Macdonell & A. B. Keith, Vedic Index, p. 339.

अर्थात्—अथर्ववेद से राजा के सारे काम पुरोहित कराए।

ङ—महाभारत वनपर्व अ० २९ में द्रौपदी को उपदेश देते हुए महाराज युधिष्ठिर एक प्राचीन गाथा सुनाते हैं—

अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा नित्यं क्षमावताम्।
गीताः क्षमावतां कृष्णे काश्यपेन महात्मना ॥३८॥
क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम्।
यस्तमेवं विजानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति ॥३९॥

अर्थात्—महात्मा काश्यप की गाई हुई यह गाथा है कि क्षमा ही वेद हैं।

महाभारत के ये क, ख, घ और ङ प्रमाण कुम्भघोण संस्करण से दिए गए हैं। इन की तथ्यता का अभी पूरा निर्णय नहीं कर सकते। परन्तु ग और अगला प्रमाण मित्रवर श्री सुखथङ्कर के प्रामाणिक संस्करण से दिए गए हैं। इस का अभी तक आदि पर्व ही मुद्रित हुआ है, अतः अगले पर्वों के लिए हम इसे देख नहीं सके।

महाभारत आदिपर्व में शकुन्तलोपाख्यान प्रसिद्ध है। राजर्षि दुःषन्त काश्यप कण्व के अत्यन्त सुरम्य आश्रम में प्रवेश कर रहे हैं। उस समय का चित्र भगवान् द्वैपायन ने खींचा है। देखो अध्याय ६४ में लिखा है—

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः।
शुश्राव मनुजव्याघ्रो विततेष्विह कर्मसु ॥३१॥
अथर्ववेदप्रवराः पूययाज्ञिकसंमताः।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते ॥३३॥

अर्थात्—ऋग्वेदियों में श्रेष्ठ जन पद और क्रम से ऋचाएं पढ़ रहे थे। और अथर्ववेद में प्रवीण विद्वान् पद, क्रमयुक्त संहिता को पढ़ते थे।

यह कैसा स्पष्ट प्रमाण है। इस में स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी से सैकड़ों वर्ष पूर्व महाराज दुःषन्त के काल में भी अथर्ववेद की संहिता पद और क्रम सहित पढ़ी जाती थी। यह उस काल का वर्णन है जब वेदों की सम्प्राप्त शाखाएं न बनीं थीं, परन्तु जब मन्त्रों के व्याख्यारूप पाठान्तर

आर्यावर्त के अनेक गुरुकुलों में प्रसिद्ध थे, तथा जब ब्राह्मण आदि ग्रन्थों की सामग्री भी अनेक आचार्य-परम्पराओं में एकत्र हो चुकी थी।

इन्हीं वेदों की पाठान्तर आदि व्याख्या होकर आगे अनेक शाखाएं बनीं। तब ये वेद किसी ऋषि प्रवक्ता के नाम से प्रसिद्ध नहीं थे। यही वेद सनातन काल से चले आए हैं। व्यास जी ने अनेक ऋषि मुनियों की सहायता से उन पाठान्तरों को एकत्र करके वेद-शाखाएं बनाईं, और ब्राह्मण ग्रन्थों की सामग्री को भी क्रम देकर तत् तत् शाखानुकूल उनका संकलन किया। कई लोग ब्राह्मणादिकों को भी वेद कहते थे, अतः उन्हांन यही कहना आरम्भ कर दिया कि व्यास जी ने ही वेदों का विभाग किया। वेदव्यास जी ने तो ब्राह्मण आदि का ही विभाग किया था। वेद तो सदा से चले आए हैं। वस्तुतः पुराणों में भी इस के विपरीत नहीं कहा गया। वहां भी यही लिखा है कि वेद आरम्भ से ही चतुष्पाद था, अर्थात् एक वेद की चार ही संहिताएं थीं।



पञ्चम अध्याय

अपान्तरतमा और वेदव्यास

१—अपान्तरतमा=प्राचीनगर्भ

आचार्य शङ्कर अपने वेदान्तसूत्रभाष्य ३।३।३२॥ में लिखते हैं—

तथा हि—अपान्तरतमानाम वेदाचार्यः पुराणर्षिः विष्णु-नियोगात् कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायनः संवभूव-इति स्मरन्ति।

अर्थात्—अपान्तरतमा नाम का वेदाचार्य और प्राचीन ऋषि ही कलि द्वापर की सन्धि में विष्णु की आज्ञा से कृष्णद्वैपायन के रूप में उत्पन्न हुआ।

इसी सम्बन्ध में अहिर्बुध्न्यसंहिता अध्याय ११ में लिखा है।

अथ कालविपर्यासाद् युगभेदसमुद्भवे ॥५०॥
त्रेतादौ सत्वसंकोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते।
अपान्तरतमा नाम मुनिर्वाक्संभवो हरेः ॥५३॥
कपिलश्च पुराणर्षिरादिदेवसमुद्भवः।
हिरण्यगर्भो लोकादिरहं पशुपतिः शिवः ॥५४॥
उदभूत्तत्र धीरूपमृग्यजुःसामसंकुलम्।
विष्णुसंकल्पसंभूतमेतद् वाच्यायनेरितम् ॥५८॥

अर्थात्—वाक् का पुत्र वाच्यायन अपरनाम अपान्तरतमा था। [कालक्रम के विपर्यय होने से त्रेता युग के आरम्भ में] विष्णु की आज्ञा से अपान्तरतमा, कपिल और हिरण्यगर्भ आदिकों ने क्रमशः ऋग्यजुः सामवेद, सांख्य शास्त्र और योग आदि का विभाग किया।

अहिर्बुध्न्यसंहिता शङ्कर से बहुत पहले काल की है। महाभारत में जो इस अहिर्बुध्न्यसंहिता से भी बहुत पहले का ग्रन्थ है, लिखा है। शान्तिपर्व अध्याय ३५९ में वैशम्पायन जी राजा जनमेजय को कह रहे हैं—

अपान्तरतमा नाम सुतो वाक्संभवः प्रभोः।
भूतभव्यभविष्यज्ञः सत्यवादी दृढव्रतः ॥३९॥

तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ।
वेदाख्याने श्रुतिः कार्या त्वया मतिमतांवर ॥४०॥
तस्मात्कुरु यथाज्ञप्तं ममैतद्वचनं मुने ।
तेन भिन्नास्तदा वेदा मनोः स्वायंभुवेन्तरे ॥४१॥
अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते ।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥६६॥

इन श्लोकों का और महाभारत के इस अध्याय के अन्य श्लोकों का अभिप्राय यही है कि अपान्तरतमा ऋषि वेदाचार्य अथवा प्राचीन-गर्भ कहा जाता है । उसी ने एक वार पहले वेदों का शाखाविभाग किया था, और उसी ने पुनः व्यास के रूप में वेद-शाखाएं प्रवचन कीं ।

इन लेखों से पता लगता है कि व्यास से बहुत बहुत पहले भी वेद-विभाग विद्यमान था, और संभवतः वेदों की कई शाखाएं भी थीं । यही शाखा-सामग्री व्यास-काल तक इधर उधर मिल गई थी । व्यास ने उसे पुनः ठीक कर दिया और प्रत्येक वेद की शाखाएं पृथक् पृथक् कर दीं । इन शाखाओं के ब्राह्मण भागों में नए प्रवचन भी मिलाए गए होंगे ।

२—कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास

ब्रह्मा नाम के अगणित ऋषि हो चुके हैं । भारत-युद्ध से कई सौ वर्ष पहले भी एक ब्रह्मा था । उस का निज नाम हम नहीं जानते । उस का पुत्र एक वसिष्ठ[1] और वसिष्ठ का पुत्र शक्ति था । पराशर इसी शक्ति का लड़का था । पराशर बड़ा तपस्वी और अलौकिक प्रभाव का ऋषि था। उस ने दाशराज की कन्या मत्स्यगन्धा, योजनगन्धा अथवा सत्यवती से

१—आदि पर्व ९३।५॥ के अनुसार इस वसिष्ठ का नाम सम्भवतः आपव था । इस प्रकार ब्रह्मा का नाम वरुण होगा । भीष्म जी ने बाल्यकाल में अपनी माता गङ्गा के पास रहते हुए इसी आपव वसिष्ठ से सारे वेद पढ़े थे । आदिपर्व ९४।३२॥ का यही अभिप्राय प्रतीत होता है । पार्जिटर रचित प्राचीन भारतीय ऐतिह्य के पृ० १९१ के अनुसार आपव वसिष्ठ भीष्म जी से अनेक पीढ़ी पहले हो चुका था ।

जो कानीन-पुत्र उत्पन्न किया, उसी का नाम कृष्णद्वैपायन था। यही कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाल्यकाल और गुरु

कृष्ण द्वैपायन बाल्यकाल से ही विद्वान् था। परन्तु परम्परा के अनुसार उस ने विधिवत् गुरु मुख से वेद और अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया। इस विषय में वायु पुराण का प्रथमाध्याय देखने योग्य है—

ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः।
ऋषीणां च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ॥ ९ ॥
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्ण्याय चर्षये।
वसिष्ठायैव शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥१०॥
तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे।
पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यप्रवर्तिने ॥४२॥
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
जातमात्रं च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः ॥४३॥
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम्।
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ॥४४॥
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः।
वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ॥४५॥

अर्थात्—वसिष्ठ का पौत्र जातूकर्ण्य था। उसी से व्यास ने वेदाध्ययन किया। वह वेद द्वैपायन व्यास के कारण अनेक शाखाओं वाला हुआ।

ब्रह्माण्ड पुराण १।१।११॥ में लिखा है कि व्यास ने जातूकर्ण्य से ही पुराण का पाठ पढ़ा। पाराशर्य=व्यास ने जातूकर्ण्य से विद्या सीखी, यह वैदिक वाङ्मय में भी उल्लिखित है। बृहदारण्यक उप० २।६।३॥ और ४।६।३॥ में लिखा है—

पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्।

अर्थात्—व्यास ने जातूकर्ण्य से विद्या सीखी।

वायुपुराण के पूर्वोद्धृत दशम श्लोक के अनुसार यह जातूकर्ण्य

वसिष्ठ का पौत्र था। इस लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि जातूकर्ण्य पराशर का भाई ही होगा। सहोदर भाई अथवा ताया या चाचा का पुत्र, यह हम अभी नहीं कह सकते।

आश्रम

व्यास का आश्रम हिमालय की उपत्यका में था। शान्ति पर्व अध्याय ३४९ में वैशम्पायन कहता है—

गुरोर्मे ज्ञाननिष्ठस्य हिमवत्पाद आस्थितः ॥१०॥
शुशुभं हिमवत्पादे भूतैर्भूतपतिर्यथा ॥१३॥

पुनः अध्याय ३४९ में लिखा है—

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
मेरौ गिरिवरे रम्ये सिद्धचारणसेविते ॥२०॥

पुनः अध्याय ३३५ में एक श्लोकार्द्ध है—

विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः ॥२६॥

अर्थात्—पर्वतों में श्रेष्ठ, सिद्ध और चारणों से सेवित, मेरु पर्वत पर, जो हिमालय की उपत्यका में था, व्यास का आश्रम था।

अन्यत्र इसे ही वदरिकाश्रम या वदर्याश्रम कहा है।

सात्वत शास्त्र की जयाख्यसंहिता १।४५॥ के अनुसार इसी बदर्याश्रम में वास करते हुए शाण्डिल्य ने मृकण्डु, नारद आदिकों को सात्वत शास्त्र का उपदेश किया था। ईश्वर संहिता प्रथमाध्याय के अनुसार यह उपदेश द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में किया गया था।

वेदव्यास और बनारस

कूर्म पुराण ३४।३२॥ के अनुसार बनारस की प्रसिद्धि के कारण व्यास जी वहां भी रहते थे।

शिष्य और पुत्र

इसी आश्रम में व्यास के चारों शिष्य और अरणीसुत पुत्र शुक रहते थे। चार शिष्यों के नाम सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल थे। अरणीपुत्र होने से शुक जी को आरणेय भी कहते थे। पिता की आज्ञा से शुक जब किसी विदेह जनक से मिल कर और सांख्यादि ज्ञान सुन कर

आश्रम में लौट आया, तो उन दिनों वेदव्यास जी चारों शिष्यों को वेदाध्ययन कराया करते थे। इस के कुछ काल उपरान्त व्यास अपने प्रिय शिष्यों से बोले—

भवन्तो बहुलाः सन्तु वेदो विस्तार्यतामयम् ॥४४॥ अध्याय ३३५।

अर्थात्—तुम्हारे शिष्य प्रशिष्य अनेक हों और वेद का तुम्हारे द्वारा प्रचार हो।

तब व्यास-शिष्य बोले—

शैलादस्मान्महीं गन्तुं काङ्क्षितं नो महामुने।
वेदाननेकधा कर्तुं यदि ते रुचितं प्रभो ॥४॥ अ० ३३६।

अर्थात्—हे महामुने व्यास जी अब हम इस पर्वत से पृथ्वी पर जाना चाहते हैं और यदि आप की रुचि हो, तो वेदों की अनेक-शाखाएं करना चाहते हैं।

तब वे शिष्य उस पर्वत से पृथ्वी पर उतर के भारत में फैले। ऐसे समय में नारदजी व्यास आश्रम में उपस्थित हुए। वे व्यास से बोले—

भो भो महर्षे वासिष्ठ ब्रह्मघोषो न वर्तते।
एको ध्यानपरस्तूष्णीं किमास्से चिन्तयन्निव ॥१३॥ अ० ३३६।

अर्थात्—हे वसिष्ठ-कुलोत्पन्न महर्षे अब आप के आश्रम में वेदपाठ की ध्वनि सुनाई नहीं देती। आप अकेले ही चिन्ता में चुपचाप क्यों बैठे हैं।

तब व्यास जी बोले कि हे वेदवादविचक्षण नारद जी—मैं अपने शिष्यों से वियुक्त हो गया हूं, मेरा मन प्रसन्न नहीं। जो मैं अनुष्ठान करूं वह आप कहें। तब नारद ने कहा कि महाराज आप अपने पुत्र सहित ही वेदपाठ किया करें। तब व्यास जी शुक सहित ऐसा ही करने लगे।

वेद-व्यास परमर्षि थे

भगवान् व्यास परमयोगी, सत्यवादी, तपस्वी और भूत, भव्य और भविष्य का ज्ञान जानने वाले थें। अपने परम तप से ही उन्हों ने ये दिव्य गुण प्राप्त किए थे। वे दीर्घजीवी थे। उन का जन्म भीष्म जी के जन्म से दस, बारह वर्ष पश्चात् हुआ होगा। भारत-युद्ध के समय भीष्म जी कोई

१७० वर्ष के थे। तब व्यास जी लगभग १६० वर्ष के होंगे। पुनः युधिष्ठिर राज्य ३६ वर्ष तक रहा। तत्पश्चात् परीक्षित ने ६० वर्ष तक राज्य किया। परीक्षित की मृत्यु के समय व्यास जी लगभग २५६ वर्ष के थे। पुनः जनमेजय के सर्पसत्र में वह वैशंपायन को महाभारत-कथा सुनाने का आदेश कर रहे हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत इस सर्पसत्र के सदस्य हो कर वे पुत्र और शिष्यों की सहायता भी कर रहे हैं।[1] इस प्रकार प्रतीत होता है कि व्यास जी का आयु २७५ वर्ष से अधिक ही था। आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् इस बात को कदाचित् अभी न समझ सकें, परन्तु इस में हमारा या ऋषियों का दोष नहीं है।

व्यास जी और वेद-शाखा-प्रवचन काल

कलि आरम्भ से लगभग १५० वर्ष पूर्व

युधिष्ठिर राज्य के पश्चात् कलि का आरम्भ माना जाता है। युधिष्ठिर राज्य तक द्वापर काल था। सब शास्त्रों का यह समान मत है कि शाखा-प्रवचन द्वापरान्त में हुआ। अतः शाखा-प्रवचन युधिष्ठिर राज्य अथवा उस से कुछ पूर्व हुआ होगा। ईश्वर का धन्यवाद है कि महाभारत आदि पर्व ९९।१४—२२॥ में शाखा-प्रवचन का काल मिलता है। वहां लिखा है कि विचित्रवीर्य की पत्नियों में नियोग करने से पूर्व व्यास जी शाखा-विभाग कर चुके थे। उस के चिर काल पश्चात् महाभारत की रचना हुई। तब पाण्डव आदि स्वर्ग को चले गए थे। भारत-रचना में व्यास जी को तीन वर्ष लगे थे। तत्पश्चात् वेदों के समान महाभारत-कथा भी व्यास जी ने अपने चारों शिष्यों और शुक जी को पढ़ा दी थी। भारत-कथा पढ़ने से पहले व्यास-शिष्य वेद और उन की शाखाओं का प्रचार कर चुके थे। गुरु के पास भारत-कथा पढ़ने वे दूसरी वार गए होंगे। भारत बनने से बहुत पहले ही शुक जी जनक से उपदेश ले कर आ गए थे। यदि इस जनक का नाम धर्मध्वज ही माना जाए, तो उस का काल भी निश्चित हो सकता है। महाभारत शान्तिपर्व अ० ३३५, ३३६ में व्यास-शिष्यों के वेदाध्ययन मात्र का कथन है; परन्तु अ० ३४९ में वेदों के साथ महाभारत

१—आदि पर्व ४८।७॥ तथा ५४।७॥

पढ़ने का भी उल्लेख है। अतः इन सब बातों को ध्यान में रख कर हम स्थूल रूप से कह सकते हैं कि वेद-शाखा-प्रवचन कलि से कोई १५० वर्ष पूर्व हुआ होगा।

व्यास और बादरायण

महाभारत आदि में तो व्यास नाम प्रसिद्ध ही है। तैत्तिरीय आरण्यक १।९।३५॥ में भी व्यास पाराशर्य नाम मिलता है। अनेक लोग ऐसा भी कहते हैं कि बादरायण भी इसी पाराशर्य व्यास का नाम था। पं० अभयकुमार गुह ने यही प्रतिपादन किया है कि ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं।[1] दूसरे लोग इस में सन्देह करते हैं। हमें अभी तक सन्देह के लिए अधिक कारण नहीं मिले।[2]

अश्वघोष और व्यास

मञ्जुश्रीमूलकल्प की उपलब्धि के पश्चात् अश्वघोष का काल अब सुनिश्चित ही समझना चाहिए। वह काल ईसा की पहली शताब्दी का आरम्भ है।[3] उस काल में भी व्यास एक ऐतिहासिक व्यक्ति समझा जाता था और उस का शाखा-प्रवचन करना भी एक ऐतिहासिक तत्व ही था। बुद्धचरित १।४७॥ में अश्वघोष कहता है—

सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्यं ददृशुर्न पूर्वम्।
व्यासस्तथैनं बहुधा चकार न यं वसिष्ठः कृतवान्न शक्तिः॥

अर्थात्—जो काम वसिष्ठ और शक्ति न कर सके, वह उन्हीं के वंशज व्यास ने किया। सारस्वत व्यास ने ही वेद-शाखा-प्रवचन किया।

अश्वघोष व्यास को सारस्वत कहता है। यह हमारी समझ में नहीं आया। टीका का अर्थ है सरस्वती तीर पर रहने वाला। अस्तु, जब अश्वघोष जैसा विद्वान् भी व्यास और उस के कुल को जानता है, और व्यास को एक ऐतिहासिक व्यक्ति मानता है, तो कुछ पश्चिमीय लोगों के

1—Jivatman in the Brahma Sutras, 1921.

२—मत्स्यपुराण १४।१६॥ में कहा है कि वेदव्यास का बादरायण भी एक नाम था।

3—Imperial History of India, p. 18.

कहने मात्र से हम यह नहीं मान सकते कि व्यास कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था ही नहीं।

कृष्णद्वैपायन से पूर्व के व्यास

वायु पुराण अध्याय २३ में द्वैपायन से पूर्व के प्रत्येक द्वापर के अन्त में होने वाले २७ व्यासों के नाम लिखे हैं। ब्रह्माण्ड पुराण दूसरा पाद अध्याय ३५ में श्लोक ११६–१२४ तक बत्तीस व्यासों का नाम लेकर अन्त में कहा है कि ये अठाईस व्यास हो चुके हैं। इन दोनों पुराणों में द्वैपायन से पहले जातूकर्ण्य, पराशर, शक्ति आदि व्यास माने गए हैं। ये लोग तो द्वैपायन के निकटस्थ सम्बन्धी अर्थात्, चचा, पिता और पितामह ही हैं। वायु पुराण २३।१८७॥ के अनुसार उन्नीसवां व्यास भरद्वाज था। उस के समकालीन हिरण्यनाभ कौसल्य लौगाक्षि और कुथुमि थे। ये सामवेदाचार्य द्वैपायन व्यास से कुछ ही पहले हुए थे। इन का पूरा वर्णन सामवेद के प्रकरण में होगा। अतः हमें तो यही प्रतीत होता है कि यदि ये समान नाम समय समय पर होने वाले अनेक ऋषियों के नहीं थे, तो पुराणों के द्वापर शब्द का यहां कुछ और अर्थ होगा। प्रतीत होता है कि द्वैपायन से पहले के वेदाचार्यों के ही ये नाम हैं।

व्यास और उन के शिष्यों ने जिन शाखाओं का प्रवचन किया, उन शाखाओं का स्वरूप आदि अगले अध्याय में लिखा जायगा।

षष्ठ अध्याय

चरण और शाखा

पारिभाषिक चरण शब्द का प्रयोग निरुक्त १।१७॥ पाणिनीयाष्टक २।४।३॥ महाभाष्य ४।२।१०४,१३८॥ और प्रतिज्ञा परिशिष्टादि ग्रन्थों में हुआ है। इसी प्रकार शाखा शब्द का प्रयोग उत्तरमीमांसा २।४।८॥ परिशिष्टों और महाभाष्य आदि में हुआ है। हैं ये दोनों शब्द अति प्राचीन। मूल में इन शब्दों के अर्थों में भेद रहा होगा, परन्तु काल के अतीत होते जाने पर जन-साधारण में इनका एक ही अर्थ रह गया। जहां तक हमारा विचार है, हमें प्रतीत होता है कि शाखा चरण का अवान्तर विभाग है। जैसे शाकल, वाष्कल, वाजसनेय,[1] चरक आदि चरण हैं, इनकी आगे पांच, चार, पन्द्रह और बारह यथाक्रम शाखाएं हैं। इस विचार का पोषक निरुक्त १।१७॥ का एक पाठ है—

सर्वचरणानां पार्षदानि

अर्थात्—सब चरणों के पार्षद।

अब विचारने का स्थान है कि सब वाजसनेयों का एक ही पार्षद है। माध्यन्दिनों का जुदा, काण्वों का जुदा और वैजवाप आदिकों का कोई जुदा पार्षद नहीं है। इसी प्रकार उपलब्ध ऋक्पार्षद सब शाकलों से सम्बन्ध रखता है। अतः यही प्रतीत होता है कि चरणों का अवान्तर विभाग शाखाएं हैं।

सौत्र शाखाएं

अनेक शाखाएं केवल सौत्र शाखाएं हैं। यथा भारद्वाज, सत्याषाढ आदि शाखाएं। इन्हें कोई विद्वान् चरणों में नहीं गिनता। न इन की

१—तुलना करो—भोजवर्मा का लगभग बारहवीं शताब्दी का ताम्रपत्र—
जमदग्निप्रवराय वाजसनेयचरणाय यजुर्वेदकण्वशाखाध्यायिने—
Inscriptions of Bengal, Volume III. published by The Varendra Research Society, Rajashahi, 1929, p.21.

स्वतन्त्र संहिता है और न ब्राह्मण। अतः चरण शब्द की अपेक्षा शाखा शब्द कुछ संकुचित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

महाभारत कुम्भघोण संस्करण शान्तिपर्व अध्याय १७० में लिखा है—

पृष्टश्च गोत्रचरणं स्वाध्यायं ब्रह्मचारिकम् ॥२॥

अर्थात्—राक्षस ने उस ब्राह्मण से उसका गोत्र, चरण, शाखा और ब्रह्मचर्य पूछा। स्वाध्याय का अर्थ यहां शाखा प्रतीत होता है और चरण से यह पृथक् गिना गया है।

शाखाएं क्या हैं

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये चरण और शाखाएं क्या हैं। इस विषय में दो मत उपस्थित किए जाते हैं। प्रथम मत यह है कि शाखाएं वेद के अवयव हैं। सब चरण मिलकर पूरा वेद बनता है। दूसरा मत यह है, कि शाखाएं वेद व्याख्यान हैं। अब इन दोनों मतों की परीक्षा जाती है।

प्रथम मत—शाखाएं वेदावयव हैं

इस मत के पूर्णतया मानने में भारी आपत्ति है। यदि यह मत मान लिया जाए, तो निम्नलिखित दोष आते हैं—

१—हम अभी कह चुके हैं, कि अनेक शाखाएं सौत्र शाखाएं हैं। यदि शाखाएं वेदावयव ही मानी जाएं, तो अनेक सूत्र ग्रन्थ भी वेद बन जाएंगे। यह बात वैदिक विचार के सर्वथा विपरीत है।

२—यह मत पहले भी अनेक विद्वानों को अभिमत नहीं रहा। नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद् प्राचीन उपनिषद् प्रतीत नहीं होती, पर शङ्कर आदि आचार्यों से पूर्व ही मान्यदृष्टि से देखी जाने लग पड़ी थी। उस में लिखा है—

ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सशाखाश्चत्वारः पादा भवन्ति ।१।२॥

अर्थात्—ऋग्, यजुः, साम और अथर्व चार वेद हैं। ये साथ अङ्गों के और साथ शाखाओं के चार पाद होते हैं।

यहां शाखाओं को वेदों से पृथक् कर दिया है।

३—बृहज्जाबालोपनिषद् के आठवें ब्राह्मण के पांचवें खण्ड में लिखा है—

य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स ऋचोधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते सोथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स कल्पानधीते ।

यहां भी शाखा और कल्प आदिकों को वेदों से पृथक् गिना है ।

४—इसी प्रकार यदि सब शाखाएं वेदावयव ही होतीं तो विश्वरूप बालक्रीडा १।७।। में यह न लिखता—

न हि मैत्रायणीशाखा काठकस्यात्यन्तविलक्षणा ।

अर्थात्—मैत्रायणी काठक से बहुत भिन्न नहीं है ।

दूसरा मत—शाखाएं वेद व्याख्यान हैं

इस मत के पोषक अनेक प्रमाण हैं जो नीचे लिखे जाते हैं ।

१—वायु आदि पुराणों में लिखा है—

सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः ।
पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ।।५९।।

वायु पु० अध्याय ६१।

अर्थात्—उस चतुष्पाद एक पुराण की अनेक संहिताएं बनीं । उन में पाठान्तरों के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं था। यह पाठान्तरों का भेद वैसा ही था कि जिस के कारण वेदशाखाएं बनी हैं ।

इस वचन से ज्ञात होता है कि मूल पुराण के पाठान्तर जिस प्रकार जान बूझ कर व्याख्यानार्थ ही किए गए थे, वैसे ही वेदसंहिताओं के पाठान्तर भी जान बूझ कर व्याख्यानार्थ ही किए गए। अब इन पाठान्तरों वाली संहिताओं का नाम ही शाखा है ।

२—इसी विचार की पुष्टि में पुराणों का दूसरा वचन है—

प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः ।।

वायु० पु० ६१।७५।।

अर्थात्—प्रजापति की कुल परम्परा वाली श्रुति तो नित्य है, पर शाखाएं उसी का विकल्पमात्र हैं ।

३—पाणिनीय सूत्र तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१॥ पर टीका करते हुए काशिका-विवरण-पञ्जिका का कर्ता जिनेन्द्रबुद्धि लिखता है—

तेन व्याख्यातं तदध्यापितं वा प्रोक्तमित्युच्यते ।

अर्थात्—व्याख्या करने अथवा पढ़ाने को प्रवचन कहते हैं। शाखा प्रोक्त हैं। अतः व्याख्यान या अध्यापन के कारण ये ऐसा कहाती हैं।

इसी सूत्र पर महाभाष्यकार पतञ्जलि का भी ऐसा ही मत है—

न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते । नित्यानि च्छन्दांसीति । यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या । तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति ।

अर्थात्—छन्द कृत नहीं हैं। छन्द नित्य हैं। यद्यपि अर्थ नित्य है, पर वर्णानुपूर्वी अनित्य है। उसी अनित्य वर्णानुपूर्वी के भेद से ही काठक, कालापक आदि भेद हो गए हैं।

इससे स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि वर्णानुपूर्वी अनित्य कहने से पतञ्जलि का अभिप्राय शाखाओं के पाठान्तरों से ही है। परन्तु क्योंकि वह अर्थ को नित्य मानता है, अतः पाठान्तर एक ही मूल अर्थ को कहने वाले व्याख्यान हैं।

४—महाभाष्य ४।१।३९॥ में आए हुए छन्दसि क्तमेके वचन का यही अर्थ है कि शाखाओं में कई आचार्य **असिक्न्यस्योषधे** पाठ पढ़ते हैं और दूसरे **असितास्योषधे** पढ़ते हैं। प्रातिशाख्यों में भी यही नियम पढ़ा गया है। इस का अभिप्राय भी यही है कि शाखाओं के अनेक पाठ अनित्य हैं। वेद का मूल पाठ ही नित्य है।

याज्ञवल्क्य का निर्णय

५—भगवान् याज्ञवल्क्य इस विषय में एक निर्णयात्मक सिद्धान्त बतलाते हैं। माध्यन्दिन शतपथ १।४।३।३५॥ में उन का प्रवचन है—

तदु हैके ऽन्वाहुः । होता यो विश्ववेदस इति नेदरमित्यात्मानं ब्रवाणीति तदु तथा न ब्रूयान्मानुषꣳ हि ते यज्ञे कुर्वन्ति व्यृद्धं वै तद्यज्ञस्य यन्मानुषं नेद्व्यृद्धं यज्ञे करवाणीति तस्माद् यथैवर्चानूक्तमेवानुब्रूयाद्…।

अर्थात्—अमुक यज्ञ में शाखा के पाठ न पढ़े। कई लोग ऐसा करते हैं। ऐसा पाठ मानुष है और यज्ञ की सिद्धि का बाधक है। अतः जैसा ऋचा=मूल ऋग्वेद में पाठ है, वैसा पढ़े।

मूल ऋक् पाठ की रक्षा का याज्ञवल्क्य को कैसा ध्यान था। विद्वान् लोग इस पर गम्भीर विचार करें और अपना अपना अभिप्राय समझें।

६—इस मत को स्पष्ट करने वाला एक और भी प्रमाण है। भरत-नाट्यशास्त्र का प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य अभिनवगुप्त लिखता है—

तत्र नाट्यशास्त्रशब्देन चेदिह ग्रन्थस्तद् ग्रन्थस्येदानीं करणं न तु प्रवचनम्। तद्धि व्याख्यानरूपं करणाद्भिन्नम्। कठेन प्रोक्तमिति यथा।

अर्थात्— यदि नाट्यशास्त्र शब्द से यहां ग्रन्थ का ग्रहण है, तो उसका कर्तृत्व अभिप्रेत है, प्रवचन नहीं। प्रवचन व्याख्यान होता है और करण से पृथक् होता है, जैसे कठका प्रवचन कठका व्याख्यान है। अभिनवगुप्त का यहां स्पष्ट यही अभिप्राय है कि शाखाप्रवचन और व्याख्यान समानार्थक शब्द हैं।

शाखाओं में पाठान्तर करके किस प्रकार से व्याख्यान किया गया है, इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१—ऋग्वेद में एक पाठ है—**सचिविदं सखायं** १०।७१।६॥ इसी का व्याख्यान तै० आ० में है—**सखिविदं सखायं** १।३।१॥२।१५।१॥

२—यजुर्वेद में एक पाठ है—**भ्रातृव्यस्य वधाय** १।१८॥ इसी का व्याख्यान काण्व सं० में है—**द्विषतो वधाय** १।३॥

३—अगला मन्त्रभाग यजुर्वेद ९।४०॥१०।१८॥ काण्व संहिता ११।३।३॥ तैत्तिरीय संहिता १।८।१०।१२॥ काठक संहिता १५।७॥ और मैत्रायणीय संहिता ११।६।९॥ में क्रमशः उपलब्ध है—

एष वो ऽमी राजा	यजुः
एष वः कुरवो राजैष पञ्चाला राजा	काण्व
एष वो भरता राजा	तै०
एष ते जनते राजा	काठक
एष ते जनते राजा	मैत्रा०

यजुः पाठ मूल पाठ है।[1] उस के स्थान में प्रत्येक शाखाकार अपने जनपद का स्मरण करता है। काठक और मैत्रायणी शाखाएं गणराज्यों में प्रवचन की जाने लगी थीं। अतः उन का पाठ जनते है। वहां जनता ही सर्व प्रधान थी।

यही पाठान्तर हैं, जो एक प्रकार का व्याख्यान हैं। इन्हीं पाठान्तरों के कारण अनेक शाखाएं बनी हैं। इनके अतिरिक्त कुछ शाखाओं में, और विशेषतया ऋग्वेदीय शाखाओं में, दो चार सूक्तों की कमती बढ़ती दिखाई देती है। यथा शाकलों में कई वालखिल्य सूक्त नहीं हैं, परन्तु बाष्कलों में ये मिलते हैं। मूल ऋग्वेद में ये सारे समाविष्ट हैं।

यह शाखा-विषय अत्यन्त जटिल है। जब तक वेदों की अधिकांश शाखाएं उपलब्ध न हों, तब तक हम इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते। अतः अनुपलब्ध शाखाओं के अन्वेषण का पूर्ण प्रयत्न होना चाहिए।

———

१—माध्यन्दिन पाठ क्यों मूल यजु पाठ है, यह आगे लिखेंगे।

सप्तम अध्याय

ऋग्वेद की शाखाएं

आचार्य पैल

व्यास मुनि से ऋग्वेद पढ़ने वाले शिष्य का नाम पैल था। पाणिनीय सूत्र २।४।५९॥ के अनुसार इस की माता का नाम पीला और पिता का नाम पैल हो सकता है। भगवान् व्यास महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय ऋत्विक् कर्म के लिए एक पैल को अपने साथ लाए थे। उस के विषय में महाभारत सभापर्व अध्याय ३६ में लिखा है—

पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत् ॥ ३५ ॥

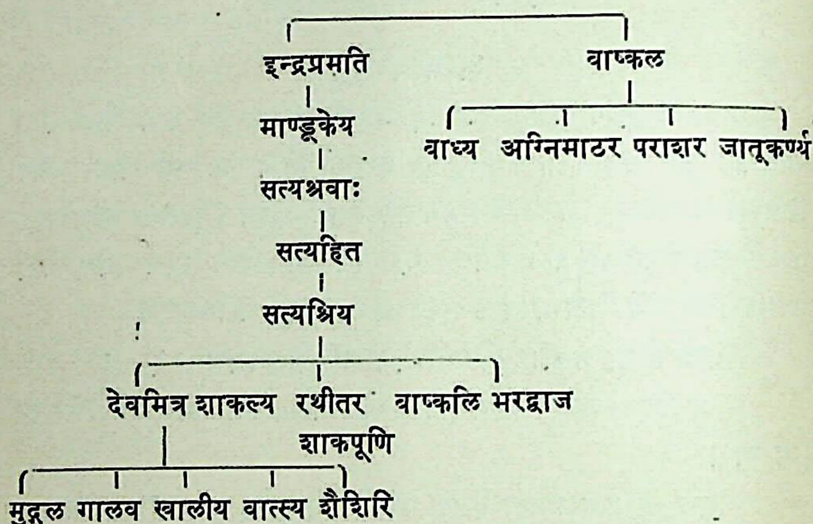
अर्थात्—उस यज्ञ में धौम्य के साथ होता का कर्म पैल कर रहा था।

इस से पता लगता है कि यह पैल वसु का पुत्र था। होता का कर्म ऋग्वेदीय लोग करते हैं, अतः यह भी बहुत सम्भव है कि यह पैल व्यास का ऋग्वेद पढ़ने वाला शिष्य ही हो। पुराणों में लिखा है कि व्यास से ऋग्वेद पढ़ कर पैल ने उस की दो शाखाएं कीं। एक को उस ने बाष्कल को पढ़ाया और दूसरी को इन्द्रप्रमति को। इन्द्रप्रमति की परम्परा में उस के चरण की आगे कई अवान्तर शाखाएं बनीं। इन्द्रप्रमति की संहिता माण्डूकेय को मिली। उस से यह सत्यश्रवा, सत्यहित और सत्यश्रिय को मिलती गई। ये तीनों नाम कुछ भ्राताओं के से प्रतीत होते हैं। सम्भव है कि ये तीनों माण्डूकेय के शिष्य हों; परन्तु पुराणों में ऐसा नहीं लिखा। अनुशासन पर्व अध्याय ८ श्लोक ५८–६७ तक गार्त्समद वंश का वर्णन है। उस वंश में वागिन्द्र के पुत्र का नाम प्रमति बताया गया है। उस के सम्बन्ध में वहीं लिखा है—

प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतांवरः।
तस्यात्मजश्च प्रमतिर्वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ६४ ॥

अर्थात्—इन्द्र का पुत्र प्रमति वेद वेदाङ्ग पारग था।

इस प्रमति का विशेषण वेदवेदाङ्ग पारग है। हमें तो यही पैल का शिष्य प्रतीत होता है। यह सारी परम्परा निम्नलिखित चित्र से स्पष्ट हो जायगी



पैल का शिष्य इन्द्रप्रमति कहा गया है। एक इन्द्रप्रमति एक वसिष्ठ का पुत्र था। इस का दूसरा नाम कुणि भी था। ब्रह्माण्ड पुराण तीसरा पाद ८।९७॥ में लिखा है कि इस इन्द्रप्रमति का पुत्र वसु और वसु का पुत्र उपमन्यु था। एक उपमन्यु निरुक्तकार भी था। यद्यपि अधिक सामग्री के अभाव में सुनिश्चित रूप से अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना तो जान पड़ता है कि पैल, वसु, यह इन्द्रप्रमति और उपमन्यु आदि परस्पर सम्बन्धी ही थे। शाकपूणि और बाष्कलि भरद्वाज के शिष्य इस चित्र में नहीं लिखे गए।

इन ऋषियों द्वारा ऋग्वेद की जितनी शाखाएं बनीं, अब उन का उल्लेख किया जाता है।

इक्कीस आर्च शाखाएँ

पतञ्जलि अपने व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक में लिखता है—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्।

अर्थात्—इक्कीस शाखायुक्त ऋग्वेद है।

प्रपञ्चहृदय के द्वितीय अर्थात् वेदप्रकरण में लिखा है—

वाह्वृच एकविंशतिधा। अथर्ववेदो नवधा। तत्र केनचित्कारणेन शतक्रतुना वज्रघातिता वेदशाखाः। तत्रावशिष्टाः सामबाह्वृचयोर्द्वादश द्वादश।········। वाह्वृचस्य—

ऐतरेय-वाष्कल-कौषीतक-जानन्ति-वाह्वि-गौतम-शाकल्य-बाभ्रव्य-पैङ्ग-मुद्गल-शौनकशाखाः।

अर्थात्—ऋग्वेद इक्कीस शाखा वाला है। उन में से बारह बची हैं। वे हैं ऐतरेय आदि।

इन्हीं शाखाओं से सम्बन्ध रखने वाला एक लेख दिव्यावदान नामक बौद्ध ग्रन्थ में मिलता है। उस पाठ को शुद्ध कर के हम नीचे लिखते हैं—

सर्वे ते बह्वृचाः पुष्प एको भूत्वा विंशतिधा भिन्नाः। तद्यथा शाकलाः। वाष्कलाः। माण्डव्या इति। तत्र दश शाकलाः। अष्टौ वाष्कलाः। सप्त माण्डव्या इत्ययं ब्राह्मण बह्वृचानां शाखा पुष्प एको भूत्वा पञ्चविंशतिधा भिन्नाः।

यह पाठ मुद्रित पुस्तक में बड़ा अशुद्ध है। इस की अशुद्धता का इसी से प्रमाण है कि बह्वृचों की पहले २० शाखा कह कर पुनः २५ गिना दी हैं। सम्भव है प्राचीन पाठ में दोनों स्थानों पर २१ ही पाठ हो।

जैन आचार्य अंकलङ्कदेव अपने राजवार्तिक में दो स्थानों पर वेद की कुछ शाखाओं का नाम लिखता है।[1] उन दोनों स्थानों का पाठ मिला कर और शुद्ध कर के हम नीचे लिखते हैं—

शाकल्य वाष्कल कौथुमि सात्यमुग्रि चारायण कठ माध्यन्दिन मौद पैप्पलाद बादरायण अंबष्ठकृत ? ऐतिकायन वसु जैमिनि आदीनामज्ञानदृष्टीनां सप्तषष्टिः

अर्थात्—शाकल्य आदि ६७ शाखाएं हैं। इन में से प्रथम दो ऋग्वेद की शाखाएं हैं।

आथर्वण परिशिष्ट चरणव्यूह में लिखा है—

तत्र ऋग्वेदस्य सप्त शाखा भवन्ति। तद्यथा आश्वलायनाः।

१—पृ० ५१ और २९४। मुद्रित-पाठ बहुत भ्रष्ट है।

शांखायनाः । साध्यायनाः । शाकलाः । वाष्कलाः । औदुम्वराः । माण्डूकाश्चेति ।

इन में साध्यायन और औदुम्बर कौन हैं; यह निर्णय करना कठिन है । सम्भव है यह पाठ भ्रष्ट हो गए हों ।

अणुभाष्य १।१।१॥ में स्कन्द पुराण से निम्नलिखित प्रमाण दिया गया है—

चतुर्धा व्यभजत्तांश्च चतुर्विंशतिधा पुनः ।
शतधा चैकधा चैव तथैव च सहस्रधा ॥
कृष्णो द्वादशधा चैव पुनस्तस्यार्थवित्तये ।
चकार ब्रह्मसूत्राणि येषां सूत्रत्वमञ्जसा ॥

अर्थात्—ऋग्वेद की चौवीस शाखाएँ थीं ।

आर्च शाखाओं के पांच मुख्य विभाग

ऋग्वेदीय इक्कीस शाखाओं के पांच मुख्य विभाग हैं । उन के विषय में कहा है—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति । शाकलाः । वाष्कलाः । आश्वलायनाः । शांखायनाः । माण्डूकेयाश्चेति ।

अर्थात्—ऋग्वेदीय शाखाएं पञ्चविध हैं । कई शाकल, कई वाष्कल, कई आश्वलायन, कई शांखायन और कई माण्डूकेय कहाती हैं ।

चरणव्यूह के इस वचन का अर्थ करते हुए हमने कई शाकल, कई वाष्कल आदि माने हैं । मैक्समूलर चरणव्यूह के इस वचन का ऐसा अर्थ नहीं समझता । चरणव्यूह कथित ऋग्वेद के इन पांच चरणों का नाम लिख कर वह कहता है—

We miss, the names of several old Śākhās such as the Aitareyins, Śaiśiras, Kaushitakins, Paingins,[1]

परन्तु नीचे शैशिर पर टिप्पणी में लिखता है—

The Śaiśira śākha, however, may perhaps be considered as a subdivision of the Sākala śākhā.

1—History of ancient Sanskrit literature, 1860, p. 368.

अर्थात्—"चरणव्यूह में ऐतरेय, शैशिर, कौषीतकि और पैङ्गि आदि प्राचीन शाखाओं के नाम नहीं हैं। हां शैशिर शाखा सम्भवतः शाकल शाखा का अवान्तर भेद हो सकता है, क्योंकि पुराणों में ऐसा ही लिखा है।"

इसी प्रकार स्वामी हरिप्रसाद भी शाकल को कोई एक ऋषिविशेष समझते हैं। उन के वेदसर्वस्व में लिखा है—

इस संहिता का सब से प्रथम सूक्त और मण्डलों में विभाग करने वाला शाकल ऋषि माना जाता है। पृ० २४।

पुनः वहीं लिखा है—

ऋक्संहिता का प्रवचनकर्ता शाकल बहुत प्राचीन और पद-संहिता का आविष्कर्ता शाकल्य उसकी अपेक्षा अर्वाचीन है। पृ० ३४

मैक्समूलर को इन पांच मुख्य विभागों के अवान्तर भेदों के संबन्ध में कुछ खटका हुआ, परन्तु स्वामी हरिप्रसाद ने शाकल को शाकल्य से भी पूर्व मान कर बड़ी भूल की है। मैक्समूलर, हरिप्रसाद आदि विद्वानों की इस भूल का कारण अगले लेख से स्पष्ट हो जाएगा।

१—शाकल शाखाएं

तेरह वर्ष हो चुके, जब ऋग्वेद पर व्याख्यान नाम का ग्रन्थ हमने लिखा था। उस के प्रथम ३३ पृष्ठों में हमने यह बताया था कि शाकल नाम का कोई ऋषिविशेष नहीं हुआ। इस के विपरीत शाकल शब्द शाकल्य के छात्रों वा शाकल्य की शिक्षा आदि के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। यह बात अब और भी अधिक सत्य प्रतीत होती है। जिस प्रकार वाजसनेय याज्ञवल्क्य के पन्द्रह शिष्य वाजसनेय कहाए और उन की प्रवचन की हुई जाबाल आदि संहिताएं वाजसनेय संहिता के समान नाम से पुकारी जाने लगीं, तथा जिस प्रकार याजुष आचार्य वैशम्पायन चरक के अनेक शिष्य चरकाध्वर्यु कहाए, और उन की कठादि शाखाएं चरक-शाखा भी कहाईं, और जिस प्रकार कलापी के हरिद्रु आदि शिष्य कालाप कहाए और उन की शाखाएं कालाप कहाईं, ठीक उसी प्रकार शाकल्य के अनेक शिष्य शाकल कहाए और उन की प्रवचन की हुई संहिताएं

भी शाकल कहाईं। वे शाकल संहिताएं कौन कौन थीं, अब इस विषय की विवेचना की जाती है। वायुपुराण अध्याय ६० में कहा है—

देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ॥६३॥
तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गोलकस्तथा।
खालीयश्च तथा मत्स्यः शोशरेयस्तु पञ्चमः ॥६४॥[1]

इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण अध्याय ३५ में लिखा है—

वेदमित्रश्च शाकल्यो महात्मा द्विजपुंगवः।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् वेदवित्तमः ॥१॥
पञ्च तस्याभवञ्छिष्या मुद्गलो गोखलस्तथा।
खलीयान् सुतपा वत्सः शैशिरेयश्च पञ्चमः ॥२॥[2]

इसी विषय का निम्नलिखित पाठ विष्णु पुराण ३।४॥ में है—

देवमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान्।
चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः।
तस्य शिष्यास्तु ये पञ्च तेषां नामानि मे शृणु ॥२१॥
मुद्गलो गोखलश्चैव वात्स्यः शालीय एव च।
शिशिरः पञ्चमश्चासीन् मैत्रेय स महामुनिः ॥२२॥[3]

पूर्वोक्त पाठ मुद्रित पुराणों से लिए गए हैं। इन पाठों में शाखा-प्रवचन-कर्ता ऋषियों के नाम बड़े भ्रष्ट हो गए हैं। दयानन्द कालेज के पुस्तकालय में ब्रह्माण्ड पुराण का एक कोष है। संख्या उस की है २८११। विष्णु पुराण के तो वहां अनेक कोष हैं। उन में से संख्या १८५० और ४५४७ के कोषों का पाठ अधिक शुद्ध है। उन सब को मिलाने से वायु का निम्नलिखित पाठ हमने शुद्ध किया है—

वेदमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ॥६३॥

१—आनन्दाश्रम संस्करण।
२—वेङ्कटेश्वरप्रेस संस्करण।
३—कृष्णशास्त्री का संस्करण, मुम्बई।

तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गालवस्तथा ।
शालीयश्च तथा वात्स्यः शैशिरी यस्तु पञ्चमः ॥६४॥

अर्थात् —शाकल्य के पांच शिष्य थे । उन को उस ने पांच संहिताएं दीं । उन के नाम थे मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और शैशिरि ।

इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले निम्नलिखित श्लोक भी ध्यान देने योग्य हैं । ये श्लोक शैशिरि शिक्षा के आरम्भ में मिलते हैं । इस शिक्षा का एक हस्तलेख मद्रास के राजकीय संग्रह में है—

मुद्गलो गालवो गार्ग्यं शाकल्यशैशिरीस्तथा ।
पञ्च शौनक शिष्यास्ते शाखाभेदप्रवर्तकाः ॥
शैशिरस्य तु शिष्यस्य शाकटायन एव च ।[1]

इन श्लोकों का पाठ भी पर्याप्त भ्रष्ट हो गया है । गार्ग्य के स्थान में यहां वात्स्यः पाठ चाहिए और शाकल्य के स्थान में शालीय चाहिए । इसी प्रकार शौनक के स्थान में शाकल्य चाहिए, इत्यादि ।

विकृतिवल्ली पर गङ्गाधर की एक टीका है । उस टीका में उद्धृत किए हुए दो श्लोक हमने अपने ऋग्वेद पर व्याख्यान के पृ० ३२ पर लिखे हैं । उन श्लोकों का पाठ भी अत्यधिक विगड़ गया है, और प्राचीन सम्प्रदाय के सर्वथा विरुद्ध है ।

इतने लेख से यह ज्ञात हो जायगा कि शाकल शाखाएं पांच थीं । उन के नाम निम्नलिखित थे ।

पांच शाकल शाखाएं

१—मुद्गल शाखा । इस शाखा की संहिता का अभी तक हमें ज्ञान नहीं हो सका । न ही इस के ब्राह्मण, सूत्रादि का पता लगा है । प्रपञ्चहृदय नामक ग्रन्थ के लिखे जाने के काल तक यह शाखा विद्यमान थी । ऋग्वेदीय शाखाओं के नामों में वहां मुद्गल शाखा का नाम मिलता है । एक मुद्गल का नाम बृहद्देवता में दो वार आया है ।

1— Trienneal Catalogue of Sanskrit Mss. Vol. IV. part IC. 1928. pp. 549, 97.

महानैन्द्रं प्रत्नवत्याम् अग्निं वैश्वानरं स्तुतम् ।
मन्यते शाकपूणिस्तु भार्म्यश्वश्चैव मुद्गलः ॥४६॥ अध्याय ६ ।
आयं गौरिति यत्सूक्तं सार्पराज्ञी स्वयं जगौ ॥८९॥
तस्मात्सा देवता तत्र सूर्यमेके प्रचक्षते ।
मुद्गलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकटायनः ॥९०॥ अध्याय ९ ।

इन दो प्रमाणों में से प्रथम प्रमाण में मुद्गल को भृम्यश्व का पुत्र कहा गया है । दूसरे प्रमाण में उस के साथ कोई विशेषण नहीं जोड़ा गया । परन्तु दोनों स्थानों को ध्यानपूर्वक देख कर यह कहा जा सकता है कि इन दोनों स्थानों में वर्णन है एक ही आचार्य का । शाकपूणि ऋग्वेद का एक शाखाकार है । उसके साथ स्मरण होने वाला आचार्य या तो शाखाकार है या शाखाकारों के काल का कोई वेद-विद्या-विशारद अध्यापक है ।

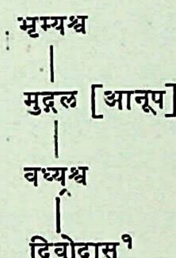
हमारा अनुमान है कि यही मुद्गल शाकल्य का एक शिष्य था । और इस मुद्गल के पिता का नाम भृम्यश्व था । इसी भार्म्यश्व मुद्गल का नाम निरुक्त ९।२३॥ में मिलता है—

तत्रेतिहासमाचक्षते । मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिर्वृषभं च द्रुघणं च युक्त्वा संग्रामे व्यवहृत्याजिं जिगाय ।

यही भार्म्यश्व मुद्गल ऋग्वेद १०।१०२॥ का ऋषि है । इस सूक्त के कई मन्त्रों में मुद्गल शब्द आता है। वह शब्द किसी व्यक्तिविशेष का वाचक नहीं । यास्क ने वेद मन्त्रों को समझाने के लिए एक काल्पनिक ऐतिहासिक घटना लिखी है । यह नहीं हो सकता कि शाकल्य, जैमिनि आदि ऋषियों का समकालीन मुद्गल मन्त्रों को बनाए और जैमिनि आदि ऋषि उन्हीं मन्त्रों को नित्य कहें ।[1] विद्वानों को इस बात पर गम्भीर विचार करना चाहिए ।

१—वर्तमान मीमांसा सूत्र उसी जैमिनि मुनि के हैं जो कि शाखाकार जैमिनि था । इस विषय पर संक्षेप से इस इतिहास के दूसरे भाग के पृ० ८०–८३ पर लिखा जा चुका है । इसका विस्तृत वर्णन सूत्र ग्रन्थों के इतिहास लिखते समय किया जायगा ।

कलकत्ता के प्रोफेसर सीतानाथ प्रधान बृहस्पति ने एक पुस्तक सन् १९२७ में प्रकाशित की थी। नाम है उसका Chronology of Ancient India. उस में उन्हों ने अनेक स्थानों पर इसी भार्म्यश्व मुद्गल का उल्लेख किया है। उनके अनुसार भृम्यश्व की कुल परम्परा ऐसे थी—



इस परम्परा को हम भी ठीक मानते हैं। अब विचारने का स्थान है कि यह दिवोदास भृम्यश्व से चौथे स्थान पर है। हम यह भी जानते हैं कि मुद्गल का एक गुरु शाकल्य था। गुरु-परम्परा की दृष्टि से व्यास इस शाकल्य से कुछ पहले का था। प्रो० सीतानाथ प्रधान वध्य्रूश्व के पुत्र दिवोदास का वर्णन कई ऋग्वेदीय मन्त्रों में बताते हैं।[2] दिवोदास ही नहीं, प्रत्युत उनके अनुसार तो दिवोदास के पुत्र या दिवोदास के समकालीन पैजवन के पुत्र सुदास का वर्णन भी ऋग्वेद में है।[3] आश्चर्य है कि व्यास ने जब समग्र ऋग्वेद अपने शिष्यों को पढ़ाया था, तो उस समय इस दिवोदास का अस्तित्व भी न होगा, उस के पुत्र या उस के समकालीन पैजवन के पुत्र सुदास का तो कहना ही क्या। पुनः उस का वर्णन ऋग्वेद में कैसे आगया?

१—पृ० ११ तथा ८६।

२—पृ० ८६।

३—पृ० ८५,८६। प्रो० सीतानाथ इस विषय में ऋग्वेद ७।८।२५॥ का प्रमाण देते हैं। एक दिवोदास भीमसेन का पुत्र था। देखो काठक संहिता ७।८॥ परन्तु प्रो० सीतानाथ का अभिप्राय वध्य्रूश्व पुत्र दिवोदास से ही है। उनके अनुसार ऋ० ६।६१।१॥ में ऐसा ही संकेत है—

दिवोदासं वध्य्रूश्वाय दाशुषे

महाभारत और पुराणों के अनुसार मुद्गल आङ्गिरस पक्ष या गोत्र वाले थे। महाभारत वन पर्व अध्याय २६१ में एक मुद्गल का उल्लेख है। व्यास जी उस के दान की कथा युधिष्ठिर को सुनाते हैं। विहार प्रान्त में कई लोगों ने हम से कहा था कि वर्तमान मुंगेर प्राचीन अङ्गदेश की राजधानी थी। वहीं जाह्नवी तीर पर मुद्गल का आश्रम था। हमें इस के निर्णय करने का अवसर नहीं मिल सका।

मुद्गल नाम के अनेक ऋषि हो चुके हैं। यदि शाखाकार मुद्गल भार्म्यश्व नहीं था, तो किसी दूसरे मुद्गल की खोज करनी चाहिए जो कि शाखाकार हो।

क्या निरुक्त ११।६॥ में स्मरण किया हुआ शतबलाक्ष मौद्गल्य इसी मुद्गल का पुत्र और वध्र्यूश्व का भ्राता था। यह विचार करना चाहिए।

आयुर्वेदीय चरक संहिता सूत्रस्थान २५।८॥ में **पारीक्षि मौद्गल्य** और २६।३,८॥ में **पूर्णाक्ष मौद्गल्य** के नाम मिलते हैं। ये ऋषि महाभारत कालीन हैं।

मुद्गलों का उल्लेख आश्वलायन श्रौत १२।१२॥ आदि में भी है।

२—**गालव शाखा**। इस शाखा की संहिता भी अभी तक अप्राप्त है। न ही इस का ब्राह्मण और न सूत्र अभी तक मिला है। यह गालव पाञ्चाल अर्थात् पञ्चाल निवासी था। इसका दूसरा नाम बाभ्रव्य था। कामसूत्र में सम्भवतः इसी को बाभ्रव्य पाञ्चाल कहा गया है।[1] इसी ने ऋग्वेद का क्रमपाठ बनाया था। इस का उल्लेख ऋक्प्रातिशाख्य, निरुक्त बृहद्देवता और अष्टाध्यायी आदि में मिलता है। यह सब बातें इस इतिहास के प्रथम भाग के द्वितीय खण्ड में पृ० १७८-१८० पर सविस्तर लिख चुके हैं।

१—भारतीय इतिहास की रूपरेखा के पृ० २१८ पर विद्यालङ्कार पं०जयचन्द्र का मत है कि कामशास्त्र का प्रणेता कोई दूसरा बाभ्रव्य था। मत्स्यपु० का साक्ष्य इसके विपरीत है। श्वेतकेतु नाम के समय समय पर अनेक आचार्य हो चुके हैं, अतः नहीं कह सकते कि कामशास्त्र का रचयिता श्वेतकेतु कौन था।

इसी बाभ्रव्य=गालव का नाम आश्वलायन,[1] कौषीतकि[2] और शाम्बव्य[3] गृह्यसूत्रों के ऋषितर्पण प्रकरणों में मिलता है। प्रपञ्चहृदय में भी बाभ्रव्य शाखा का नाम मिलता है। यह बाभ्रव्य कौशिक था। इस के लिए देखो अष्टाध्यायी ४।१।१०६॥ व्याकरण महाभाष्य १।१।४४॥ में निम्नलिखित पाठ आया है—

आचार्यदेशशीलेन यदुच्यते तस्य तद्विषयता प्राप्नोति। इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य (६।३।६१॥) प्राचामवृद्धात् फिन्बहुलम् (४।१।१६०॥) इति गालवा एव ह्रस्वान् प्रयुञ्जीरन् प्राक्षु चैव हि फिन् स्यात। तद्यथा जमदग्निर्वा एतत् पञ्चममवदानमवाद्यत् तस्मान्ना-जामदग्न्यः पञ्चावत्तं जुहोति।

पतञ्जलि ने इस प्रकार के लेख से गालव को प्राच्य दिशा में रहने वाले आचार्यों से पृथक् कर दिया है। हम पहले लिख चुके हैं कि गालव पाञ्चाल था। पाञ्चाल देश आधुनिक रोहेलखण्ड के आस पास का प्रदेश है। प्राच्य देश इस से बहुत पूर्व को है।

ऐतरेय आरण्यक ५।३॥ में लिखा है—

नेदमेकस्मिन्नहनि समापयेत् इति ह स्माह जातूकर्ण्यः। समापयेत् इति गालवः।

अर्थात्—इस महाव्रताध्ययन को एक ही दिन में समाप्त न करे, ऐसा जातूकर्ण्य का मत है। समाप्त करे, यह गालव का मत है। इस स्थान पर जिन दो आचार्यों के मत दिखाए गए हैं, वे दोनों हमारी सम्मति में शाखाकार आचार्य ही हैं। यही गालव एक शाकल है।

आयुर्वेद की चरकसंहिता के आरम्भ में हिमालय के पास अनेक ऋषियों का एकत्र होना लिखा है। आयुर्वेद की चरक आदि संहिताएं महाभारत काल में ही संकलित हुई थीं। उसी समय वेद की शाखाओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन भी हो रहा था। वेद-शाखा-प्रवचनकर्ता

१—३।३।५॥
२—४।१०॥
3— Indische Studien vol. XV. p. 154.

अनेक ऋषि ही दूसरे शास्त्रों के भी कर्ता थे।[1] चरकसंहिता के आरम्भ में एक गालव का भी उल्लेख है। वह गालव यही ऋग्वेदीय आचार्य होगा।

महाभारत सभापर्व के चतुर्थाध्याय में लिखा है—

सभायामृषयस्तस्यां पाण्डवैः सह आसते ॥१५॥

पवित्रपाणिः सावर्णो भालुकिर्गालवस्तथा ॥२१॥

अर्थात्—जब मय वह दिव्य सभा बना चुका तो युधिष्ठिर ने उस में प्रवेश किया। उस समय गालव आदि ऋषि भी वहां पधारे थे। इसी पर्व के सातवें अध्याय के दशम श्लोक में भी गालव स्मरण किया गया है।

निस्सन्देह यह गालव ऋग्वेदीय आचार्य ही है।

स्कन्द पुराण, नागर खण्ड पृ० १६८क के अनुसार एक गालव कौरव राज्य के मन्त्री विदुर से मिला था। ऐतरेय ब्रा० ७।१॥ और आश्वलायन श्रौत में एक गिरिज बाभ्रव्य का नाम मिलता है। जैमिनीय उप० ब्रा० ३।४१।१॥ तथा ४।१७।१॥ में शङ्ख बाभ्रव्य स्मरण किया गया है।

बाभ्रव्य=गालव सम्बन्धी ऐतिहासिक कठिनाई

मत्स्यपुराण २१।३०॥ में बाभ्रव्य को सुबालक और दक्षिण पाञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का मन्त्री कहा गया है। सुबालक नाम गालव का ही भ्रष्ट पाठ प्रतीत होता है। हरिवंश में अध्याय २० से इसी ब्रह्मदत्त का वर्णन मिलता है। तदनुसार यह ब्रह्मदत्त भीष्म जी के पितामह प्रतीप का समकालीन था। मत्स्य आदि पुराणों में इसी के मन्त्री बाभ्रव्य को ऋग्वेद के क्रमपाठ का कर्ता कहा गया है। यह बाभ्रव्य पाञ्चाल व्यास जी से कुछ पहले हो चुका होगा। यदि इस का आयु बहुत ही अधिक न हो, तो यह शाखा-प्रवचन काल तक परलोक गमन कर गया होगा। अतः सम्भव है कि

१—इसी अभिप्राय से गोतम ने—मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च-इत्यादि न्यायसूत्र रचा। और चरकोपवर्णित ऋषियों के सम्पूर्ण इतिहास को जानते हुए ही वात्स्यायन ने—य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेद-प्रभृतीनाम्—लिखा है।

इस के कुल वा शिष्य परम्परा में आने वाले विद्वान् भी गालव ही कहाए हों और उन्हीं में से कोई एक ऋग्वेदीय शाखाकार हो । ऐसी ही ऐतिहासिक कठिनाई सामवेद के प्रकरण में राजा हिरण्यनाभ कौसल्य के विषय में आएगी । पार्जिटर ने भी अपनी प्राचीन भारतीय ऐतिह्य परम्परा के पृ० ६४, ६५ पर इस कठिनाई का उल्लेख किया है। अस्तु, हम इस कठिनाई को अभी तक सुलझा नहीं सके ।

३—शालीय शाखा । इस शाखा के संहिता, ब्राह्मण और सूत्रादि भी अभी तक नहीं मिले। हां काशिकावृत्ति के उदाहरणों में अन्य शाखाकार ऋषियों के साथ ही इसका भी स्मरण किया गया है। यथा—

आश्वलायनः । ऐतिकायनः। औपगवः । औपमन्यवः। शालीयः । १।१।१॥

तथा—

गार्गीयः । वात्सीयः । शालीयः। ४।२।११४॥

४—वात्स्य शाखा । इस शाखा सम्बन्धी हमारा ज्ञान भी शालीय शाखा के सदृश ही है । इस शाखा के विषय में महाभाष्य ४।२।१०४॥ पर गोत्रचरणाद्वुञ् वार्तिक के चरण सम्बन्धी निम्नलिखित उदाहरण देखने योग्य हैं—

काठकम् । कालापकम् ।······। गार्गकम् । वात्सकम्। मौदकम् । पैप्पलादकम् ।

इन उदाहरणों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि कोई वात्सी शाखा भी थी ।

शांखायन आरण्यक के कुछ हस्तलेखों में ८।३॥ और ८।४॥ के अन्तर्गत एक वाधवः पाठ है। इसी का पाठान्तर दूसरे हस्तलेखों में वात्स्यः है । सम्भव है यहां वात्स्यः पाठ ही ठीक हो । ऐतरेय आरण्यक ३।२३। में ऐसे ही स्थान पर यद्यपि बाध्वः पाठ है, और सायण भी इसी पाठ पर भाष्य करता है, तथापि ऐसा अनुमान होता है कि ऐतरेय आरण्यक में भी वात्स्यः पाठ ही चाहिए ।

शुक्ल यजुओं में भी एक वत्स या पौण्ड्रवत्स शाखा मानी गई है। वत्सों या वात्स्यों का अधिक उल्लेख हम वहीं करेंगे।

५—शैशिरि शाखा। इस शाखा के संहिता, ब्राह्मण आदि भी नहीं मिलते। परन्तु इसका उल्लेख तो अनेक स्थानों में मिलता है। अनुवाकानुक्रमणी में लिखा है—

ऋग्वेदे शैशिरीयायां संहितायां यथाक्रमम्।
प्रमाणमनुवाकानां सूक्तैः शृणुत शाकलाः ॥१॥

अर्थात्—हे शाकल्य के शैशिरि आदि शिष्यो ऋग्वेद की शैशिरि संहिता में अनुवाकों का सूक्तों के साथ जैसा क्रमानुसार प्रमाण है, वह सुनो।

ऋक्प्रातिशाख्य के प्रारम्भिक श्लोकों में लिखा है—

छन्दोज्ञानमाकारं भूतज्ञानं छन्दसां व्याप्तिं स्वर्गामृतत्वप्राप्तिम्।
अस्य ज्ञानार्थमिदमुत्तरत्र वक्ष्ये शास्त्रमखिलं शैशिरीये ॥७॥

अर्थात्—ऋक्प्रातिशाख्य शैशिरीय शाखा संबन्धी है। शैशिरीय शिक्षा का उल्लेख पहले पृ० ८३ पर किया जा चुका है। एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के ऋक्सर्वानुक्रमणी के कुछ हस्तलेखों के अन्त में लिखा है—

शाकल्ये शैशिरीयके। संख्या २२१, २२५।

विकृतिवल्ली में, जो व्याडि रचित कही जाती है, लिखा है—

शैशिरीये समाम्नाये व्याडिनैव महर्षिणा।
जटाद्या विकृतीरष्टौ लक्ष्यन्ते नातिविस्तरम् ॥४॥

अर्थात्—शैशिरीय समाम्नाय में व्याडि ने जटा आदि आठ विकृतियां कही हैं।

शैशिरीय शाखा का परिमाण

शौनक की अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार इस शाखा में—

८५ अनुवाक
१०१७ सूक्त
२००६ वर्ग और
१०४१७ मन्त्र हैं।

इस शाखा का जितना वर्णन अनुवाकानुक्रमणी और ऋक्प्रातिशाख्य में मिलता है, उससे इस शाखा की संहिता का ज्ञान हो सकता है।

सायण का भाष्य जिस शाखा पर है वह अधिकांश में शैशिरी ही है।

ब्रह्माण्ड पुराण तीसरा पाद ६७।६॥ के अनुसार चन्द्रवंशी शुनहोत्र के कुल में शल के लड़के आर्ष्टिषेण का पुत्र एक शिशिर था। वह क्षत्रियकुल में उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण था। सम्भव है इसी के कुल में शैशिरि हुआ हो।

शाकल्य संहिता

इन पांच शाकल-शाखाओं का मूल शाकल्य, शाकलक या शाकलेयक संहिता थी। वैदिक सम्प्रदाय में इस संहिता का बड़ा आदर रहा है। व्याकरण महाभाष्य में लिखा है—

शाकल्यस्य संहितामनुप्रावर्षत् ।......। शाकल्येन सुकृतां संहितामनुनिशम्य देवः प्रावर्षत् ।१।४।८४॥

अर्थात्—शाकल्य से भले प्रकार की गई संहिता के पाठ की समाप्ति पर बादल बरसा।

कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणी इसी संहिता पर प्रतीत होती है। उसका आरम्भ-वचन है—

अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके........।

इसका अर्थ करते हुए षड्गुरुशिष्य अपनी वेदार्थदीपिका में लिखता है—

शाकल्योच्चारणं शाकलकम् ।

इससे अनुमान होता है कि यह सर्वानुक्रमणी सम्भवतः शाकलों की सब संहिताओं के लिए है।

शाकलों की संहिता के अन्त में संज्ञान सूक्त के होने ही आशा नहीं। अनेक प्रमाणों के अनुसार यह तो बाष्कल संहिता का अन्तिम सूक्त है। अतः ऋक्सर्वानुक्रमणी के मैकडानल के संस्करण के अन्त में संज्ञान सूक्त का उल्लेख सन्देहजनक है।

शाकल्य का पदपाठ भी इसी मूल संहिता पर है। उसी के विषय में अनुवाकानुक्रमणी में लिखा है—

शाकल्यदृष्टे पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्रयुक्तम्।
शतानि चाष्टौ दशकद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि ॥४५॥

अर्थात्—शाकल्य संहिता में १५३८२६ पद हैं।

छन्दःसंख्या नामक ग्रन्थ में भी कहा है—

एकपंचाशदृग्वेदे गायत्र्यः शाकलेयके ॥१॥

ऐतरेय आरण्यक के भाष्य में सायण भी शाकल्यसंहिता को स्मरण करता है—

ता एता नवसंख्याका द्विपदाः शाकल्यसंहितायामाम्नाताः।

इसी शाकल्य संहिता को वा सम्भवतः इसकी अवान्तर शाखाओं को नवीन हस्तलेखों में शाकल भी कहा गया है। यथा—

एशियाटिक सोसायटी संख्या २५६ गाणी (शाकलसंहितायां)

२—बाष्कल शाखाएं

बाष्कल नाम.के कई व्यक्ति प्राचीन काल में हो चुके हैं। दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के पांच पुत्रों में से भी एक बाष्कल था। आदि पर्व ५९।१८॥ में ऐसा ही लिखा है। भारत-युद्ध-काल का प्राग्ज्योतिष का प्रसिद्ध राजा भगदत्त आदि पर्व ६१।९॥ के अनुसार इसी बाष्कल का अवतार था। यह बाष्कल शाखाकार बाष्कल नहीं हो सकता।

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग अध्याय ३४ में लिखा है—

चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलो द्विजसत्तमः।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ॥२६॥
बोध्यां तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमातरम्।
पाराशरीं तृतीयां तु याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥२७॥

ब्रह्माण्ड पुराण का एक कोष दयानन्द कालेज के पुस्तकालय में है। उसकी संख्या २८११ है। उसके १२१ पत्रे पर २७वें श्लोक का पाठ निम्नलिखित प्रकार का है—

वौध्यं तु प्रथमां शाखां द्वितीयमग्निमाहरं ।
पराशरं तृतीयं तु याज्ञवल्क्यामथापरं ॥

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग के ३३वें अध्याय में जहां बह्वृच ऋषियों के नाम हैं, लिखा है—

संध्यास्तिर्माठरश्चैव याज्ञवल्क्यः पराशरः ॥३॥

इन्हीं श्लोकों से मिलते हुए श्लोक वायु, विष्णु और भागवत पुराणों में मिलते हैं। विष्णु पुराण के दयानन्द कालेज के दो कोशों में, जिन में कि प्राचीन पाठ अधिक सुरक्षित प्रतीत होता है, लिखा है—

वौद्धाग्निमाठरौ तद्वज्जातूकर्णपराशरौ ।

दयानन्द कालेज के संख्या ४५४७ वाले कोश का यह पाठ है। संख्या १८५० वाले कोश में बौद्ध के स्थान में वौध्य पाठ है।

पुराणों के मुद्रित पाठों और हस्तलेखों के अनेक पाठों को देख कर हमने ब्रह्माण्ड का निम्नलिखित पाठ शुद्ध किया है—

वौध्यं तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पराशरं तृतीयां तु जातूकर्ण्यमथापराम् ॥

अर्थात्—बाष्कल ने चार संहिताएं बना कर अपने चार शिष्यों को पढ़ाई। उन चारों के नाम थे, वौध्य, अग्निमाठर, पराशर और जातूकर्ण्य।

याज्ञवल्क्य के स्थान में जातूकर्ण्य पाठ इस लिए भी ठीक है कि श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्द के वेद-शाखा प्रकरण में जातूकर्ण्य को ही ऋग्वेदीय आचार्य माना है।

१—वौध्य शाखा। वौध्य आङ्गिरस गोत्र का था। पाणिनि मुनि का सूत्र है—

कपिवोधादाङ्गिरसे ॥४।१।१०७॥

अर्थात्—आङ्गिरस गोत्र वाले वोध का पुत्र वौध्य है। दूसरे गोत्र वाले वोध के पुत्र को वौधि कहते हैं।

इसी आचार्य का नाम बृहद्देवता के अष्टमाध्याय में मिलता है। मैकडानल के संस्करण का पाठ है—

अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान् ।
आशिषो योगमेतं हि सर्वगर्धेन मन्यते ॥८४॥
एकारमनुकम्पार्थे नाम्नि स्मरति माठरः ।
आख्याते भूतकरणं वाष्कला आन्ययोरिति ॥८५॥

राजेन्द्रलाल मित्र के संस्करण के प्रथम श्लोक का पाठ निम्नलिखित है—

असौ मे पुत्रकामाया अव्दादर्द्धे च तत्कृतम् ।
आशिषो योगमेतं हि वाद्व्यौ गोर्थेन मन्यते ॥१२५॥

मैकडानल इस श्लोक की टिप्पणी में लिखता है कि इस का पाठ बहुत भ्रष्ट है, और उस का अपना मुद्रित किया हुआ पाठ भी विश्वसनीय नहीं है । सर्व के स्थान में मैकडानल ६ पाठान्तर देता है । वे हैं—**बह्व्यो । वाह्व्यौ । वद्ध्रो । वर्द्धो । वद्ध्रो । बद्ध्रो ।** इन पाठान्तरों को देख कर हम इस श्लोकार्ध का निम्नलिखित पाठ समझते हैं—

आशिषो योगमेतं हि बौध्योऽर्धर्चेन मन्यते ।

इस श्लोक में किसी आचार्य के नाम के विना **मन्यते** क्रिया निरर्थक हो जाती है । वह नाम बौध्य है । मैकडानल के पाठान्तर इस का कुछ संकेत कर रहे हैं । ८५वें श्लोक में वर्णन किया हुआ माठर, सम्भवतः अग्निमाठर ही है । और ये दोनों आचार्य बाष्कल हैं ।

महाभारत आदि पर्व १।४८।६॥ में **बोधिपिङ्गल** नाम का एक आचार्य स्मरण किया गया है । वह जनमेजय के सर्पसत्र में अध्वर्यु का कृत्य कर रहा था । बोध्य नाम का एक ऋषि नहुष पुत्र ययाति के काल में भी था । उस के पदसंचय की कथा शान्ति पर्व १७६।५७॥ से आरम्भ होती है ।

इस ऋषि की संहिता, ब्राह्मणादि का पता भी अभी तक नहीं लगा ।

२—अग्निमाठर शाखा । सम्भवतः इसी माठर का वर्णन बृहद्देवता के पूर्वोद्धृत श्लोक में आ चुका है । इस के सम्बन्ध में भी इस से अधिक पता अभी तक नहीं लग सका ।

३—पराशर शाखा । पाराशरी संहिता का नामोल्लेख अभी तक हमें अन्यत्र नहीं मिला । एक अरुणपराशर ब्राह्मण को कुमारिल अपने तन्त्रवार्तिक में स्मरण करता है—

अरुणपराशरशाखाब्राह्मणस्य कल्परूपत्वात् ।[1]

क्या इस अरुणपराशर शाखा का संबन्ध इस पराशर शाखा से है।

अष्टाध्यायी ४।२।१०५।। पर काशिका और उस के व्याख्यानों में एक आरुणपराजी कल्प का नाम मिलता है। क्या यह अरुणपराशर शाखा से भिन्न कोई शाखा है।

व्याकरण महाभाष्य में एक उदाहरण है—

पाराशरकल्पिकः ।४।२।६०।।

यह निस्सन्देह ऋग्वेदीय पराशर शाखा का कल्प होगा।

४—जातूकर्ण्य शाखा । बाष्कलों की चौथी शाखा जातूकर्ण्य शाखा है। एक जातूकर्ण्य आचार्य का नाम शांखायन श्रौतसूत्र में चार चार मिलता है।[2] अन्तिम स्थान में उसे जल=जड जातूकर्ण्य कहा है, और लिखा है कि वह काशी के राजा, विदेह के राजा और कोसल के राजा का पुरोहित हुआ था। उस का पुत्र एक श्वेतकेतु था।

एक जातूकर्ण्य शांखायन गृह्य ४।१०।३।। और शांबव्य गृह्य के ऋषितर्पण प्रकरणों में स्मरण किया गया है। उसका इस शाखा से सम्बन्ध रखना सम्भव प्रतीत होता है। जातूकर्ण्य का नाम कौषीतकि ब्राह्मण आदि में भी मिलता है। आयुर्वेद की चरक संहिता के प्रारम्भ में भी एक जातूकर्ण्य का नाम मिलता है, परन्तु इन सभी स्थानों पर एक ही जातूकर्ण्य स्मरण किया गया है, यह अभी निश्चित नहीं हो सका।

जातूकर्ण्य, जातूकर्ण या जातूकर्णि धर्मसूत्र के प्रमाण बालक्रीड़ा प्रथम भाग पृ० ७ और स्मृतिचन्द्रिका आह्निक प्रकाश पृ० ३०२ आदि पर मिलते हैं। यह धर्मसूत्र ऋग्वेदीय ही होगा।

पञ्चम अध्याय पृ० ६५ पर कृष्णद्वैपायन के गुरु एक जातूकर्ण्य का नाम उपनिषद् और पुराणों के प्रमाण से हम पहले लिख चुके हैं। उस जातूकर्ण्य का इस जातूकर्ण्य से क्या सम्बन्ध था, यह अभी निश्चित नहीं हो सका।

१—चौखम्बा संस्करण पृ० १६४।

२—१।२।१७।।३।१६।१४।।३।२०।१९।।१६।२९।६।।

बाष्कल संहिता

अनुमान होता है कि शाकल्य संहिता के समान बाष्कलों की भी कोई एक सामान्य संहिता होगी। संहिता ही नहीं प्रत्युत बाष्कलों का अपना ब्राह्मण भी पृथक् होगा। शुक्लयजुः प्रतिज्ञासूत्र के अनन्त भाष्य में लिखा है—

बाष्कलादिब्राह्मणानां तानरूपैकस्वर्यम्।[1]

अर्थात्—बाष्कल आदि ब्राह्मणों का तो तानरूप एक स्वर होता है। शाकल्य की वा बाष्कलों की जो विशेषताएं हैं, वे आगे लिखी जाती हैं।

१—आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है—

समानी व आकूतिरित्येका।
तच्छंयोरावृणीमह इत्येका।

इस के व्याख्यान में देवस्वामी सिद्धान्त भाष्य में लिखता है—

येषां पूर्वा समाम्नाये स्यात्तेषां नोत्तरा। येषामुत्तरा तेषां न पूर्वा। यत्तत् प्रतिज्ञासूत्रे उपदिष्टं शाकलस्य बाष्कलस्य समाम्नायस्येत्युक्तम्।[2]

पुनः हरदत्त अपने भाष्य में लिखता है—

समानी व इति शाकलस्य समाम्नायस्यान्त्या तदध्यायिनामेषा।

तच्छंयोरिति बाष्कलस्य तदध्यायिनामेषा।

नारायण वृत्ति में भी ऐसा ही लिखा है—

शाकलसमाम्नायस्य बाष्कलसमाम्नायस्य चेदमेव सूत्रं गृह्यं चेत्यध्येतृप्रसिद्धम्। तत्र शाकलानां—समानी व आकूतिः। इत्येषा भवति संहितान्त्यत्वात्।

बाष्कलानां तु तच्छंयोरावृणीमहे। इत्येषा भवति संहितान्त्यत्वात्।

१—प्रति० ८ सू०।

२—दयानन्द कालेज का कोश सं० ५५५५ पत्र ७७ ख।

तच्छंयोरावृणीमहे, यह संज्ञान सूक्त की अन्तिम अर्थात् पन्द्रहवीं ऋचा है। अतः वाष्कलों का अन्तिम सूक्त संज्ञान सूक्त है। शांखायनगृह्य-सूत्र ४।५॥ का भी यह ही मत है। इस से ज्ञात होता है कि शांखायन संहिता का अन्त भी संज्ञान सूक्त के साथ ही होता है। इस विषय में वाष्कलों और शांखायनों का अधिक मेल है।

शांखायन गृह्य के आङ्गल भाषा अनुवाद में अध्यापक बूहलर लिखता है—

It is well known that तच्छंयोरावृणीमहे is the last verse in the Bāshkala Sākhā which was adopted by the Sānkhāyana school.[1]

अर्थात्—शांखायन चरण वाले वाष्कल शाखा को अपनी संहिता स्वीकार करते हैं।

यह भूल है। शांखायनों की अपनी शांखायन संहिता है, और यह सूक्त उसका भी अन्तिम सूक्त होगा। अथवा सम्भव है कि पूर्वोक्त चार वाष्कलों में से किसी एक के शिष्य शांखायन आदि हों। परन्तु यह निश्चित है कि शांखायनों की संहिता अपनी ही थी।

२—अनुवाकानुक्रमणी में लिखा है—

गौतमादौशिजः कुत्सः परुच्छेपादृषेः परः।
कुत्सादीर्घतमा इत्येष तु बाष्कलकः क्रमः ॥२१॥

अर्थात्—शाकल्य क्रम से वाष्कलों के क्रम में प्रथम मण्डल में इतना भेद है। वाष्कलों के क्रम के अनुसार—

उप प्रयन्तः=गोतम सूक्त ७४–९३।

नासत्याभ्याम्=औशिज[2] अर्थात् उशिक् के पुत्र कक्षीवान् के सूक्त ११६, १२६।

अग्निं होतारं=परुच्छेप। सूक्त १२७–१३९।

इमं स्तोमं=कुत्स सूक्त ९४–११५।

वेदिषदे=दीर्घतमा सूक्त १४०–१६४।

1—S. B. E. Vol. XXIX. P. I. P.13.

२—अनुक्रमणी दैर्घतमस।

यह क्रम है। शाकल क्रम में कुत्स के सूक्तों का स्थान गोतम के सूक्तों के पश्चात् है।

इसी अभिप्राय का श्लोक बृहद्देवता ३।१२५॥ है।

३—बाष्कलों के प्रातिशाख्य-नियम वरदत्तसुत आनर्तीय के शांखायन श्रौतसूत्र भाष्य १।२।५॥ और १२।१३।५॥ में मिलते हैं।

४—अनुवाकानुक्रमणी में लिखा है—

एतत् सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि।
तान्पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः ॥३६॥

अर्थात्—बाष्कलशाखा पाठ में शाकलशाखा पाठ से आठ सूक्त अधिक हैं।

इस प्रकार शाकल पाठ में १११७ सूक्त हैं और बाष्कल शाखा पाठ में ११२५ सूक्त हैं। इन आठ सूक्तों में से एक तो बाष्कल शाखा के अन्त का संज्ञान सूक्त है और शेष सात सूक्त ११ वालखिल्य सूक्तों में से पहले सात हैं।[1]

इन ११ वालखिल्य सूक्तों में से १० का उल्लेख मैकडानल सम्पादित सर्वानुक्रमणी में मिलता है। यह शाकलक सर्वानुक्रमणी का पाठ नहीं हो सकता, क्योंकि शाकल शाखा में १११७ सूक्त ही हैं।

सात वालखिल्य सूक्तों का क्रम बाष्कल शाखा में कैसा है, इस विषय में चरणव्यूह की टीका में महिदास लिखता है—

स्वादोरभक्षि [८।४८॥] सूक्तान्ते
अभि प्र वः सुराधसम् [८।४९॥]
प्र सु श्रुतम् [८।५०॥] इति सूक्तद्वयं पठित्वा अग्न आ याह्यग्निभिः [८।६०॥] इति पठेत्।
ततः आ प्र द्रव [८। ८२॥ अथवा अष्टक ६ अध्याय ६] अध्याये गौर्धयति [८। ९४—१०३॥] अनुवाको दशसूक्तात्मकः शाकलस्य। पञ्चदशसूक्तात्मको बाष्कलस्य। तत्रोच्यते—
गौर्धयति [८।९४॥] सूक्तानन्तरं

१—कई विद्वान् इन वालखिल्य सूक्तों में एक सौपर्ण सूक्त मानते हैं।

यथा मनौ सावरणौ [८ । ५१।।]
यथा मनौ विवस्वति [८ । ५२।।]
उपमं त्वा [८ । ५३।।]
एतत्त इन्द्र [८ । ५४।।]
भूरीदिन्द्रस्य [८ । ५५।।] इत्यन्तानि पञ्च सूक्तानि पठित्वा आ त्वा गिरो रथीरिव [८ । ९५।।] इति पठेयुः ।

अर्थात्—पूर्वोक्त क्रम वाष्कल पाठ का है । महिदास ने किस अनुक्रमणी से यह लिया, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाष्कल शाखा के आठवें मण्डल में कुल ९९ सूक्त होंगे ।

कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र में संख्या २७ पर "वाष्कलशाखीय संहिता व ब्राह्मण" का नाम लिखा है ।

एक वाष्कलमन्त्रोपनिषद् इस समय भी विद्यमान है ।[1]

३—आश्वलायन शाखाएं

आश्वलायन-आर्ष काल में

प्रश्नउपनिषद् के आरम्भ में लिखा है कि छः ऋषि भगवान् पिप्पलाद के पास गए । उन में एक **कौसल्य आश्वलायन** था । यह आश्वलायन कोसल देश निवासी होने के कारण कौसल्य कहा जाता होगा । बृहदारण्यक उपनिषद् ३।१।१।। में जनक के बहुदक्षिणायुक्त यज्ञ का वृत्तान्त है । उस यज्ञ के समय इस वैदेह जनक का होता अश्वल था । इस का पुत्र भी एक आश्वलायन होगा । यह आश्वलायन पिता की परम्परा से ऋग्वेदीय होगा । होता का कर्म ऋग्वेदीय ही करते हैं । बृ० उप० के पाठानुसार अश्वल कुरु या पाञ्चाल देश का ब्राह्मण था । अतः उस का पुत्र भी तत्स्थानीय ही होगा । प्रश्न उपनिषद् में आश्वलायन को कोसल देश वासी कहा गया गया है । कोसल और पञ्चाल समीप ही हैं । आयुर्वेदीय चरकसंहिता १।९।। में हिमालय पर एकत्र होने वाले ऋषियों में एक आश्वलायन भी गिना गया है ।

१—अड्यार, मद्रास के उपनिषद् संग्रह में मुद्रित ।

महाभारत अनुशासन पर्व ७।५४॥ के अनुसार आश्वलायन विश्वामित्र गोत्र के कहे गए हैं।

आश्वलायन-गौतम बुद्ध के काल में

मज्झिम निकाय अस्सलायण-सुत्तन्त (२।५।३) में लिखा है कि जब गौतम श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे, तब उन से आश्वलायन नामक एक तरुण ब्राह्मण विद्यार्थी मिला। वह कल्प,शिक्षा, तीनों वेद, इतिहास आदि में प्रवीण था।[1]

बुद्ध-कालीन आश्वलायन शाखाकार नहीं था

एक दो वङ्गीय लेखकों ने यह लिखा है कि बुद्ध कालीन आश्वलायन ही आश्वलायन गृह्य का कर्ता था। यह बात हास्यास्पद है। शाखाकार ऋषियों ने ही अपने अपने कल्प बनाए थे। अतः आश्वलायन गृह्य जो आश्वलायन कल्प का एक भाग है, शाखाकार आश्वलायन का ही बनाया हुआ है। शाखाकार आश्वलायन व्यास के प्रशिष्यों में से कोई था। वह तो बुद्ध-काल से सहस्रों वर्ष पहले हो चुका था। बुद्ध-काल का आश्वलायन तो आश्वलायन-शाखा पढ़ने वाला कोई ब्राह्मण था। वैसे आश्वलायन शाखा पढ़ने वाले अनेक ब्राह्मण अब भी महाराष्ट्र देश में मिलते हैं।

आश्वलायन शाखा

चरणव्यूह निर्दिष्ट ऋग्वेदीय शाखाओं का तीसरा समूह आश्वलायनों का है। पुराणों में इस विषय का कोई उल्लेख हमें नहीं मिला। तदनुसार आश्वलायनों की कोई संहिता न थी। परन्तु चरणव्यूह का कथन बहुत प्राचीन है, अतः आश्वलायन शाखा सम्बन्धी गम्भीर विवेचना आवश्यक है।

कई लोग अनुमान करते हैं कि आश्वलायन श्रौत आदि के कारण ही आश्वलायन शाखा प्रसिद्ध हो गई होगी, कोई आश्वलायन संहिता-विशेष न थी। ऐसा अनुमान हो सकता है, क्योंकि और भी अनेक सौत्र शाखाएं, यथा भारद्वाज, हिरण्यकेशी, बाधूल आदि विद्यमान हैं। परन्तु

१—त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन का अनुवाद पृ० ३८६।

निम्नलिखित प्रमाणों से सन्देह होता है कि आश्वलायनों की कोई स्वतन्त्र संहिता भी अवश्य होगी।

१—कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र के पृ० १ पर संख्या २९ में आश्वलायन संहिता व ब्राह्मण प्रविष्ट हैं।

२—चरणव्यूह का टीकाकार महिदास आश्वलायनों की पदसंख्या दूसरी आर्च शाखाओं से भिन्न लिखता है। महिदास के इस लेख का मूल उपलब्ध चरणव्यूहों में नहीं मिलता, परन्तु चरणव्यूह के किसी प्राचीन कोष में होगा अवश्य। मुद्रित चरणव्यूहों में ये पाठ टूटे हुए प्रतीत होते हैं।

३—बीकानेर के सूचीपत्र में संख्या ३८, ४७ और ६२ के संहिता और पदपाठ के कोशों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे आश्वलायन शाखा के हैं। ३८ संख्या का कोष अष्टम अष्टक का है। उसके अन्त में लिखा है—

इति अष्टमाष्टके अष्टमोऽध्यायः।

परन्तु अन्तिम मन्त्र पांचवें अध्याय के बीच का ही है। क्या यह भेद शाखा का है या ग्रन्थ के त्रुटित होने से है? यदि अन्तिम पक्ष माना जाए, तो अष्टमोऽध्यायः भूल से लिखा गया है।

४—पञ्जाब यूनिवर्सिटी लाहौर के पुस्तकालय में ऋक् संहिता के अष्टमाष्टक का एक कोश है। वह उनके सूचीपत्र पृ० २ की संख्या २८ में प्रविष्ट है। उसके प्रथम पृष्ठ की पीठ पर लिखा है—

आश्वलायन संहिता अष्टमाष्टक ८९ पत्राणि

अन्त में ४९वें वर्ग की समाप्ति अर्थात् समानी व आकूतिः मन्त्र के अनन्तर पांच मन्त्रों का एक और वर्ग है। उस वर्ग के अन्त में ५० का अङ्क दिया है। तदनन्तर लिखा है—

इति दशमं मंडलम्

इस कोश में कई परिशिष्ट मिलते हैं। वे सारे विना स्वर के हैं। यह ५०वां वर्ग सस्वर है। अतः यह परिशिष्ट नहीं है। आश्वलायन संहिता का यही अन्तिम वर्ग होगा। इस वर्ग के पांच मन्त्र निम्नलिखित हैं—

संज्ञानमुशना ....॥१॥
संज्ञानं न स्वेभ्यः ....॥२॥
यत्कक्षीवांसं वननं पुत्रो .....॥३॥
सं वो मनांसि ....॥४॥
तच्छंयोरावृणीमहे ....॥५॥

वाष्कल संहिता के अन्त में संज्ञान सूक्त १५ ऋचाओं का है। आश्वलायनों का इस विषय में उन से इतना भेद होगा कि इन का अन्तिम सूक्त सम्भवतः पांच ऋचाओं का हो। इस कोश में ॥ इति दशमं मण्डलम् ॥ के आगे दो पंक्तियां और मिलती हैं। उन में १५ ऋचा वाले संज्ञान सूक्त के नैर्हस्त्यं आदि दो मन्त्र हैं। दूसरा मन्त्र आधा ही है। प्रतीत होता है कि कभी इस हस्तलेख में एक पत्र और रहा होगा। उस पर संज्ञान सूक्त के इस से अगले मन्त्र होंगे। ये इस संहिता के परिशिष्ट हैं, क्योंकि इन पर स्वर नहीं लगा है।

५—दयानन्द कालेज के पुस्तकालय में ऋग्वेद के ५—७ अष्टकों के पदपाठ का एक कोष है। संख्या उसकी ४१३९ है। वह तालपत्रों पर ग्रन्थाक्षरों में है। उसके अन्त में लिखा है—

समाप्ता आश्वलायनसूत्रं।

पदपाठ के अन्त में सूत्रं कैसे लिखा गया? क्या शाखा के अभिप्राय से आश्वलायन लिखा गया है?

६—रघुनन्दन अपने स्मृतितत्व के मलमास प्रकरण में आश्वलायन ब्राह्मण का एक प्रमाण उद्धृत करता है। यथा—

आश्वलायनब्राह्मणं "प्राच्यां दिशि वै देवाः सोमं राजानमक्रीणन् .....सोमविक्रयीति।[1]

यह पाठ ऐतरेय ब्राह्मण ३।१।१॥ में मिलता है। इस से प्रतीत

१—हमने अपने इतिहास के ब्राह्मण भाग के पृ० ३७ पर लिखा था कि रघुनन्दन यहां पर आश्वलायन ब्राह्मण के व्याख्याकार जयस्वामी को स्मरण करता है। यह हमारी भूल थी। जयस्वामी का अर्थ केवल काठक संहिता ३४। ९॥ पर ही है।

होता है कि अर्वाचीन वङ्गीय और मैथिल विद्वान् ऐतरेय ब्राह्मण को ही सम्भवतः आश्वलायन ब्राह्मण कहते होंगे।

एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के सूचीपत्र में संख्या १९९ के ग्रन्थ को आश्वलायन ब्राह्मण लिखा है। इसी पर सम्पादक ने अपने टिप्पण में लिखा है कि यह ऐतरेय ब्राह्मण से भिन्न नहीं है। इस पञ्चम पञ्चिका का पाठ सोसायटी-मुद्रित ऐतरेय ब्राह्मण की पंचम-पञ्चिका से मिलता है।

७—मध्य भारत के एक स्थान में आश्वलायन ब्राह्मण का अस्तित्व बताया जाता है।[1]

आश्वलायन कल्प का साक्ष्य

सारे कल्प सूत्र अपनी अपनी शाखा का मुख्य आश्रय लेते हैं। अपनी शाखा के मन्त्र उन में प्रतीक मात्र पढ़े जाते हैं और दूसरी शाखाओं के मन्त्र सकल पाठ में पढ़े जाते हैं। इस सुनिश्चित सम्प्रदाय के सम्बन्ध में आश्वलायन कल्प क्या प्रकाश डालता है, यह विचारणीय है।

देवस्वामी सिद्धान्ती का मत

आश्वलायन श्रौत का पुरातन भाष्यकार देवस्वामी अपने भाष्यारम्भ में **अथैतस्य समाम्नायस्य विताने** इस प्रथम सूत्र की व्याख्या में लिखता है—

अस्ति कश्चित् समाम्नायविशेषोऽनेनाचार्येणाभिप्रेतः शाकलको वा वाष्कलको वा सह निवित् पुरोरुगादिभिः।…………। अथवा एतस्येत्यत्र वीप्सालोपो द्रष्टव्यः।………एवमृग्वेदसमाम्नायाः सर्वे परिगृहीता भवन्ति।

अर्थात्—समाम्नाय पद से आश्वलायन का अभिप्राय शाकलक अथवा वाष्कलक अथवा सब ऋक्शाखाओं से है।

देवत्रात का मत

आश्वलायन श्रौत का दूसरा पुरातन भाष्यकार देवत्रात अपने भाष्य के आरम्भ में लिखता है—

1—Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss. in the Central Provinces and Behar, by R. B. Hira Lal. 1926.

........एवं सर्वा ऋग्वेदशाखा अपि प्रमाणमिति प्राप्ते एतस्येत्युच्यते । तस्माद् येन खलु पुरुषेण या शाखा अधीता तथात्र विनिर्दिशति एतस्य........ । तत्र चाम्नायस्येति सिद्धे समिति वचनात् अखिलं समाम्नायमुपदिशति । तस्माद् ये ऽन्यशाखायां पठिता मन्त्रास्ते सकलाः शास्त्रे उपदिश्यन्ते । ....मन्त्रेष्वपि सर्वाः शाखाः प्रमाणं स्युः । तथा सति सूक्ते नवर्च इति वैश्वदेवसूक्तम् । नवर्चं दशर्चं चेति विकल्पः स्यात् । तस्मादविकल्पमधिकृत्य एका एव शाखा निर्दिश्यते । .... । तस्माद्यस्य समाम्नायस्य नवर्चं समाम्नातं स नवर्चं शंसति । येन दशर्चमाम्नातं स दशर्चं शंसति न विकल्पः ।

अर्थात्—ऋग्वेद की समस्त शाखाओं का यह एक ही कल्प है। अतः दूसरी शाखाओं [यजु साम आदि] के मन्त्रों का पाठ इस में सकल पाठ न दिया गया है। और ऋग्वेदीय अवान्तर शाखाओं के मन्त्रों के प्रयोग के लिए भी यही एक कल्प है। इस लिए सूक्त के कहने में जिन की शाखा के सूक्तों में जितने मन्त्र होते हैं, वे उतने ही मन्त्रों का प्रयोग करते हैं। यथा वैश्वदेव सूक्त जिन की शाखा में नौ ऋचा का है, वे नौ मन्त्रों का और जिन की शाखा में दश मन्त्रों का है, वे दश का प्रयोग करते हैं।

नरसिंहसूनु गार्ग्य नारायण का मत

वह अपने भाष्य के आरम्भ में लिखता है—

एतस्येतिशब्दो निवित्प्रैषपुरोरुक्कुन्तापवालखिल्यमहानम्न्यैतरेयब्राह्मणसहितस्य शाकलस्य वाष्कलस्य चाम्नायद्वयस्यैतदाश्वलायनसूत्रं नाम प्रयोगशास्त्रमित्यध्येतृप्रसिद्धसंबन्धविशेषं द्योतयति ।

अर्थात्—यह आश्वलायन सूत्र निवित् प्रैष आदि युक्त शाकल और वाष्कल दोनों आम्नायों का एक ही है।

षड्गुरुशिष्य का मत

सर्वानुक्रमणी वृत्ति के उपोद्घात में षड्गुरुशिष्य लिखता है—

शाकल्यस्य संहितैका वाष्कलस्य तथापरा ।
द्वे संहिते समाश्रित्य ब्राह्मणान्येकविंशतिः ॥

ऐतरेयकमाश्रित्य   तदेवान्यैः प्रपूरयन् ।
कल्पसूत्रं चकाराथ महर्षिगणपूजितः ॥

अर्थात्—शाकल्य और वाष्कल की दो संहिताओं का आश्रय लेकर तथा ऐतरेय ब्राह्मण का आश्रय लेकर और शेष बीस ब्राह्मणों से इसकी पूर्ति करके यह आश्वलायन कल्प बना है।

आश्वलायन कल्प के चार प्रसिद्ध भाष्यकारों का मत हमने दे दिया। ये चारों भाष्यकार इसी एक सम्प्रदाय का समर्थन करते हैं कि इस कल्प का सम्बन्ध किसी एक संहिता-विशेष से नहीं है, परन्तु कई संहिताओं से है । देवस्वामी आदि का यह मत प्रतीत होता है कि इस कल्प का सम्बन्ध समस्त ऋक् शाखाओं से है, और षड्गुरुशिष्य आदि का यह मत है कि इसका सम्बन्ध शाकल और वाष्कल दो आम्नायों से है । यदि देवस्वामी का मत सत्य समझा जाए, तो आश्वलायन श्रौत सूत्र २।१०॥ अन्तर्गत सकल पाठ में पढ़ी हुई **पृथिवीं मातरं** इत्यादि तीनों ऋचाएं कभी भी किसी ऋक् शाखा में नहीं पढ़ी गई थीं । और यदि षड्गुरुशिष्य का मत ठीक समझा जाए, तो सम्भव हो सकता है कि यह तीनों ऋचाएं, शांखायन या माण्डूकेय आम्नायों में हों । सम्प्रति उपलब्ध वैदिक ग्रन्थों में तो ये केवल तै० ब्रा० २।४।६।८॥ और आश्व० श्रौत में ही हैं।

देवस्वामी का पक्ष मानने में एक आपत्ति है। बृहद्देवता निश्चित ही ऋग्वेदीय ग्रन्थ है। इसका सम्बन्ध माण्डूकेय आम्नाय से है । यह आगे स्पष्ट किया जायगा। उस बृहद्देवता स्वीकृत ऋक् चरण में **ब्रह्म जज्ञानं** सूक्त विद्यमान था ।[1] आश्वलायन श्रौत ४।६॥ में **ब्रह्म जज्ञानं** मन्त्र सकल पाठ से पढ़ा गया है । इस से निश्चित होता है कि आश्वलायन श्रौत में कई ऋक् शाखाओं के मन्त्र भी सकल पाठ से पढ़े गए हैं। अतः यह श्रौत सब ऋक् शाखाओं का नहीं है।

अन्ततः यह सम्भव है कि शाकल और वाष्कल शाखाओं से मिलती जुलती कोई मूल आश्वलायन संहिता भी हो। इस सम्भावना में

१—बृहद्देवता ८।१४॥

भी कई कठिनाइयां हैं और कल्प का इस में विरोध है । अस्तु, ऐसी परिस्थिति में आश्वलायन ब्राह्मण का अस्तित्व अनिवार्य प्रतीत होता है। वह आश्वलायन ब्राह्मण ऐतरेय से कुछ भिन्न ही होना चाहिए । क्या उस ब्राह्मण में ऐतरेय १।१९ ॥ के समान ब्रह्म जज्ञानं मन्त्र की प्रतीक नहीं होगी ? इस प्रकार उसमें और भी कई भेद हो सकते हैं।

आश्वलायनों से सम्बन्ध रखने वाली अन्य कितनी शाखाएं थीं, यह हम नहीं जान सके। वस्तुतः आश्वलायनों का सारा विषय अभी संदिग्ध है।

४—शांखायन शाखाएं

चरणव्यूह निर्दिष्ट चौथा विभाग शांखायनों का है। आश्वलायनों की अपेक्षा इनका हमें कुछ अधिक ज्ञान है । इसका कारण यह है कि कल्प के अतिरिक्त इनका ब्राह्मण और आरण्यक भी उपलब्ध है। पुराणों में इस शाखा की संहिता का कोई वर्णन नहीं मिलता।

शांखायन संहिता

प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कभी शांखायनों की कोई स्वतन्त्र संहिता थी या नहीं।

१—अलवर के राजकीय पुस्तकालय में ऋग्वेद के कुछ कोष हैं। उन्हें शांखायन शाखा का कहा गया है। हम उन्हें देख नहीं सके और सूची में उनका कोई वर्णन-विशेष नहीं मिलता।

२—कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र में संख्या २५ पर शांखायन संहिता व ब्राह्मण का अस्तित्व लिखा है।

३—शांखायन श्रौत में बारह ऐसी मन्त्र प्रतीकें हैं कि जिन के मन्त्र शाकलक शाखा में नहीं मिलते। इसके लिए देखो, हिल्लीब्राण्ट के सूत्र-संस्करण का पृष्ठ ६२८। इन में से कई सौपर्ण ऋचाएं हैं। शां० श्रौत १५।३॥ के सूत्र हैं—

वेनस्तत् पश्यदिति पञ्च ॥८॥
अयं वेन इति वा ॥९॥

अर्थात्—वेनस्तत्पश्यत् यह पांच ऋचाएं पढ़े, अथवा अयं वेनः यह मन्त्र पढ़े।

यहां आठवें सूत्र में मन्त्रों की प्रतीक मात्र पढ़ी गई है। इस से निश्चित होता है कि किसी काल में ये पांच मन्त्र शांखायन संहिता में पढ़े गए होंगे। परन्तु वरदत्त का पुत्र अपने भाष्य में लिखता है कि अपनी शाखा में इन ऋचाओं के उत्सन्न होने से विकल्पार्थ अगला सूत्र पढ़ा गया है। यह बात उचित प्रतीत नहीं होती। सूत्रकार के काल में संहिता का पाठ उत्सन्न हो गया हो, यह मानना इतना सरल नहीं। क्या नवम सूत्र किसी अत्यन्त प्राचीन भाष्य का ग्रन्थ तो नहीं था? इसी प्रकार से शां० श्रौत में **संज्ञान** सूक्त और **समिद्धो अञ्जन्** आदि ऋचाएं भी प्रतीक मात्र से पढ़ी गई हैं। अतः बहुत सम्भव है कि शाकलों से स्वल्प भेद रखती हुई शांखायनों की कोई स्वतन्त्र संहिता हो। एक और बात यहां स्मरण रखनी चाहिए। शांखायन श्रौत ९।२०।३०॥ में एक पुरोनुवाक्या **इमे सोमासस्तिरो अह्न्यास इति** प्रतीकमात्र से पढ़ी गई है। यही पुरोनुवाक्या आश्वलायन श्रौत ६। ५॥ में सकल पाठ में पढ़ी गई है। यदि दोनों सूत्रों की संहिताओं में भेद न था, तो पाठ की यह भिन्न रीति नहीं हो सकती थी।

४—शांखायन आरण्यक में अनेक ऐसी ऋचाएं जो शाकलक पाठ में विद्यमान हैं, सकल पाठ से पढ़ी गई हैं। वे ऋचाएं शांखायन संहिता में नहीं होनी चाहिएं। देखो शांखायन आरण्यक ७।१४, १६, १९, २१॥ ८।४,६॥ ९।१॥ १२।२,७॥ ऐसी स्थिति में यही सम्भावना होती है कि शांखायनों की कोई स्वतन्त्र संहिता थी।

शांखायनों के चार भेद

इस समय तक शांखायनों के चार भेदों का हमें पता लग चुका है। उनके नाम हैं, शांखायन, कौषीतकि, महाकौषीतकि और शाम्बव्य। अब इनका वर्णन किया जाता है।

१—**शांखायन शाखा**। शांखायन संहिता का उल्लेख अभी किया जा चुका है। शांखायन ब्राह्मण आनन्दाश्रम पूना और लिण्डनर के संस्करणों में मिलता है। शांखायन आरण्यक, श्रौत और गृह्य भी मिलते हैं। इनके संस्करणों में एक भूल हो चुकी है। उसका दूर करना आवश्यक है।

शांखायन वाङ्मय के संस्करणों में भूल

इस शाखा के ब्राह्मण आदि के संस्करणों में एक भूल हो चुकी है। आरण्यक उस भूल से बच गया है। वह भूल है शाखा-सम्मिश्रण की। कौषीतकि शाखा शांखायनों का ही अवान्तर भेद है। शांखायन ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण आदि में थोड़े से भेद हैं। अतः ये दोनों शाखाएं पृथक्-पृथक् मुद्रित होनी चाहिएं। उन भेदों का थोड़ा सा निदर्शन नीचे किया जाता है—

१—लिण्डनर अपनी भूमिका के पृष्ठ प्रथम पर लिखता है कि शांखायन ब्रा० में २७६ खण्ड हैं और कौषीतकि ब्रा० में २६०। कौषीतकि ब्रा० का उन्हें एक ही मलयालम हस्तलेख मिला था। सम्भव है, उस में कुछ पाठ त्रुटित हो, परन्तु १६ खण्डों का भेद शाखा-भेद के सिवा अनुमान नहीं किया जा सकता। लिण्डनर के अनुसार मलयालम ग्रन्थ के कुछ पाठ देवनागरी ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न हैं।

२—शांखायन आरण्यक के प्रथम दो अध्याय महाव्रत कहाते हैं। तीसरे से शांखायन उपनिषद् का आरम्भ होता है। इसी प्रकार कौषीतकि उपनिषद् भी कौषीतकि आरण्यक का एक भाग है। कौषीतकि उपनिषद् के हमारे पास दो हस्तलेख हैं। मद्रास राजकीय संग्रह के ग्रन्थों की ही ये प्रतिलिपि हैं। हमने उनकी तुलना शांखायन आरण्यक के उपनिषद् भाग से की है। इन दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त भेद है। कौ० उप० १।२॥ **स इह कीटो वा** का क्रम शां० उप० से भिन्न है। कौ० १।४॥ में **प्रति धावन्ति** पाठ है और शां० में इस के स्थान में **प्रति यन्ति** पाठ है। इसी खण्ड के इस से अगले पाठ के क्रम में पर्याप्त भेद है। इसी प्रकार १।५॥ के पाठ में भी बहुत भेद है। इतना ही नहीं, प्रत्युत इस से आगे खण्ड-विभाग भी भिन्न हो जाता है।

३—गृह्य पाठों में भी ऐसे ही अनेक भेद हैं।

शांखायन और कौषीतकि दो शाखाएं

इन बातों से निश्चित होता है कि शांखायन और कौषीतकि दो पृथक् शाखाएं हैं। सम्पादकों ने इन दोनों के सम्पादन में कई भूलें की हैं। भावी में इन शाखाओं को पृथक् पृथक् ही मुद्रित करना चाहिए।

शांखायन सम्प्रदाय का एक विस्मृत ग्रन्थकार

शांखायन श्रौत सूत्र पर एक पुरातन टीका मुद्रित हो चुकी है। उस के कर्ता का नाम अनुपलब्ध है। परन्तु यह लिखा है कि उस के पिता का नाम वरदत्त था और वह आनर्तीय अर्थात् आनर्त देश का रहने वाला था। गत ४३ वर्षों में उस के नाम के सम्बन्ध में कोई प्रकाश नहीं पड़ सका।[1]

उसका नाम आचार्य ब्रह्मदत्त था

१—शांखायन गृह्यसंग्रह का कर्ता वासुदेव अपने ग्रन्थारम्भ में लिखता है—

यद्येवमाचार्याग्निस्वामिब्रह्मदत्तादिभिर्व्याख्यात एव सूत्रार्थः।

पुनः वह अनुवचन की व्याख्या में लिखता है—

एतेषां सप्तानामपि पक्षाणाम् ऋषिदैवतच्छन्दांसीति आचार्यब्रह्मदत्तेन गर्हितोयं पक्षः इति व्याख्यातम्।

२—तञ्जोर के पुस्तकालय में शांखायन श्रौतसूत्र पद्धति नाम का एक ग्रन्थ संवत् १५२९ का लिखा हुआ मिलता है।[2] उस का कर्ता नारायण है। वह अपने मङ्गल श्लोक में लिखता है—

ब्रह्मदत्तमतं सर्वं सम्प्रदायपुरस्सरम्।
श्रुत्वा नारायणाख्येन पद्धतिः कथ्यते स्फुटम् ॥२॥

पूर्वोक्त तीनों वचनों का यही अभिप्राय है कि आचार्य अग्निस्वामी और ब्रह्मदत्त ने शांखायन श्रौत और गृह्य पर अपने भाष्य लिखे थे। आचार्य अग्निस्वामी को आनर्तीय वरदत्त-सुत अपने भाष्य में स्मरण करता है। देखो १०।१२।६॥ १२।२।१७॥ १४।१०।५॥ इत्यादि, अतः अग्निस्वामी तो वरदत्त-सुत से पूर्व हो चुका था। अब रहा ब्रह्मदत्त।

आनर्तीय का ग्रन्थ एक भाष्य है। वह स्वयं भी अपने ग्रन्थ को भाष्य ही लिखता है। यथा—

१—सन् १८९१ में यह भाष्य मुद्रित हुआ था।

२—सूचीपत्र भाग ४, सन् १९२९, संख्या २०४०, पृ० १५९८। यही ग्रन्थ पंजाब यू० के पुस्तकालय में भी है, देखो सख्या ६५५०।

शांखायनकसूत्रस्य समं शिष्यहितेच्छया ।
वरदत्तसुतो भाष्यमानर्तीयोऽकरोन्नवम् ॥

शांखायन श्रौत सूत्र पद्धति का अभी उल्लेख हो चुका है। उसके मङ्गल श्लोक में ब्रह्मदत्त का मत स्वीकार करना लिखा है और पद्धति के अन्दर सर्वत्र भाष्यकार का स्मरण किया गया है।[१] यह भाष्यकार ब्रह्मदत्त ही है। वरदत्त के पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त होना है भी बहुत सम्भव। अतः हमें तो यही प्रतीत होता है कि आनर्त देश निवासी वरदत्त का पुत्र भाष्यकार ब्रह्मदत्त ही था।

शंख और शांखायन

शंख नाम के अनेक ऋषि समय समय पर हो चुके हैं। कापिष्ठल कठ संहिता में एक कौष्य शंख स्मरण किया गया है—

एतद्ध वा उवाच शङ्खः कौष्यः पुत्रम्। अध्याय ३४।
उवाच दिवा जातः शाकायन्यः शङ्खं कौष्यम्। अध्याय ३५।१।

काठक आदि संहिताओं में भी यह नाम मिलता है। एक शंख नाम का ऋषि पञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का समकालीन था। महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय २०० में लिखा है—

ब्रह्मदत्तश्च पाञ्चाल्यो राजा धर्मभृतांवरः।
निधिं शङ्खमनुज्ञाप्य जगाम परमां गतिम् ॥१७॥

अर्थात्—[दान धर्म की प्रशंसा करते हुए भीष्म जी युधिष्ठिर को कह रहे हैं कि] शंख को बहुत धन दे कर पञ्चाल का राजा ब्रह्मदत्त परम गति को प्राप्त हुआ।

महाभारत-काल के ऋषि-वंशों में शंख, लिखित नाम के दो प्रसिद्ध भाई हुए हैं। आदि पर्व ६०।२५॥ के ५४५ प्रक्षेपानुसार वे देवल के पुत्र थे। शान्तिपर्व अध्याय २३ में शंख, लिखित की कथा है। स्कन्द-पुराण, नागर खण्ड, ११।२२,२३॥ में भी इन्हीं का वर्णन है। नागर खण्ड में इन के पिता का नाम शाण्डिल्य लिखा है। दोनों स्थानों में कथा में थोड़ा सा अन्तर है। कदाचित् यही दोनों धर्मशास्त्र-प्रणेता थे।

इन में से किसी एक शंख का वा किसी अन्य शङ्ख का पुत्र

१—पंजाब यू० का कोश पत्र ९ख, ११क, ३६ख, ५९क, इत्यादि।

शांख्य और पौत्र शांखायन होगा। एक सांख्य चरकसंहिता सूत्र स्थान १।८॥ में स्मरण किया गया है।

शांखायन सम्प्रदाय और आचार्य सुयज्ञ

आश्वलायन गृह्य ३।४॥ शांखायन गृह्य ४।१०॥ तथा शाम्बव्य गृह्य में सुयज्ञ शांखायन का नाम मिलता है। शां० श्रौत० भाष्यकार स्पष्ट कहता है कि शां० श्रौत का कर्ता सुयज्ञ ही था। यथा—

स्वमतस्थापनार्थं सुयज्ञाचार्यः श्रुतिमुदाजहार। १।२।१८॥
साहचर्यं सुयज्ञेन सर्वत्र प्रतिपादितम्। २॥४।६।७॥
शेषं परिभाषां चोक्त्वा प्रक्रमते ततो भगवान् सुयज्ञः सूत्रकारः। ११।१।१॥

शांखायन आरण्यक के अन्त में उसके वंश का आरम्भ गुणाख्य शांखायन से कहा गया है। सुयज्ञ और गुणाख्य का सम्बन्ध विचारणीय है।

२—कौषीतकि शाखा—इस शाखा की संहिता का अभी तक पता नहीं लगा। सम्भव है इस का शांखायन संहिता से कोई भेद न हो, या यदि कोई भेद हो, तो अत्यन्त स्वल्प भेद हो। इन के ब्राह्मण का उल्लेख पूर्व हो चुका है। इस ब्राह्मण पर दो भाष्य मिलते हैं। एक है विनायक भट्ट का और दूसरे के कर्ता का नाम अभी तक अज्ञात है। हां, उस भाष्य, व्याख्यान या वृत्ति का नाम सदर्थविमर्श या सदर्थविमर्शनी है। इस भाष्य के तीन कोश मद्रास राजकीय पुस्तकालय में हैं।[1] कौषीतकि श्रौत भी अपनी शाखा के अन्य ग्रन्थों के समान शांखायन श्रौत से कुछ भिन्न ही था। इस के सम्बन्ध में मैसूर के सूचीपत्र की एक टिप्पणी में लिखा है कि इसका खण्ड-विभाग मुद्रित शांखायन श्रौत से कुछ भिन्न है। इस के तीन हस्तलेख मद्रास, मैसूर और लाहौर में विद्यमान हैं।[2] किसी भावी सम्पादक को इस ग्रन्थ पर काम करना चाहिए।

१—मद्रास राजकीय संस्कृत हस्तलेखों का सूचीपत्र भाग ४, सन् १९२८, संख्या ३६५०, ३७७९। भाग ५, सन् १९३२, पृ० ६३४८।

२—मद्रास सूचीपत्र भाग ५, सन् १९३२, संख्या ४१८३। मैसूर सूचीपत्र, सन् १९२२, संख्या २२। पञ्जाब यूनिवर्सिटी।

कौषीतकि और शांखायनों का सम्बन्ध

आक्सफोर्ड के बोडलियन पुस्तकालय के शांखायन ब्राह्मण के एक हस्तलेख में लिखा है—

कौषीतकिमतानुसारी शांखायनब्राह्मणम् ।

नारायणकृत शांखायन श्रौतसूत्र पद्धति का जो हस्तलेख पञ्जाब यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय में है, उस में अध्याय परिसमाप्ति पर लिखा है—

इति शांखायनसूत्रपद्धतौ कौषीतकिमतानुरक्तमलयदेशोद्भवाष्टाक्षराभिधानविरचितायां तृतीयो ऽध्यायः ॥

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कौषीतकि और शांखायनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

काशी में मुद्रित कौषीतकि गृह्य के अन्त में लिखा है—

इति शांखायनशाखायाः कौषीतकिगृह्यसूत्रे षष्ठोऽध्यायः ॥
इदमेव कौशिकसूत्रम् ।

कौशिक का नाम यहां कैसे आ गया, यह विचारणीय है । कौषी० गृह्य कारिका का एक हस्तलेख मद्रास में है ।[1]

कौषीतकि का वास्तविक नाम

कौषीतकि के पिता का नाम कुषीतक था ।[2] आश्वलायनादि गृह्य सूत्रों में कहोलं कौषीतकम् प्रयोग देखने में आता है । अतः कौषीतकि का नाम कहोल ही होगा । एक कहोल उद्दालक का शिष्य और जामाता था । इस कहोल का पुत्र अष्टावक्र था । इस विषय में महाभारत वनपर्व अध्याय १३४ में कहा है—

उद्दालकस्य नियतः शिष्य एको नाम्ना कहोलेति बभूव राजन् ॥८॥
तस्मै प्रादात्सद्य एव श्रुतं च भार्यां च वै दुहितरं स्वां सुजाताम् ॥९॥
अस्मिन् युगे ब्रह्मकृतां वरिष्ठावास्तां मुनी मातुलभागिनेयौ ।
अष्टावक्रश्च कहोलसूनुरौद्दालकिः श्वेतकेतुः पृथिव्याम् ॥३॥

१—कौषीतकि गृह्यकारिका । मद्रास सूचीपत्र, भाग ४, खं० तृतीय, संख्या ३८२४ ।

२—एक कुषीतक का नाम ता० ब्रा० १७।४।३॥ में मिलता है ।

अष्टावक्रः प्रथितो मानवेषु अस्यासीद्वै मातुलः श्वेतकेतुः ॥१२॥

अर्थात्—कहोल उद्दालक का जामाता था। कहोल का पुत्र अष्टावक्र और उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु था। इस सम्बन्ध से श्वेतकेतु और अष्टावक्र क्रमशः मामा और भानजा थे। वे दोनों ब्रह्मकृत अर्थात् वेद जानने वालों मे श्रेष्ठ थे।

कौषीतकि को कई स्थानों पर कौषीतक भी लिखा है यथा—

क—कहोळं कौषीतकम्। आश्व० गृ० ३।४।४॥

ख—नत्वा कौषीतकाचार्यं शाम्बव्यं सूत्रकृतमम्।[1]

ग—श्रीमत्कौषीतकमुनिमहः पूर्वपृथ्वीधराग्राद्युद्यत्सुज्ज्वसितसुकृतिहृद्व्योमसान्द्रान्धकारः।[2] इत्यादि।

क्या शाखाकार कौषीतकि ही अष्टावक्र का पिता कहोल था, यह विचारना चाहिए। एक अनुमान इस विषय का कुछ समर्थन करता है। ऋग्वेदीय आरुणि अथवा गोतम शाखा का वर्णन आगे किया जायगा। वह गोतम यही उद्दालक या इस का कोई सम्बन्धी था। सम्भव है, उस का जामाता कहोल भी ऋग्वेद का ही आचार्य हो।

पाणिनीय सूत्र ४।१।१२४॥ के अनुसार कौषीतकि और कौषीतकेय में भेद है। काश्यप गोत्र वाला कौषीतकेय है, और दूसरा कौषीतकि। बृह० उप० ३।४।१॥ में कहोल कौषीतकेय पाठ है। यदि यह पाठ अशुद्ध नहीं, तो पूर्व लिखे गए वचनों से इस का विरोध विचारणीय है।

३—महाकौषीतकि शाखा। आचार्य महाकौषीतक का नाम आश्वलायनादि गृह्य सूत्रों के तर्पण प्रकरण में मिलता है। इस की शाखा का उल्लेख आनर्तीय ब्रह्मदत्त अपने भाष्य में करता है—

न त्वाम्नायगतस्य मतिरेषा न पौरुषेयस्य कल्पस्य। एवं तर्ह्यनुब्राह्मणमेतत् महाकौषीतकादाहृतं कल्पकारेणाध्यायत्रयम्। १४।२।३॥

१—शाम्बव्यगृह्यकारिका। मद्रास सूचीपत्र, भाग प्रथम, खं०प्रथम, सन् १९१३, संख्या ४०।

२—कौ० ब्रा० भाष्य, मद्रास सूचीपत्र, भाग ४, खंड ३, पृ० ५४०२।

महाकौषीतकिब्राह्मणाभिप्रायेण नाम्ना धर्मातिदेश इति तद्धर्मप्रवृत्तिः ।१४।१०।१।।

अर्थात्—शांखायन श्रौत के तीन अन्तिम १४–१६ अध्याय सुयज्ञ कल्पकार ने महाकौषीतकि से लिए हैं । इन महाकौषीतकियों का अपना ब्राह्मण ग्रन्थ भी था ।

विनायक भट्ट अपने कौषीतकि-ब्राह्मण-भाष्य में सात स्थानों पर महाकौषीतकि ब्राह्मण से प्रमाण देता है । वे स्थान हैं—३।४।। ३।५।। ३।७।। १८।१४।। २४।१।। २४।२।। २६।१।।[1]

४—शाम्बव्य शाखा । इस शाखा की कोई संहिता या ब्राह्मण थे या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता । हां, इस का कल्प तो अवश्य था । उस कल्प का उल्लेख जैमिनीयश्रौत-भाष्य में भवत्रात ने किया है—

आश्वलायनः षड्भिः [षोडशभिः ?] पटलैः समस्तं यज्ञतन्त्रमवोचत् । तदेव चतुर्विंशत्यावदत् शाम्बव्यः ।[2]

अर्थात् —आश्वलायन ने अपना यज्ञशास्त्र १६ पटलों में कहा ह, और शाम्बव्य ने अपना कल्प २४ पटलों में कहा ।

इन २४ पटलों में से श्रौत के कितने और गृह्य के कितने हैं, यह नहीं कह सकते । परन्तु कौषीतकि गृह्य के समान शाम्बव्य गृह्य के यदि ६ पटल माने जाएं तो श्रौत के १८ पटल होंगे । शांखायन श्रौत के १६ पटल और महाव्रत के २ पटल मिला कर कुल १८ पटल ही बनते हैं।

शाम्बव्य गृह्य का उल्लेख हरदत्त मिश्र अपने एकाग्निकाण्ड भाष्य में करता है । देखो दूसरे प्रपाठक का दूसरा खण्ड, इयं दुरुक्तात् मन्त्र का भाष्य । अरुणगिरिनाथ रघुवंश पर अपनी प्रकाशिका टीका ६।२५।। में भी इस ग्रन्थ का एक सूत्र उद्धृत करता है ।

आश्वलायन गृह्य ४।१०।२२।। में शाम्बव्य आचार्य का मत दिया गया है । हरदत्त भाष्य सहित जो गृह्य त्रिवन्द्रम से प्रकाशित हुआ है,

१—कीथकृत ऋग्वेद ब्राह्मणों का अनुवाद, भूमिका पृ० ४१ ।

२—पंजाब यूनिवर्सिटी का हस्तलेख, संख्या ४९७२, पत्र ४४ । यह कोश बड़ोदा ग्रंथ की प्रतिकृति है ।

उस में यह नाम शुद्ध पढ़ा गया है। गार्ग्य नारायण की वृत्ति के साथ जो आश्वलायन गृह्य छपे हैं, उन में शांवत्यः अशुद्ध पाठ है।

शाम्बव्य गृह्य कारिका के मङ्गल श्लोकों में भी शाम्बव्य का स्मरण किया गया है। यथा—

नत्वा कौषीतकाचार्यं शाम्बव्यं सूत्रकृत्तमम्।
गृह्यं तदीयं संक्षिप्य व्याख्यास्ये बहुविस्तृतम्॥
यथाक्रमं यथाबोधं पञ्चाध्यायसमन्वितम्।
व्याख्यातं वृत्तिकाराद्यैः श्रौतस्मार्तविचक्षणैः॥

अर्थात्—कौषीतकाचार्य और सूत्रकर्ता शाम्बव्य को नमस्कार करके पांच अध्याय में शाम्बव्य गृह्य का व्याख्यान किया जाता है।

ये श्लोक सन्देह उत्पन्न करते हैं कि कदाचित् गृह्य पांच अध्यायों का ही हो।

शाम्बव्य और कौषीतकि का सम्बन्ध भी विचार योग्य है। इन से सम्बद्ध सब ग्रन्थों के मुद्रित हो जाने पर ही इस विचार का निश्चित परिणाम जाना जा सकता है।

शाम्बव्य ऋषि कुरु-देशवासी था

महाभारत आश्रमवासिक पर्व अध्याय १० में एक आचार्य के विषय में कहा है—

ततः स्वाचरणो विप्रः सम्मतोऽर्थविशारदः।
सांबाख्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रमे॥११॥

यह पाठ नीलकण्ठ टीका सहित मुम्बई संस्करण का है। कुम्भघोण संस्करण में सांबाख्यो के स्थान में संभाव्यो पाठ है। कुम्भघोण संस्करण में इसी स्थान पर क कोश का पाठ शांभव्यो है। दयानन्द कालेज पुस्तकालय के चार कोशों में कि जिन की संख्या ६०, ११११, २८३६ और ६७३३ है, इस स्थान पर साम्बाख्यो। संबाख्यो। शांबाश्य्यो और शाकाभ्यो पाठ क्रमशः मिलता है। हमारा विचार है कि वास्तविक पाठ संभवतः शांभव्यो या शांबव्यो हो। इस श्लोक के दूसरे पाठान्तरों पर यहां ध्यान नहीं दिया गया।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि जब महाराज धृतराष्ट्र वानप्रस्थ आश्रम में जाने लगे, तो उन की वक्तृता के उत्तर में शांबव्य नाम का ब्राह्मण जो ऋग्वेदीय और अर्थशास्त्र का पण्डित था, बोलने लगा। अतः प्रतीत होता है कि कुरु-जाङ्गल देश वालों का प्रतिनिधि ब्राह्मण शांबव्य, कुरु देश वासी ही होगा।

५—माण्डूकेय शाखाएं

आर्च शाखाओं का पांचवां विभाग माण्डूकेयों का है। पुराणों में इस विभाग का स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं मिलता। शाकलों और बाष्कलों के दो विभागों के अतिरिक्त पुराणों में शाकपूणि और बाष्कलि भरद्वाज के दो और विभाग लिखे गए हैं। इन दो विभागों में से माण्डूकेयों का किसी से कोई सम्बन्ध है, या नहीं, इस विषय पर निश्चित रूप से अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता।

बृहद्देवता का आम्नाय

हमारा अनुमान है कि बृहद्देवता का आम्नाय ही माण्डूकेय आम्नाय है। इस अनुमान को पुष्ट करने वाले प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं—

१—बृहद्देवता का प्रथम श्लोक है—

मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः।

अर्थात्—मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को नमस्कार करके आम्नाय के क्रम से सूक्त आदि के देवता कहूंगा।

इस से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि बृहद्देवता ग्रन्थ किसी आम्नाय-विशेष पर लिखा गया है। उस आम्नाय के पहचानने का प्रकार आगे लिखा जाता है। बृहद्देवता के आम्नाय में ऋ० १०।१०३॥ के पश्चात्—

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्........।

इत्यादि मन्त्र से आरम्भ होने वाला एक नाकुल सूक्त है। यह सूक्त शाकल और बाष्कल आम्नाय में पढ़ा नहीं गया। शाकलक सर्वा-नुक्रमणी में इस का अभाव है। बाष्कल आम्नाय का शाकल आम्नाय से जितना भेद है वह पूर्व लिखा जा चुका है। तदनुसार बाष्कल आम्नाय

में भी यह सूक्त नहीं हो सकता । आश्वलायन श्रौतसूत्र ४।६॥ में इस नाकुल सूक्त के कुछ मन्त्र सकल पाठ में पढ़े गए हैं । अतः आश्वलायन आम्नाय में भी ब्रह्म जज्ञानं सूक्त का अभाव ही है । अब रहे ऋग्वेद के दो शेष आम्नाय । उन में से बृहद्देवता का सम्बन्ध शांखायन आम्नाय से भी नहीं है । शांखायन श्रौतसूत्र ५।९॥ में इसी पूर्वोक्त नाकुल सूक्त के ब्रह्म जज्ञानं आदि कुछ मन्त्र सकल पाठ से पढ़े गए हैं । अतः अब रह गया एक ही आम्नाय माण्डूकेयों का । उसी में यह सूक्त विद्यमान होना चाहिए । सुतरां बृहद्देवता का सम्बन्ध उसी माण्डूकेय आम्नाय से है ।

ऐतरेय ब्रा० १।१९॥ और कौषीतकि ब्रा० ८।४॥ में ब्रह्म जज्ञानं आदि मन्त्रों की प्रतीकें पढ़ी गई हैं । ऐतरेय ब्रा० भाष्य में सायण लिखता है—

ता एताश्चतस्रः शाखान्तरगता आश्वलायनेन पठिता द्रष्टव्याः ।

अर्थात्—ये ऋचाएं ऐतरेय शाखा की नहीं हैं । प्रत्युत शाखान्तर की हैं ।

२—बृहद्देवता अध्याय तीन में निम्नलिखित श्लोक हैं—

ऐन्द्राण्यस्मै ततस्त्रीणि वृष्णे शर्धाय मारुतम् ।
आग्नेयानि तु पश्चेति नव शश्वद्धि वाम् इति ॥११८॥
दशाश्विनानीमानीति इन्द्रावरुणयोः स्तुतिः ।
सौपर्णेयास्तु याः काश्चिन् निपातस्तुतिषु स्तुताः ॥११९॥
उपप्रयन्तः सूक्तानि आग्नेयान्युत्तराणि षट् ।

अर्थात्—ऋ० १।७३॥ के पश्चात् बृहद्देवता के आम्नाय में दस अश्वि सूक्त हैं । उनकी पहली ऋचा शश्वद्धि वाम् है । तत्पश्चात् एक सौपर्ण सूक्त है और उस के आगे उपप्रयन्तः ऋ० १।७४॥ आदि अग्नि देवता सम्बन्धी छः सूक्त हैं ।

सूक्तों का ऐसा क्रम शाकलक और बाष्कल आम्नायों में नहीं है । शश्वद्धि वाम् मन्त्र आश्वलायन और शांखायन श्रौत सूत्रों में नहीं मिलता । इस लिए यद्यपि दृढ रूप से तो नहीं, पर अनुमान से कह सकते हैं कि यह सूक्त और पूर्वनिर्दिष्ट सूक्तक्रम माण्डूकेयों का ही है ।

माण्डूकेयों का कुल वा देश

मण्डूक का पुत्र माण्डूकेय था। उस माण्डूकेय को शां० आर० ७।२॥ आदि में शौरवीर और ऐतरेय आरण्यक ३।१॥ में शूरवीर कहा गया है। उसका एक पुत्र दीर्घ [शां०आ० ७।२॥] या ज्येष्ठ [ऐ०आ० ३।१॥] था। ह्रस्व माण्डूकेय इसी माण्डूकेय का भ्राता प्रतीत होता है। इस ह्रस्व माण्डूकेय का एक पुत्र मध्यम था। यह भी वहीं इन दोनों आरण्यकों में लिखा है। उस मध्यम की माता का नाम प्रातीवोधी प्रातीयोधी था।[1] वह मध्यम मगधवासी था, यह शां० आ० में लिखा है। शांखायन और ऐतरेय आरण्यक के इन नामों का उल्लेख करने वाले पाठ कुछ भ्रष्ट प्रतीत होते हैं। अतः उन पाठों का शोधना वड़ा आवश्यक है। हमारा अनुमान है कि कदाचित् माण्डूकेय के तीन पुत्र हों। पहला ज्येष्ठ या दीर्घ, दूसरा मध्यम और तीसरा ह्रस्व। यदि मध्यम मगधवासी है, तो क्या सारे माण्डूकेय मगधवासी थे, यह विचारणीय है।

माण्डूकेय आम्नाय का परिमाण

यदि बृहद्देवता का आम्नाय माण्डूकेय आम्नाय ही है और यदि उस आम्नाय का यथार्थ ज्ञान हम ने बृहद्देवता से ही करना है, तो बृहद्देवता का पाठ निस्संदेह अत्यन्त शुद्ध होना चाहिए। प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में ऋग्वेद के भिन्न भिन्न चरणों के पृथक् पृथक् बृहद्देवता होंगे। शनैः शनैः उनके पाठ परस्पर मेल से कुछ कुछ दूषित और न्यूनाधिक होते गए। मैकडानल-कृत बृहद्देवता का संस्करण यद्यपि वड़े परिश्रम का फल है तथापि उस में स्पष्ट ही कम से कम दो बृहद्देवता ग्रन्थों का सम्मिश्रण किया गया है। अतः अब यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि मुद्रित बृहद्देवता केवल एक ही आम्नाय पर आश्रित है। हां, यह वात अधिकांश में सत्य प्रतीत होती है। मुद्रित बृहद्देवता के अनुसार उसके आम्नाय का अथवा माण्डूकेय शाखा का स्वरूप मैकडानल-संस्कृत

१—एक प्रातिमेधी ब्रह्मवादिनी ब्रह्माण्ड पुराण १।३३।१९॥ में स्मरण की गई है। आश्वलायन गृह्य के ऋषि तर्पण ३।३।५॥ में एक वडवा प्रातिथेयी भी स्मरण की गई है।

बृहद्देवता की भूमिका में देखा जा सकता है।[1] वहां उन ३७ सूक्तों का पते वार वर्णन है कि जो बृहद्देवता की शाखा में शाकलकों से अधिक पाए जाते हैं। बृहद्देवता के आम्नाय में शाकलक शाखा में विद्यमान कुछ सूक्तों का अभाव भी है।

क्या माण्डूकेय ही बह्वृच थे

साधारणतया बह्वृच शब्द से ऋग्वेद का अभिप्राय लिया जाता है। मा० शतपथ ब्रा० १०।५।२।२०॥ में बह्वृच शब्द का सामान्य प्रयोग है। महाभाष्य में भी ऐसा ही प्रयोग है—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्।

इस का अभिप्राय यह है कि अन्य वेदों की अपेक्षा ऋग्वेद में अधिक ऋचाएं हैं। परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के पांच चरणों में से जिस में सब से अधिक ऋचाएं थीं, उसे भी बह्वृच कहा गया है। वह चरण माण्डूकेयों के चरण के अतिरिक्त दूसरा दिखाई नहीं देता। यही चरण है कि जिस में शाकलकों और बाष्कलों से तो प्रत्यक्ष ही अधिक ऋचाएं हैं और आश्वलायनों तथा शांखायनों से भी सम्भवतः इसी में अधिक ऋचाएं होंगी। अथवा बह्वृच माण्डूकेयों का कोई अवान्तर विभाग हो सकता है।

पैङ्गि और कौषीतकि से भिन्न बह्वृच एक शाखाविशेष है

बह्वृच एक शाखा है, इस के प्रमाण आगे दिए जाते हैं।

१—कौषीतकि ब्राह्मण १६। ९॥ का ग्रन्थ है—

किंदेवत्यः सोम इति मधुको गौश्रं पप्रच्छ स ह सोमः पवत इत्यनुद्रुत्यैतस्य वा अन्ये स्युरिति प्रत्युवाच बह्वृचवदैन्द्र इति त्वेव पैङ्ग्यस्य स्थितिरासैन्द्राग्न इति कौषीतकिः।

अर्थात्—मधुकने गौश्र से पूछा कि सोम का देवता कौन है। उत्तर मिला बहुत देवता हैं। बह्वृच के समान पैङ्ग्य का मत था कि सोम का देवता इन्द्र है। कौषीतकि का मत है कि इन्द्राग्नी सोम के देवता हैं।

पैङ्ग्य और कौषीतकि दोनों ऋग्वेदीय हैं। बह्वृच भी इन से

१—पृ० ३०-३३।

पृथक् कोई ऋग्वेदी है। यदि वह्वृच का अर्थ सामान्यतया ऋग्वेदी होता तो पैङ्ग्य और कौषीतकि को इन से पृथक् न गिना जाता।

२—माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण ११।५।१।१०॥ में कहा है—

तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्चं वह्वृचाः प्राहुः।

अर्थात्—पुरुरवा और उर्वशी के (आलङ्कारिक) संवाद का यह सूक्त पन्द्रह ऋचा का है, ऐसा वह्वृच कहते हैं।

शतपथ का संकेत वह्वृच शाखा की ओर है, क्योंकि ऋग्वेद के इसी १०।९५॥ सूक्त में अठारह ऋचा हैं।

३—आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में उस के सम्पादक रिचर्ड गार्बे की उद्धरण-सूची के अनुसार नौ स्थानों पर वह्वृच ब्राह्मण और तीन स्थानों पर वह्वृच उद्धृत हैं। इस प्रकार आप० श्रौत में कुल बारह बार वह्वृचों का उल्लेख मिलता है। पहले नौ प्रमाणों में से एक प्रमाण भी ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मणों में नहीं मिलता। शेष तीन प्रमाणों में से दो तो सामान्य ही हैं, और तीसरे ६।२७।२॥ में वह्वृचों के दो मन्त्र उद्धृत किए गए हैं। वे दोनों मन्त्र अन्य उपलब्ध ऋग्वेदीय ग्रन्थों में नहीं मिलते। अतः इन सब प्रमाणों से यही निश्चित होता है कि वह्वृच कोई शाखा-विशेष थी।

कीथ का मत

इस विषय में अध्यापक कीथ का भी यही मत है—

It is perfectly certain that he meant some definite work which he may have had before him, and in all probability all his quotations come from it.[1]

अन्त में अध्यापक कीथ लिखता है—

And this fact does suggest a mere conjecture that the Brahmana used was the text of the Paingya school.[2]

अर्थात्—एक संभावनामात्र है कि वह ब्राह्मण पैङ्ग्य ब्राह्मण होगा। कीथ की यह संभावना सत्य सिद्ध नहीं हो सकती। अभी जो प्रमाण

१—जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, सन् १९१५, पृ० ४९६।
२—तथैव, पृ० ४९८।

कौषी० ब्रा० १६ । ९ ॥ का पूर्व दिया गया है, वहां वह्वृच ऋषि पैङ्ग्य से पृथक् माना गया है ।

४—कठगृह्य २५।८॥ के भाष्य में आदित्यदर्शन वह्वृचगृह्य का एक सूत्र उद्धृत करता है । इस गृह्य के सम्पादक डा० कालेण्ड के अनुसार यह सूत्र आश्वलायन ओर शांखायन गृह्यों में नहीं मिलता । अतः वह्वृच गृह्य इन से पृथक् गृह्य होगा ।

५—इसी प्रकार कठ गृह्य ५९ । ५ ॥ के अपने भाष्य में देवपाल एक वह्वृच ब्राह्मण का पाठ उद्धृत करता है ।

६—भर्तृहरि अपनी महाभाष्य टीका के आरम्भ में वह्वृच-सूत्रभाष्ये कह कर एक पाठ उद्धृत करता है । इस से आगे वह आश्वलायनसूत्रे लिख कर एक और पाठ देता है । इस से ज्ञात होता है कि वह्वृच आश्वलायनों से भिन्न थे ।

७—मनु २।२९॥ पर मेधातिथि का भी एक प्रयोग विचार योग्य है—

कठानां गृह्यं वह्वृचामाश्वलायनानां च गृह्यमिति ।

कुमारिल भट्ट अपने तन्त्रवार्तिक १ । ३ । ११ ॥ में लिखता है—

गृह्यग्रन्थानां च प्रातिशाख्यलक्षणवत् प्रतिचरणं पाठव्यवस्थोपलभ्यते । तद्यथा—वासिष्ठं वह्वृचैरेव । शङ्खलिखितोक्तं च वाजसनेयिभिः ।

अर्थात्—प्रातिशाख्य ग्रन्थों के समान धर्म और गृह्य शास्त्रों की भी प्रतिचरण पाठव्यवस्था है । जैसे—वह्वृच चरण वाले वासिष्ठ सूत्र पढ़ते हैं, इत्यादि ।

कुमारिल के इस लेख से भी वह्वृच एक चरण प्रतीत होता है ।

८—व्याकरण महाभाष्य ५।४।१५४॥ में एक पाठ है—

अनृचो माणवे वह्वृचश्चरणाख्यायाम् ।

अर्थात्—विना ऋक् पढ़े बालक को जब वह्वृच कहते हैं, तो चरण के अभिप्राय से कहते हैं । यहां भी वह्वृच एक चरण विशेष माना गया है ।

बह्वृच-शाखा पर अधिक विचार करने वालों को श्रीमद्भागवत् १।४।। का निम्नलिखित श्लोक ध्यान से देखना चाहिए—

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्त्रिणाम् ।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ।।१।।

अर्थात्—नैमिषारण्य वासी शौनक ऋषि बह्वृच था ।

इस का एक अभिप्राय यह हो सकता है कि शौनक ऋग्वेदी था, और दूसरा यह हो सकता है कि वह ऋग्वेद की बह्वृच शाखा से सम्बन्ध रखता था। यदि दूसरा अभिप्राय ठीक माना जाए, तो यह संभव हो सकता है कि शौनक ने अपनी ही बह्वृच या माण्डूकेय शाखा पर बृहद्देवता रचा हो ।

शांबव्य आचार्य भी बह्वृच था । हम पहले शांखायन चरण के वर्णन में इसी शांबव्य का उल्लेख कर चुके हैं। उतने लेख से यही स्पष्ट है कि यह शांबव्य ऋग्वेदी था, और ऋग्वेद के बह्वृच चरण का प्रवक्ता नहीं था ।

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग अध्याय ३२ में लिखा है—

सप्रधानाः प्रवक्ष्यन्ते समासाच्च श्रुतर्षयः ।
बह्वृचो भार्गवः पैलः सांकृत्यो जाजलिस्तथा ।। २ ।।

इस श्लोक में पढ़े हुए ऋषिनाम पर्याप्त भ्रष्ट हो गए हैं, परन्तु हमारा प्रयोजन इस समय केवल पहले नाम से ही है। वह नाम कई दूसरे कोशों में भी ऐसे ही पढ़ा गया है । इस से प्रतीत होता है कि बह्वृच भी कोई ऋग्वेदी ऋषि ही था ।

चरणव्यूह कथित ऋग्वेद के पांच विभागों का वर्णन यहां समाप्त किया जाता है। आगे पुराण-कथित शेष दो विभागों का वर्णन किया जाएगा।

पुराण-कथित शाकपूणि का विभाग

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग अध्याय ३४ में कहा है—

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूणी रथीतरः ।
निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः ।। ३ ।।
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः पैलश्चेक्षलकस्तथा ।
धीमान् शतबलाकश्च गजश्चैव द्विजोत्तमाः ।। ४ ।।

अर्थात्—शिष्य प्रशिष्य परम्परा से माण्डूकेय से प्राप्त हुई शाखा की शाकपूणि ने तीन शाखाएं बना दीं। तत्पश्चात् उसने एक निरुक्त बनाया। उसके चार शिष्य थे। इस मुद्रित संस्करण में उन के नाम पैल और इक्षलक आदि कहे गए हैं।

ये दोनों नाम यहां बहुत ही भ्रष्ट हो गए हैं। वायु, विष्णु और भागवत पुराणों में भी ये नाम अत्यन्त भ्रष्ट हैं। प्रतीत होता है कि प्राचीन लिपियों के बदलते जाने के कारण ही इन नामों का पाठ दूषित हो गया है। संस्कृत भाषा के साधारण शब्दों को तो पूर्ण न पढ़ सकने पर भी पुराने लेखक अपने ज्ञान के अनुसार शुद्ध कर लेते थे, परन्तु नामविशेषों को पुरानी लिपियों के ग्रन्थों में जब वे न पढ़ सके, तो इन नामों के नक़ल करने में उन्होंने भारी अशुद्धियां कीं। ये अशुद्धियां हैं तो भयानक, परन्तु यत्नसाध्य हैं।

इन दोनों नामों के निम्नलिखित पाठान्तर हमें मिल सके हैं—

पञ्जाब यूनिवर्सिटी सं० २८१६	— पैज़श्चेक्षलकस्तथा।
दयानन्द कालेज का कोश सं० २८११	— शपैष्वलकस्तथा।
मुद्रित वायुपुराण आनन्दाश्रम सं०	— केतवोदालकस्तथा।
मुद्रित पुराण का घ कोशस्थ पाठ	— कैजवो वामनस्तथा।
,, ,, का ङ ,,	— कैजवोद्दालकस्तथा।
,, ,, का ख ,,	— कैजवो वामनस्तथा।
,, विष्णु पुराण मुम्बई	— क्रौंचो वैतालकिः।
वि०पु०द०कालेज कोश सं० १८५०	— क्रौंजः पैलालकः।
,, ,, ,, २७८४	— क्रौंचः पैलानकः।
,, ,, ,, १२६०	— क्रौंचो वैलालकिः।
,, ,, ,, ४९०४	— क्रौंच पैलाककिः।
मुद्रित भागवत मद्रास संस्करण	— पैजवैताल०।
भागवत का वीरराघव टीकाकार	— पैंजवैताल०।
,, ,, विजय ,,	— पैंगिपैलाल०।

इन समस्त पाठान्तरों को देख कर ब्रह्माण्ड पुराण के पाठ के तीन निम्नलिखित विकल्प हमें प्रतीत होते हैं।

पैङ्ग्यश्चौद्दालकिस्तथा ।
पैङ्ग्य औद्दालकिस्तथा ।
पैङ्ग्यः शैलालकस्तथा ।

१—पैङ्ग्य शाखा ।[1] पैङ्ग्य शाखा ऋग्वेद की ही शाखा है, यह प्रपञ्चहृदय के पूर्वोद्धृत प्रमाण से सुनिश्चित हो जाता है । इस शाखा के ब्राह्मण और कल्प के अस्तित्व के विषय में इस इतिहास के दूसरे भाग में लिखा जा चुका है । इस शाखा की संहिता थी वा नहीं, और यदि थी तो कैसी थी, इस बात का अभी तक हमें ज्ञान नहीं हो सका ।

आयुर्वेद की चरक संहिता के आरम्भ में जिन ऋषियों का वर्णन किया गया है, उन में पैङ्गि भी एक था ।[2] इसी पैङ्गि का पुत्र पैङ्ग्य होना चाहिए ।

सभापर्व ४।२३॥ के अनुसार एक पैङ्ग्य युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश उत्सव में विराजमान था ।

पैङ्ग्य का नाम मधुक था । बृहद्देवता १।२४॥ में वह मधुक नाम से स्मरण किया गया है । शतपथ, ऐतरेय और कौषीतकि आदि ब्राह्मणों में उस का कई वार उल्लेख हुआ है । शांखायन श्रौत सूत्र में भी वह बहुधा उल्लिखित है । इस के चतुर्थाध्याय के दूसरे खण्ड में उस का मत अग्न्यन्वाधान के सम्बन्ध में लिखा गया है । इस पर भाष्यकार पहले सूत्र की व्याख्या में शाखान्तर कह कर पैङ्ग्य का ही मत दर्शाता है । कौषीतकि का मत इस से कुछ भिन्न कहा गया है । बह्वृच प्रकरण में जो कौषीतकि ब्राह्मण का प्रमाण दिया गया है, उस से प्रतीत होता है कि सोम देवता सम्बन्धी पैङ्ग्य का मत बह्वृच के समान था ।

मा० शतपथ ब्रा० १४।९।३।१६॥ के अनुसार मधुक पैङ्ग्य ने वाजसनेय याज्ञवल्क्य से आत्मविद्या प्राप्त की थी ।

१—काण्वसंहिता-भाष्यकार अनन्तभट्ट अपने विधान-पारिजात स्तवक ३, पृ० १२० पर कौषीतकि ब्राह्मण की पङ्क्ति के अर्थ में लिखता है—
इति सामशाखाप्रवर्तकस्य पैङ्ग्यर्षेर्मतम् ।
यह उस की भूल है।

२—सूत्रस्थान १।१२॥

पैङ्गय गृह्य या धर्म सूत्र के प्रमाण स्मृतिचन्द्रिका, आशौच काण्ड, पृ० १४, गोतम धर्म सूत्र, मस्करी भाष्य, १४।६,१७।। तथा आपस्तम्ब-गृह्यसूत्र, हरदत्तकृत अनाकुला टीका ८।२१।९।। पर मिलते हैं। पैङ्गय शाखा के ग्रन्थ और विशेष कर पैङ्गय गृह्य और धर्मसूत्र तो दक्षिण में अब भी मिल सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

२—**औद्दालकि शाखा**—उद्दालक गौतम कुल का था। उस के पिता का नाम अरुण था, अतः वह आरुणि भी कहाता था। उस का पुत्र श्वेतकेतु था। एक उद्दालक आरुणि पाञ्चाल्य अर्थात् पञ्चाल देश निवासी पारिक्षित जनमेजय के काल में होने वाले धौम्य आयोद का शिष्य था। आदि पर्व ३।१९।। से उसकी कथा आरम्भ होती है। गोतमकुल के कारण से प्रपञ्चहृदय में यह शाखा गौतम शाखा के नाम से स्मरण की गई है।[1] अन्यत्र व्याकरण महाभाष्य आदि में इसे आरुणेय शाखा कहा गया है। आरुणेय ब्राह्मण का वर्णन इस इतिहास के दूसरे भाग में हो चुका है।[2] गौतम नाम का एक आचार्य आश्वलायन श्रौत में बहुधा स्मरण किया गया है। यह ऋग्वेदीय आचार्य ही होगा।

सामवेद की भी एक गौतम शाखा है। उसका वर्णन आगे होगा। उस शाखा से इस को पृथक् ही जानना चाहिए।

३—**शैलालक शाखा**। ब्रह्माण्ड पुराण के पाठ में औद्दालकि के स्थान में यदि शैलालक पाठ माना जाए, तो भी युक्त हो सकता है।

परन्तु इन दोनों पाठों में से कौन सा पाठ मूल था, यह निर्णय करना अभी कठिन है। इस शाखा के ब्राह्मण का उल्लेख इस इतिहास के ब्राह्मण भाग में हो चुका है। अष्टाध्यायी ४।३।११०।। में भी इसी शाखा का संकेत है। श्रीभाष्य पर श्रुतप्रकाशिका टीका पृ० ६८१ पर सुदर्शनाचार्य इस ब्राह्मण का एक लम्बा पाठ उद्धृत करता है। तथा पृ० ९०९, ९१०, १३६८ पर भी वह इस ब्राह्मण को स्मरण करता है।

४—**शतबलाक्ष शाखा**। ब्रह्माण्ड, वायु, विष्णु और भागवत तथा

१—देखो, पृ० ७९।

२—पृ० ३२, ३३।

उनके हस्तलेखों में इस नाम के कई पाठान्तर हमें मिले हैं। वे हैं खेतवलाक, श्वेतवलाक, बलाक, वालाक और व्यलीक। इन सब नामों में से शतवलाक्ष नाम ही अधिक युक्त प्रतीत होता है। एक शतवलाक्ष मौद्गल्य निरुक्त ११।६॥ में स्मरण किया गया है। यह मुद्गल का पुत्र था। शाकलकों की मुद्गल शाखा का वर्णन पृ० ८३—८६ तक हो चुका है। सम्भव है उसी मुद्गल का पुत्र ऋग्वेद की इस शाखा का प्रचारक हो। निरुक्त ११।६॥ के पाठ से प्रतीत होता है कि यह शतवलाक्ष एक नैरुक्त भी था। यदि यही शतवलाक्ष नैरुक्त शाकपूणि का शिष्य था, तो उस के निरुक्तकार होने की बड़ी सम्भावना हो जाती है।

शाकपूणि का चौथा शिष्य

शाकपूणि के ये तीन शिष्य तो शाखाकार कहे गए हैं। उसका चौथा शिष्य कोई निरुक्तकार है। उसके नाम के निम्नलिखित पाठान्तर हैं—

गजः। नैगमः। निरुक्तकृत्। निरुक्तः। विरजः।

इन नामों में से कौन सा नाम वास्तविक है, इस के निर्णय का प्रयास हम ने नहीं किया। पाठकों के ज्ञानार्थ हम इतना बता देना चाहते हैं कि हास्तिक नाम का एक कल्पसूत्र था। मीमांसा के शाबर भाष्य १।३।११॥ में लिखा है—

इह कल्पसूत्राण्युदाहरणम्। माशकम्। हास्तिकम्। कौण्डिन्यकम्-इत्येवंलक्षणकानि········।

यदि पूर्वोक्त पाठान्तरों में गज नाम ठीक मान लिया जाए, तो क्या उसका हास्तिक कल्प से कोई सम्बन्ध था?

पुराणान्तर्गत शाखाकारों का अन्तिम विभाग

बाष्कलि भरद्वाज

पहले पृ० ९२ पर दैत्य बाष्कल और ऋषि बाष्कल का उल्लेख हो चुका है। स्कन्द पुराण नागरखण्ड ४१।६॥ के अनुसार एक दानवेन्द्र बाष्कलि भी था—

पुरासीद् बाष्कलिर्नाम दानवेन्द्रो महाबलः।

यह बाष्कलि शाखाकार ऋषि नहीं था। वेदान्तसूत्रभाष्य ३।२।१७॥ में शङ्कर लिखता है—

वाष्कलिना च वाध्वः पृष्टः ।

अर्थात्—वाष्कलि ने वाध्व से पूछा । यह वाष्कलि शाखाकार हो सकता है ।

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग अध्याय ३५ में लिखा है—

वाष्कलिस्तु भरद्वाजस्तिस्रः प्रोवाच संहिताः ।
त्रयस्तस्याभवञ्छिष्या महात्मानो गुणान्विताः ॥ ५ ॥
धीमांश्च त्वापनीपश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।
तृतीयश्चार्जवस्ते च तपसा संशितव्रताः ॥६॥
वीतरागाः महातेजाः संहिताज्ञानपारगाः ।
इत्येते वह्वृचः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्तिताः ॥७॥

अर्थात्—वाष्कलि भरद्वाज के तीन शिष्य थे ।

१—उन तीन शिष्यों में से प्रथम शिष्य आपनीप कहा गया है। इस आपनीप नाम के भी कई पाठान्तर हैं । यथा—

आपनाप । नन्दायनीय । कालायनि । वालायनि ।

इन नामों में से अन्तिम दो नाम मूल के कुछ निकट प्रतीत होते हैं, परन्तु निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

२—इस समूह की दूसरी शाखा के आचार्य का नाम पन्नगारि लिखा है । भिन्न भिन्न पुराण और उनके हस्तलेखों में उसके पाठान्तर हैं–

पान्नगारि । पन्नगानि । गार्ग्य । भज्यः ।

इन में से प्रथम नाम के युक्त होने की बहुत सम्भावना है । अन्तिम पाठान्तर भागवत में मिलता है । भज्यः नाम हमें अन्यत्र नहीं मिला । हां, एक भुज्युः लाह्यायनि बृहदारण्यक ३।३।१॥ में वर्णित है । यदि भागवत का अभिप्राय इसी से है तो वालायनि के स्थान में भागवत-पाठ लाह्यायनि चाहिए । परन्तु इस सम्भावना में भी एक आपत्ति है । बृ० उप० के अनुसार भुज्यु लाह्यायनि कदाचित् एक चरक था । ऐसी अवस्था में वह ऋग्वेदीय नहीं हो सकता। इस प्रकार भागवत में तीसरे ऋषि का कुछ और नाम ढूंढना पड़ेगा ।

अष्टाध्यायी २ । ४ । ६१ ॥ के अनुसार पान्नगारि प्राच्य देश का रहने वाला था ।

३—ब्रह्माण्ड पुराण में तीसरे ऋषि का नाम आर्जव है । इस के अन्य पाठान्तर हैं—

आर्यव । कथाजव । तथाजव । कासार ।

इन में से कौन सा नाम उचित है, यह हम नहीं जान सके ।

इस प्रकार पुराणों में ऋग्वेदीय शाखाओं के कुल १५ संहिताकार कहे गए हैं । पांच शाकल, चार बाष्कल, तीन शाकपूणि के शिष्य और तीन बाष्कलि भरद्वाज के शिष्य । भर्तृहरि अपने वाक्यपदीय १ । ६ ॥ की व्याख्या में कहता है—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् । पञ्चदशधा इत्येके ।

अर्थात्—कई लोग ऋग्वेद की पन्द्रह शाखाएं भी मानते हैं ।

क्या भर्तृहरि का संकेत उन्हीं आचार्यों की ओर है कि जो पुराणों के अनुसार पन्द्रह संहिताओं को ही ऋग्वेद के भेदों के अन्तर्गत मानते थे ।

वे ऋग्वेदीय शाखाएं जिनका सम्बन्ध पूर्व-वर्णित चरणों से निश्चित नहीं हो सका

१—ऐतरेय शाखा । ऐतरेय ब्राह्मण का अस्तित्व किसी ऐतरेय शाखा की विद्यमानता का द्योतक है । प्रपञ्चहृदय में भी ऐतरेय एक शाखा मानी गई है । आश्वलायन श्रौत १।३॥ इत्यादि और निदानसूत्र ५।२॥ में क्रमशः **ऐतरेयिणः** और **ऐतरेयिणाम्** कह कर इस शाखा वालों का स्मरण किया गया है । आश्वलायन श्रौत के अर्थ में गार्ग्यनारायण लिखता है—**ऐतरेयिणः=शाखाविशेषाः** । वरदत्त सुत भी शांखायन श्रौत-भाष्य १।४। १५॥ में ऐतरेयिणाम् पद का प्रयोग करता है । मनु २।६॥ के भाष्य में मेधातिथि लिखता है—

एकविंशतिबाह्वृच्या आश्वलायन-ऐतरेयादिभेदेन ।

अर्थात्—ऋग्वेद की इक्कीस शाखाओं में एक ऐतरेय शाखा भी है ।

ऐतरेयगृह्य

इस शाखा के ब्राह्मण और आरण्यक तो उपलब्ध हैं ही, परन्तु

इन के गृह्य के अस्तित्व की सम्भावना होती है। आश्वलायन गृह्य १।६।२०॥ की टीका में हरदत्त लिखता है—

ऐतरेयिणां च वचनम्—भवादि सर्वत्र समानम्। इति।

अर्थात्—ऐतरेयों का वचन है कि—सप्तपदी मन्त्रों में भव पद सर्वत्र जोड़ना चाहिए।

यह सम्भवतः ऐतरेय गृह्य का ही वचन हो सकता है।

ऐतरेयशाखा वाले और नवश्राद्ध

स्मृतिचन्द्रिका का कर्ता देवणभट्ट आशौच काण्ड पृ० १७६ पर काश्यप का एक वचन लिखता है—

नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः।
आपस्तम्बाष्षडित्याहुष्षड् वा पञ्चान्यशाखिनः॥

धर्मशास्त्र संग्रहकार शिवस्वामी के नाम से पृ० १७५ पर वह इसी श्लोक का एक अन्य पाठ देता है। वह पाठ नीचे लिखा जाता है—

नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः।
आपस्तम्बाष्षडित्याहुर्विभाषमैतरेयिणः॥

अर्थात्—आश्वलायन शाखा वाले पांच कहते हैं। आपस्तम्ब छः कहते हैं और ऐतरेय शाखा वाले पांच वा छः का विकल्प मानते हैं।

आश्वलायनों से न मिलता हुआ ऐतरेयों का यह मत, उन के किस ग्रन्थ में था, यह विचारना चाहिए।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी ऐतरेयों का कोई ग्रन्थ था या नहीं, यह नहीं कह सकते।

२—वासिष्ठ शाखा। ऋग्वेदीय वासिष्ठ धर्मसूत्र फूहरर के उत्तम संस्करण में मिलता है। फूहरर यह निश्चय नहीं कर सका कि इस सूत्र का सम्बन्ध ऋग्वेद की किस शाखा से है।[1] कुमारिल अपने तन्त्रवार्तिक १।३।११॥ में लिखता है—

गृह्यग्रन्थानां च प्रातिशाख्यलक्षणवत् प्रतिचरणं पाठव्यवस्थोपलभ्यते। तद्यथा—गौतमीयगोभिलीये छन्दोगैरेव च परिगृह्येते।

१—द्वितीय संस्करण का उपोद्घात, प्रकाशन का सन् १९१६।

वासिष्ठं बह्वृचैरेव । शङ्खलिखितोक्तं च वाजसनेयिभिः । आपस्तम्ब-बोधायनीये तैत्तिरीयैरेव प्रतिपन्ने इत्येवं···।

अर्थात्—जिस प्रकार प्रत्येक चरण का एक प्रातिशाख्य ग्रन्थ होता है, इसी प्रकार गृह्य ग्रन्थों की भी प्रतिचरण पाठव्यवस्था है। यथा—वासिष्ठ शास्त्र बह्वृच लोग पढ़ते हैं।

यहां कुमारिल का अभिप्राय यदि बह्वृच शाखा-विशेष से है, तो इतना निश्चित हो जाता है कि वासिष्ठ शाखा का सम्बन्ध बह्वृच चरण से था। वासिष्ठों के श्रौत और गृह्यसूत्र खोजने चाहिएं।

एक समूह के चरणव्यूह ग्रन्थों में निम्नलिखित पाठ है—

एकं शतसहस्रं वा द्विपञ्चाशत्सहस्रार्धमेतानि चतुर्दश वासिष्ठानाम्। इतरेषां पञ्चाशीतिः।[1]

इसी पाठ की टीका में महिदास लिखता है—

एकलक्षद्विपञ्चाशत्सहस्रपञ्चशतचतुर्दश वासिष्ठानाम्। वासिष्ठ-गोत्रीयाणाम्-इन्द्रोतिभिः-एकसप्ततिपदात्मको वर्गो नास्ति।

अर्थात्—वासिष्ठों की शाखा में १५२५१४ पद हैं। उन की संहिता में अष्टक ३, अध्याय ३ का २३वां वर्ग नहीं है। उस वर्ग की पदसंख्या ७१ है।

इस लेख से प्रतीत होता है कि वासिष्ठों की कोई पृथक् संहिता भी थी।

३—सुलभ शाखा। इस शाखा के ब्राह्मण का उल्लेख इस ग्रन्थ के ब्राह्मण भाग में हो चुका है। वह ब्राह्मण ऋग्वेद सम्बन्धी था। इस का अनुमान आश्वलायनगृह्य के ऋषि तर्पण प्रकरण से होता है। वहां सुलभामैत्रेयी या सुलभा और मैत्रेयी का नाम लिखा है। क्या इसी देवी सुलभा का इस ब्राह्मण से कोई सम्बन्ध था। अथवा किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में सुलभा या सुलभ ऋषि का कोई प्रवचन-विशेष हो, और उसी कारण से ब्राह्मण ग्रन्थ के उस भाग को सौलभ ब्राह्मण भी कहते हों।

४—शौनक शाखा। शौनक ऋषि नैमिषारण्य वासी था। इसी

१—चरणव्यूहपरिशिष्टम्। पञ्जाब यूनि० के ओरियण्टल कालेज मेगजीन, नवम्बर १९३२ में मुद्रित, पृ० ३९।

के आश्रम में बड़े बड़े भारी यज्ञ होते थे। इसे ही बह्वृचसिंह कहते थे। इसी का एक शिष्य आश्वलायन था। महाभारत की कथा जनमेजय के सर्पसत्र के पश्चात् उग्रश्रवा ने इसी को सुनाई थी।

प्रपञ्चहृदय में ऋग्वेद की एक शौनक शाखा भी लिखी गई है। वैखानस सम्प्रदाय की आनन्दसंहिता के दूसरे और चौथे अध्याय में आश्वलायन से भिन्न ऋग्वेद का एक शौनकीय सूत्र भी गिना है।[1] इस की शाखा के विषय में अभी इस से अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता।

उपसंहार

अब ऋग्वेद की पूर्ववर्णित कुल शाखाएं नीचे लिखी जाती हैं—

१—मुद्गल शाखा	ये ही पांच शाकल हैं।
२—गालव शाखा	
३—शालीय शाखा	
४—वात्स्य शाखा	
५—शैशिरि शाखा	
६—बौध्य शाखा	ये चार बाष्कल हैं।
७—अग्निमाठर शाखा	
८—पराशर शाखा	
९—जातूकर्ण्य शाखा	
१०—आश्वलायन शाखा	
११—शांखायन शाखा	ये शांखायन हैं।
१२—कौषीतकि शाखा	
१३—महाकौषीतकि शाखा	
१४—शाम्बव्य शाखा	
१५—माण्डूकेय शाखा	
१६—बह्वृच शाखा	
१७—पैङ्ग्य शाखा	

1— Of the Sacred Books of the Vaikhanasas, by W. Caland, Amsterdam, 1928. p. 10.

१८—उद्दालक=गोतम=आरुण शाखा

१९—शतबलाक्ष शाखा

२०—गज=हास्तिक शाखा

२१-२३—बाष्कलि भरद्वाज की शाखाएं

२४—ऐतरेय शाखा

२५—वासिष्ठ शाखा

२६—सुलभ शाखा

२७—शौनक शाखा

व्याकरण महाभाष्य में ऋग्वेद की कुल इक्कीस शाखाएं कही गई हैं। परन्तु हमारी पूर्व लिखित गणना के अनुसार शाखा-संख्या २७ है। अतः इन में से छःशाखाएं किन्हीं दूसरे नामों के अन्तर्गत आनी चाहिएं। पहले नौ नाम सुनिश्चित हैं। ११-१३नाम भी निर्णीत ही हैं। अतः शेष नामों में इन छः का अन्तर्भाव करना चाहिए। उस के लिए अभी पर्याप्त सामग्री का अभाव है। अणु भाष्य में आया हुआ स्कन्द पुराण का एक प्रमाण पृ०८०पर उद्धृत किया गया है। तदनुसार ऋग्वेद की चौबीस शाखाएं थीं। आनन्द-संहिता के दूसरे अध्याय के अनुसार भी ऋग्वेद की चौबीस शाखाएं ही थीं। यदि यह गणना किसी प्रकार ठीक हो, तो हमारी शाखा-संख्या में तीन नाम ही अधिक माने जाएंगे। और यदि जिस प्रकार हमारी संख्या में अधिकता दिखाई देती है, वैसे ही स्कन्दपुराण और आनन्दसंहिता वाला भी गणना ठीक न कर सका हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

अष्टम अध्याय

ऋग्वेद की ऋक्संख्या

शतपथब्राह्मण १०।४।२।२३॥ में लिखा है—

स ऋचो व्यौहत् । द्वादशबृहतीसहस्राण्येतावत्यो हर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ।

अर्थात्—उस प्रजापति ने ऋचाओं को गणना के भाव से पृथक् पृथक् किया । बारह सहस्र । इतनी ही ऋचाएं हैं, जो प्रजापति ने उत्पन्न कीं ।[1]

एक बृहती छन्द में ३६ अक्षर होते हैं, अतः १२०००×३६= ४३२००० अक्षर के परिमाण की सब ऋचाएं हैं ।

अनुवाकानुक्रमणी का अन्तिम वचन है—

चत्वारिंशतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि ।

अर्थात्—ऋचाएं ४३२००० अक्षर परिमाण की हैं ।

इस से पहले अनुवाकानुक्रमणी में लिखा है—

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम् ॥४३॥

अर्थात्—१०५८० ऋचा और एक पाद पारायण पाठ में हैं ।

यह पारायण एक ही शाखा का नहीं, प्रत्युत सब शाखाओं का मिला कर होगा, क्योंकि चरणव्यूह में लिखा है—

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति—

शाकलाः । बाष्कलाः आश्वलायनाः शांखायनाः । माण्डूकेयाश्चेति ।

तेषामध्ययनम्—

अध्यायाश्चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव तु ।

१—ब्रह्माण्डपु० पूर्वभाग ३५।८४॥ वायुपु० ६१।७४॥ तथा विष्णुपु० ३।६।३२॥ में वेदों को प्राजापत्य श्रुति ही कहा गया है ।

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्चैतत् पारायणमुच्यते ॥

अर्थात्—इन सब शाखाओं में ६४ अध्याय और दश ही मण्डल हैं, तथा ऋक्संख्या १०५८० और एक पाद है।

कुछ चरणव्यूहों में दो, तीन या चार श्लोक और भी मिलते हैं, परन्तु वे किसी शाखा-विशेष सम्बन्धी हैं, अतः उनका उल्लेख यहां नहीं किया गया।

ऋग्वेद की समस्त शाखाओं में कुल ऋक्संख्या १०५८० और एक पाद है, इस का संकेत लौगाक्षिस्मृति में भी मिलता है—

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिपादश्च पारायणविधौ खलु ॥
पूर्वोक्तसंख्यायाश्चेत्तु सर्वशाखोक्तसूत्रगाः ।
मन्त्राश्चैव मिलित्वैव कथनं चेति तत्पुनः ॥ पृ० ४७७ ।

अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद की शैशिरि शाखा में १०४१७ मन्त्र हैं ।[1]

ऋक्गणना में द्विपदा ऋचाएं

ऋग्वेद की ऋचा-गणना में एक और बात भी ध्यान में रखने योग्य है। ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार द्विपदा ऋचाएं अध्ययन काल में दो दो की एक एक बना कर पढ़ी जाती हैं। यथा—

द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्ति ।

इस पर षड्गुरुशिष्य लिखता है—

ऋचोऽध्ययने त्वेध्यतारो द्वे द्वे द्विपदे एकैकामृचं कृत्वा समामनन्ति समामनेयुः ।

इस का अभिप्राय लिखा जा चुका है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की गणना के अनुसार ऋग्वेद में कुल मन्त्र १०५८९ हैं । परन्तु प्रति मण्डल के मन्त्रों को मिला कर उनकी संख्या निम्नलिखित है—

१—यह संख्या वर्ग-क्रम के अनुसार है। देखो अनु० श्लोक ४०-४२ ।

१९७६+४२९+६१७+५८९+७२७+७६५+८४१+१७२६+१०९७+१७५४=१०५२१।

इस संख्या पर अध्यापक आर्थर मैकडानल का कहना है कि इस संख्या में आठवें मण्डल के अन्तर्गत २०वें सूक्त में २६ के स्थान में ३६ ऋचा लिखी गई हैं। अर्थात् लेखक-प्रमाद से १० की गणना अधिक हो गई है।[1] इसी प्रकार नवम मण्डल में ११०८ के स्थान में लेखक-प्रमाद से १०९७ गणना लिख दी गई है। अर्थात् ११ ऋचा का एक सूक्त गिना नहीं गया। इस प्रकार भेद केवल एक मन्त्र का रह जाता है, और कुल मन्त्र १०५२२ बनते हैं। इन में आठवें मण्डल के ११ सूक्तों में आए हुए ८० वालखिल्य मन्त्र भी सम्मिलित हैं। ये ऋग्वेद का अङ्ग हैं। हां, कई शाखाओं में ये नहीं पाए जाते। स्वामी दयानन्द सरस्वती की दोनों गणनाओं का भेद भी द्विपदा ऋचाओं की गणना के भेद से उत्पन्न होता है।

द्विपदा ऋचाओं में जैसा अभी कहा गया है कई वार दो मन्त्रों को मिला कर एक मन्त्र बनता है और कई वार १½ मन्त्र का एकमन्त्र बनता है। इसी का दूसरा क्रम यह है कि अनेक वार एक ऋक् की दो ऋचा बनती हैं। इस भेद का विस्तार उपलेखसूत्र और चरणव्यूह की प्रथम काण्डिका की महिदासकृत टीका में मिलता है।

अध्यापक आ० ए० मैकडानल की गणना

ऋक्सर्वानुक्रमणी की भूमिका में अध्यापक मैकडानल का लेख है—

My total by countiug the dvipadas (127) twice would be 10569, ouly eleven less than the figure of the Anuvakanukramni.

अर्थात्—१०४४२+१२७=१०५६९ संख्या द्विपदा ऋचाओं को दुगना करके प्राप्त होती है। वे द्विपदा ऋचाएं १२७ हैं। इनके विना कुल संख्या १०४४२ है। अनुवाकानुक्रमणी की संख्या १०५८० और एक पाद है।

१—ऋक्सर्वानुक्रमणी की भूमिका पृ० १७, १८।

अध्यापक मैकडानल की भूल

इस गणना में अध्यापक मैकडानल की भी थोड़ी सी भूल है। ऋ० ५।२४॥ में दो ऋचाएं हैं। वे द्विपदा हैं, परन्तु ऋग्वेद में प्रथम के आगे १।२॥ और दूसरी के आगे ३।४॥ लिखा गया है। अर्थात् ये पहले ही द्विगुण कर दी गई हैं। अध्यापक मैकडानल ने इन्हें दोबारा द्विगुण कर के संख्या ८ कर दी है। इस पर उन की सम्मति जानने के लिए मैं ने १६ जुलाई सन् १९१९ को उन्हें एक पत्र लिखा था। उस का उत्तर ८ अगस्त सन् १९१९ को आक्सफोर्ड से आया था। उस में मेरे दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने लिखा है—

I am unable to look into the question why the two dvipadas of V. 24 are doubled in the text of the Sarvanukramni (१, २ । ३, ४ ।) unless it is intended to express that they are treated as sacrificial, and not as recited dvipadas (cp. commentary on introduction §12,10. where 1.65 is quoted). In any case it seems wrong to re-double the two dvipadas of V. 24. This would make my total 10,565. The commentator of the caranavyuha, according to a marginal note I made long ago in my edition of the Sarvanukramni gives the total 10.552 only 13 less than my total (counting the Valkhilyas); in another place in the same com. 10,566 is given as the total, counting the 140 **naimittikadvipadas**, only 1 more than my corrected total. If the 1 odd pada is here counted as 1 verse, the total would be exactly the same.

The question of the treatment of the 94 verses consisting of 3 ardharcas should be taken into consideration in calculating totals: when sacrificial, **3 ardharcas** count as **one verse**, if recited, as two verses.

अर्थात्—ऋग्वेद ५।२४॥ की द्विपदाएं सर्वानुक्रमणी में ही क्यों द्विगुण की गई हैं, इस का कारण प्रतीत नहीं होता। परन्तु इन को पुनः द्विगुण करना अशुद्ध है। अब मेरी पूरी संख्या १०५६५ होगी (और १०५६९ नहीं) इत्यादि।

चरणव्यूह का टीकाकार महिदास भी पूरी ऋक्संख्या १०५८० और एक पाद मानता है। संज्ञान सूक्त की १५ ऋचाएं भी वह इसी संख्या के अन्तर्गत मानता है। एक पाद **भद्रन्नो अपि वातय मनः** है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की १०५२१ की गणना में यदि नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं का आधा अर्थात् $\frac{१४०}{२}$=७० और इस में से ऋ० ५।२४॥ की २ कम करके (जो पहले ही द्विगुणित हैं) ६८ जोड़ी जाएं तो कुल संख्या १०५८९ हो जाती है। इन नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं के सम्बन्ध में लिखा है कि—

हवने एकैका अध्ययने द्वे द्वे। महिदासकृत चरणव्यूह टीका। ये नैमित्तिक द्विपदा ऋचाएं स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने एक एक ही गिनी हैं। अध्ययन में चाहिएं गिननी दुगनी। अतः हम ने ६८ और जोड़ी हैं। इस गणना में एक का भेद जो पहले लिख चुके हैं, रह जाता है।

इन्हीं द्विपदा ऋचाओं की गणना को न समझ कर अनेक लोगों ने वेद मन्त्रों की गणना में ही भेद समझ लिया है। उदाहरणार्थ स्वामी हरिप्रसाद का लेख वेदसर्वस्व पृ० ६७ पर देखिए—

"चरणव्यूह के टीकाकार महिदास ने ऋग्वेद मन्त्रों की संख्या दस हजार चार सौ बहत्तर १०४७२ लिखी है। परन्तु यह नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं सहित है जिनकी संख्या १४० होती है। यदि वह निकाल दी जाये तो शेष संख्या दस हजार तीन सौ बत्तीस १०३३२ रह जाती है।"

इस लेख से प्रतीत होता है कि स्वामी हरिप्रसाद ने महिदास का गणना-प्रकार नहीं समझा। नैमित्तिक द्विपदा ऋचाएं १४० हैं। अतः वे ७० मन्त्र बने। १४० कम करना भूल है। ७० कम करके कुल संख्या १०४०२ हो जाती है। यह संख्या शैशिरि शाखा की है।

पुराणों की ऋक्संख्या

ब्रह्माण्ड और वायु पुराण में एक और ऋक्संख्या है। उस का संशोधित पाठ नीचे दिया जाता है—

सहस्राणि ऋचां चाष्टौ षट्शतानि तथैव च।
एताः पञ्चदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा॥

सवालखिल्याः सप्रैषाः ससुपर्णाः प्रकीर्तिताः ।

इस संख्या के लिखे जाने का अभिप्राय हम नहीं समझ सके। सम्भव हो सकता है कि इस गणना में दो या तीन स्थानों पर आया हुआ एक ही मन्त्र एक वार ही गिना गया हो। इस गणना के अनुसार ऋक्संख्या ८६३५ है।

शतपथ की गणना और लौगाक्षि-स्मृति

शतपथ की पूर्वोक्त गणना का अभिप्राय समस्त शाखाओं की ऋक्गणना से है। इस सम्बन्ध में लौगाक्षिस्मृति में कहा है—

ऋचो यजूंषि सामानि पृथक्त्वेन च संख्यया ।
सहस्राणि द्वादश स्युः सर्वशाखास्थितान्यपि ।
मन्त्ररूपाणि विद्वद्भिः ज्ञेयान्येवं स्वभावतः ।[1]

अर्थात्—समस्त शाखाओं के ऋक्, यजुः और साम पृथक् पृथक् वारह वारह सहस्र हैं।

माण्डूकेय आदि कई शाखाओं में याजुष शाखाओं से ऋचाएं ली गई हैं

पुराणों के मतानुसार पहले एक ही यजुर्वेद था। उसी से ऋचाएं लेकर ऋग्वेद पृथक् किया गया। हम लिख चुके हैं कि आर्ष प्रमाणों के अनुसार वेद पहले से ही चार थे। अतः पुराणों का यह मत तो सत्य नहीं, परन्तु दीर्घ अध्ययन से हमारी ऐसी सम्भावना हो रही है कि माण्डूकेय चरण की अधिक ऋचाएं सम्भवतः याजुष शाखाओं से ही ली गई होंगी। इस पर विचार-विशेष पुनः करेंगे।

क्या ऋग्वेद में से ५००, ४९९ मन्त्र लुप्त हो गए हैं

बृहद्देवता ३।१३०॥ और ऋक् सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद १।९९॥ पर लिखा है कि कई पुराने आचार्यों का मत है कि ऋ० १।९९॥ से आरम्भ होकर एक सहस्र सूक्त थे। उन का देवता जातवेद और ऋषि कश्यप था। शाकपूणि मानता था कि प्रथम सूक्त में एक मन्त्र था, और प्रत्येक अगले सूक्त में एक एक मन्त्र बढ़ता जाता था। सर्वानुक्रमणी का वृत्तिकार षड्गुरु-

१—दयानन्द कालेज का हस्तलेख, देवनागरी प्रतिलिपि, पृ० ४७१।

शिष्य इस विषय में शौनक की आर्षानुक्रमणी का निम्नलिखित पाठ उद्धृत करता है—

खिलसूक्तानि चैतानि त्वाद्यैकर्चमधीमहे ।
शौनकेन स्वयं चोक्तमृष्यनुक्रमणे त्विदम् ॥
पूर्वात्पूर्वा सहस्रस्य सूक्तानामेकभूयसाम् ।
जातवेदस इत्याद्यं कश्यपार्षस्य शुश्रुम ॥ इति
सयोवृषीयान्ता वेदमध्यास्त्वखिलसूक्तगाः ।
ऋचस्तु पञ्चलक्षाः स्युः सैकोनशतपञ्चकम् ॥

अर्थात्—इन ९९९ सूक्तों में ५००, ४९९ मन्त्र थे ।

अत्र प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या ये मन्त्र कभी ऋग्वेद का अङ्ग थे । माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य उत्तर देता है कि नहीं, ऐसा नहीं था । वहां लिखा है—

द्वादशबृहतीसहस्राणि । एतावत्यो हर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ।

अर्थात्—प्रजापति-सृष्ट ऋचाएं बारह सहस्र बृहती छन्द के परिमाण की हैं ।

यदि नित्य वेद में इतनी ही ऋचाएं हैं, तो ये ५००, ४९९ मंत्र नित्य वेद का अंग नहीं थे । ये वैसे ही मन्त्र होंगे, जैसे कि अनेक उपनिषदों में अब भी मिलते हैं । उन औपनिषद् मन्त्रों को कोई विद्वान् वेद का अङ्ग नहीं मानता । इसी प्रकार सूत्र ग्रन्थों में भी अनेक ऐसे मंत्र हैं, कि जो कभी भी वेद का अङ्ग नहीं हो सकते । इस बात की विशेष खोज के लिए इन सहस्र सूक्तों के सम्बन्ध में प्राचीन सम्प्रदाय का अधिक अन्वेषण करना चाहिए।

दाशतयी

ऋग्वेद की प्रत्येक शाखा में दस ही मण्डल थे, अतः जब सब शाखाओं का वर्णन करना होता है, तो दाशतयी शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार यह भी प्रतीत होता है कि प्रत्येक आर्च शाखा में ६४ अध्याय ही थे । अनुवाकानुक्रमणी और चरणव्यूहों में लिखा है—

अध्यायाश्चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव तु ।

अर्थात्—६४ अध्याय और १० ही मण्डल हैं ।

इसी भाव से कुमारिल अपने तन्त्रवार्तिक में लिखता है—

प्रपाठकचतुःषष्टिर्नियतस्वरकैः पदैः ।
लोकेष्वप्यश्रुतप्रायैरृग्वेदं कः करिष्यति ।[1]

पुरुष सूक्त

वेदों और उनकी शाखाओं में पुरुष सूक्त की ऋक्-गणना कैसी है, इस विषय में अहिर्बुध्न्य संहिता अध्याय ५९ में कहा है—

नानाभेदप्रपाठं तत्पौरुषं सूक्तमुच्यते ।
ऋचश्चतस्रः केचित्तु पञ्च षट् सप्त चापरे ॥३॥
ऋचः षोडश चाप्यन्ये तथाष्टादश चापरे ।
अधीयते तु पुंसूक्तं प्रतिशाखं तु भेदतः ॥४॥

इन्हीं श्लोकों की व्याख्या अन्यत्र मिलती है—

एतद्वै पौरुषं सूक्तं यजुष्यष्टादशर्चकम् ।
वह्वृचे षोडशर्चं स्यात् छान्दोग्ये पञ्च सामनि ॥
चतस्रो जैमिनीयानां सप्त वाजसनेयिनाम् ।
आथर्वणानां षड्ऋचमेवं सूक्तविदो विदुः ॥[2]

अर्थात्—पुरुष सूक्त (कृष्ण) यजुः में १८ ऋचा का, ऋग्वेद में १६ ऋचा का, किसी वाजसनेय शाखा में ७ ऋचा का, अथर्व में ६ ऋचा का, साम में ५ ऋचा का और साम की जैमिनीय शाखा में ४ ऋचा का है ।

लुप्त शाखाओं की कुछ ऋचाएं

ऋग्, यजुः, सामाथर्व की लुप्त शाखाओं की कुछ ऋचाएं मारीस ब्लूमफील्ड के वैदिक कानकार्डेन्स में मिलती हैं । तथापि कई ऐसी ऋचाएं हैं जो उस में नहीं मिलतीं, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत मिलती हैं ।

१—चौखम्बा संस्करण पृ० १७२ ।

२—मद्रास राजकीय संग्रह के संस्कृत हस्तलेखों का सूचीपत्र, भाग २, सन् १९०४, वैदिक वाङ्मय पृ० २३४ ।

सम्भव है ये ब्राह्मणान्तर्गत मन्त्र हों, या लुप्त शाखाओं के मन्त्र हों, अतः उन्हें यहां लिखा जाता है।

भर्तृहरि वाक्यपदीय १।१२१॥ की व्याख्या में लिखता है—

ऋग्वर्णः खल्वपि—

१—इन्द्राच्छन्दः प्रथमं प्रास्यदन्नं तस्मादिमे नामरूपे विषूची।
नाम प्राणाच्छन्दसो रूपमुत्पन्नमेकं छन्दो बहुधा चाकशीति॥

तथा पुनराह—

२—वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वममृतं यच्च मर्त्यम्।
अथेद्वाग्बुभुजे वागुवाच पुरुत्रा वाचो न परं यच्चनाह॥

पिङ्गल छन्दः सूत्र ३।१८॥ की टीका में यादवप्रकाश लिखता है—

३—इन्द्रः शचीपतिर्बलेन व्रीडितः।
दुश्च्यवनो वृषा समत्सुसासहिः॥

यही मन्त्र ऋक्प्रातिशाख्य १६।१४॥ के उवट भाष्य में चतुष्पदा गायत्री के उदाहरण में मिलता है। पिङ्गल छन्दः सूत्र ३।१२॥ की टीका में नागी गायत्री के उदाहरण में यादवप्रकाश लिखता है—

४—ययोरिदं विश्वमेजति ता विद्वांसा हवामहे वाम्।
वीतं सोम्यं मधु॥

वहीं ३।१५॥ की टीका में प्रतिष्ठा गायत्री के उदाहरण में यादवप्रकाश लिखता है—

५—देवस्त्वा सविता मधु पाङ्क्तां विश्वचर्षणीः।
स्फीत्येव नश्वरः॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय तीन में लिखा है—

स एवमुक्तः उपाध्यायेन स्तोतुं प्रचक्रमे देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः॥५९॥

इस से आगे दश वचन हैं, जो ऋक् समान हैं। वेद पढ़ने वालों को इन पर विचार करना चाहिए। महाभारत के इसी अध्याय में १५०-१५३ श्लोक तक मन्त्रवादश्लोक हैं। वे तो स्पष्ट ही साधारण श्लोक हैं।

वैदिक ग्रन्थों में आई हुई और मुद्रित शाखाओं में अनुपलब्ध ऋचाएं हम ने यहां नहीं लिखीं। यह स्मरण रखना चाहिए कि ऋग्वेद के खिलों में आई हुई कई ऋचाएं सर्वथा कल्पित हैं। वे कभी भी किसी शाखा में नहीं होंगी।

ऋग्वेद और उस की शाखाओं का यह अति संक्षिप्त वर्णन हो गया। अब यजुर्वेद और उस की शाखाओं के विषय में लिखा जाएगा।

———

नवम अध्याय

यजुर्वेद की शाखाएं

शुक्ल और कृष्ण शाखाएं

यद्यपि भगवान् व्यास ने वैशम्पायन को कृष्ण यजुर्वेद ही पढ़ाया था, तथापि प्राचीन सम्प्रदाय में शुक्ल यजुः की अत्यन्त प्रतिष्ठा रही है। गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग १। २९॥ में लिखा है—

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते।

अर्थात्—यजुर्वेद के पाठ का आरम्भ शुक्ल यजुः के प्रथम मन्त्र से होता है।

कृष्ण यजुर्वेद में वायव स्थ के आगे उपायव स्थ पाठ होता है। अतः उस पाठ का यहां अभाव है। इस से प्रतीत होता है कि ब्राह्मण-प्रवक्ता को यहां शुक्ल यजुः का ही प्रथम मन्त्र अभिमत था। वह इसी को यजुर्वेद मानता था। इसी प्रकार वायुपुराण अध्याय २६ में कहा गया है—

ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम्।
प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ॥१९॥
इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थ देवो वः सविता पुनः।
ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रस्तु यजुः स्मृतः ॥२०॥

अर्थात्—शुक्ल यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र ही यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र है।

शुक्ल यजुः नाम की प्राचीनता

शुक्ल यजुः नाम बहुत प्राचीन है। माध्यन्दिन शतपथ का अन्तिम वचन है—

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूꣳषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।

अर्थात्—आदित्य सम्बन्धी ये शुक्ल यजुः वाजसनेय याज्ञवल्क्य के नाम से पुकारे जाते हैं।

कृष्ण यजुः नाम कितना पुराना है

प्रतिज्ञासूत्र की प्रथम कण्डिका के भाष्य में अनन्त और चरण-व्यूह की दूसरी कण्डिका के भाष्यान्त में महिदास यजुः के साथ कृष्ण शब्द का प्रयोग करते हैं। इन से पहले होने वाला आचार्य सायण शुक्लयजुः काण्व-संहिता-भाष्य की भूमिका में दो स्थानों पर कृष्ण यजुः शब्द का प्रयोग करता है। मुक्तिकोपनिषद् सायण से कुछ पहले की होगी। परन्तु इस सम्बन्ध में हम निश्चय से कुछ नहीं कह सकते। सम्भव है यह उस से भी नवीन हो। उस में १।२।३॥ पर कृष्णयजुर्वेद पद मिलता है। इन के अतिरिक्त एक और प्रमाण अनन्त ने प्रतिज्ञासूत्र-भाष्य में दिया है। वह किस ग्रन्थ का है, यह हम नहीं कह सकते। वह प्रमाण नीचे दिया जाता है—

शुक्लं कृष्णमिति द्वेधा यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनं ज्ञेयं कृष्णं तु तैत्तिरीयकम्॥

तत्र हेतु:—

बुद्धिमालिन्यहेतुत्वात्तद्यजुः कृष्णमीर्यते।
व्यवस्थितप्रकरणं तद्यजुः शुक्लमीर्यते॥

इत्यादि स्मृतेश्च।

मन्त्रभ्रान्तिहर नाम का एक पुस्तक है। उसे ही सूत्रमन्त्रप्रकाशिका भी कहते हैं। वह किसी किसी चरणव्यूह में भी उल्लिखित है। उस में लिखा है—

यजुर्वेदः कल्पतरुः शुक्लकृष्ण इति द्विधा।
सत्वप्रधानाच्छुक्लाख्यो यातयामविवर्जितात्॥६१॥
कृष्णस्य यजुषः शाखाः षडशीतिरुदाहृताः॥६४॥

अर्थात्—यजुर्वेद कृष्ण शुक्ल भेद से दो प्रकार का है।

यह पुस्तक है तो कुछ प्राचीन, परन्तु निश्चय से इस के विषय में भी अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता।

अतः निश्चितरूप से तो इतना ही कहा जा सकता है कि इस शब्द का प्रयोग सायण से पूर्व के ग्रन्थों में अभी खोजना चाहिए।

याजुष शाखाएं

पतञ्जलि मुनि अपने व्याकरण महाभाष्य के पस्पशान्हिक में लिखता है —

एकशतमध्वर्युशाखाः ।

अर्थात्—यजुर्वेद की एक सौ एक शाखा हैं ।

प्रपञ्चहृदय के द्वितीय अर्थात् वेद प्रकरण में लिखा है—

यजुर्वेद एकोत्तरशतधा ।.........। यजुर्वेदस्य—

माध्यन्दिन–कण्व–तित्तिरि–हिरण्यकेश–आपस्तम्ब-सत्याषाढ-वौधायन–याज्ञवल्क्य –भद्रञ्जय-बृहदुक्थ–पाराशर–वामदेव–जातुकर्ण-तुरुष्क–सोमशुष्म–तृणविन्दु–वाजिञ्जय–श्रवस —वर्षवरूथ—सनद्वाज-वाजिरत्न—हर्यश्व—ऋणञ्जय—तृणञ्जय—कृतञ्जय—धनञ्जय—सत्यञ्जय-सहञ्जय–मिश्रञ्जय–त्र्यरुण—त्रिवृष —त्रिधामश्विञ्ज—फलिंगु—उखा-आत्रेयशाखाः ।[1]

अर्थात्—यजुर्वेद की ये ३६ शाखाएं प्रपञ्चहृदय के लेखक को उपलब्ध या ज्ञात थीं । इन में से अनेक नाम शाखाकार ऋषियों के प्रतीत नहीं होते ।

दिव्यावदान नामक वौद्धग्रन्थ में लिखा है—

एकविंशति अध्वर्यवः ।........अध्वर्यूणां मते ब्राह्मणाः सर्वे ते ऽध्वर्यवो भूत्वा एकविंशतिधा भिन्नाः । तद्यथा—कठाः । काण्वाः । वाजसनेयिनः । जातुकर्णाः । प्रोष्ठपदा ऋषयः । तत्र दश कठा दश काण्वा एकादश वाजसनेयिनः त्रयोदशजातुकर्णाः षोडश प्रोष्ठपदाः पञ्चचत्वरिंशद् ऋषयः ।

यह पाठ हम ने थोड़ा सा शोध कर लिखा है। परन्तु एकविंशति के स्थान में यहां कभी एकशतं पाठ होगा । दिव्यावदान की गणना के

१—वोधायनगृह्य ३।१०।५॥ में भी प्रायः ये नाम मिलते हैं। आपस्तम्बगृह्य के भी कुछ हस्तलेखों में एक उपाकर्म का प्रकरण मिलता है । वहां भी ये नाम मिलते हैं। देखो, पं०चिन्न स्वामी सम्पादित हरदत्त वृत्ति-सहित आपस्तम्बगृह्य, पृ० १५८ ।

अनुसार १० कठ, १० काण्व, ११ वाजसनेय, १३ जातूकर्ण और १६ प्रोष्ठपद हैं। इस प्रकार कुल ६० शाखाकार हुए। इन के साथ वह ४५ ऋषि और जोड़ता है । यदि पूर्वोक्त पाठ का यही अर्थ समझा जाए, तो इस बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार यजुर्वेद की कुल १०५ शाखाएं होंगी । याजुष शाखाओं का यह विभाग बड़ा विचित्र है और अन्यत्र पाया नहीं जाता ।

याजुष-शाखा सम्बन्धी दो चित्र

याजुष शाखाओं का वर्णन करने वाले दो चित्र गत चौदह वर्ष के अन्वेषण में हमें मिले हैं। पहला चित्र नासिकक्षेत्रान्तर्गत पञ्चवटी-वासी श्री यज्ञेश्वरदाजी मैत्रायणीय के घर से प्राप्त हुआ था । यह उन के चित्र की प्रतिलिपि है । दूसरा चित्र नासिकक्षेत्रवास्तव्य श्री अण्णाशास्त्री वारे के पुत्र पण्डित श्रीधर शास्त्री ने अपने हाथ से हमारे लिए नकल किया था । प्रथम चित्रानुसार याजुष शाखाओं का वर्णन आगे किया जाता है ।

[प्रथम विभाग]

वाजिमाध्यन्दिनी-शुक्लयजुः-मुख्य-सप्तदशभेदाः

१—जाबालाः	नार्मदाः	नर्मदाविंध्ययोर्मध्यदेशे
२—बौधेयाः	रणावटनामकाः	खांदेशे गोदामूलप्रदेशे
३—कण्वाः	कर्णवटाः	गोमतीपश्चिमप्रदेशे
४—माध्यञ्जनाः		शरयूतीरनिवासिनः
५—शापीयाः	नागराः	अमरकण्टकनर्मदामूलवासिनः
६—स्थापायनीयाः	नारदेवाः	नर्मदोत्तरदेशे
७—कापाराः	भृगौडाः	मालवदेशे
८—पौंड्रवत्साः	त्रिवाडनामकाः	मालवदेशे
९—आवटिकाः	श्रीमखाः	मालवदेशे
१०—परमावटिकाः	आद्यगौडाः	गौडदेशे
११—पाराशर्याः	गौडगुर्जराः	मरुदेशे
१२—वैधेयाः	श्रीगौडाः	गौडदेशे
१३—वैनेयाः	कंकराः	वौध्यपर्वते
१४—औधेयाः	औधेयाः	गुरथी गुर्जरदेशे

१५—गालवाः	गालवी	सौराष्ट्रदेशे
१६—वैजवाः	वैजवाड	नारायणसरोवरे
१७—कात्यायनाः		नर्मदासरोवरे

[प्रथम विभागान्तर्गत सं० १ वाले जाबालों के २६ भेद]

१—उत्कलाः		उत्कील गौडदेशे
२—मैथिलाः		विदेहदेशे
३—शवर्याः	मिश्र	ब्रह्मवर्तदेशे
४—कौशीलाः		वाल्हीकदेशे
५—तंतिलाः		सौराष्ट्रदेशे
६—वर्हिशीलाः		वाहक काश्मीरदेशे
७—खेटवाः		खैवटद्वीपवासदेशे
८—डोंभिल		हिमवद्दक्षिणदेशे
९—गोभिल	डभिलाः	गंडकीतीरदेशे
१०—गौरवाः	ग्रामणी	मद्रदेशे
११—सौभराः		कौशिकदेशे
१२—जृंभकाः		आर्यावर्तदेशे
१३—पौंड्रकाः	मिश्रोः	कवसलदेशे
१४—हरितः		सरस्वतीतीरगाः
१५—शौंडकाः		हिमवद्देशे
१६—रोहिणः	मिश्र	गुर्जरदेशे
१७—माभराः	माभीर	काश्मीरदेशे
१८—लैंगवाः		कलिंगदेशे
१९—मांडवाः	मांडवी	गौडदेशे
२०—भारवाः		मरुद्देशे
२१—चौभगाः	चोभे	मथुरादेशे
२२—टौनकाः		नेपालदेशे
२३—हिरण्यशृङ्गाः		मागधदेशे
२४—कारुण्वेयाः	करुणिकाः	मागधदेशे

२५—धूम्राक्षाः		हिमवद्देशे
२६—कापिलाः		आर्यावर्तदेशे

[प्रथम-विभागान्तर्गत सं० १५ वाले गालवों के २४ भेद]

१—काणाः	कनवजाः	गौडदेशे
२—कुब्जाः	कुलकाः	मागधदेशे
३—सारस्वताः		सरस्वतीतीरे
४—अंगजाः		अंगदेशे
५—वंगजाः		वंगदेशे
६—भृंगजाः	भृंगाः	भृंगदेशे
७—यावनाः	योवन	संगरदेशे
८—शैवजाः	शैवज	मरुद्देशे
९—पालीभद्राः	पारीभद्र	सिंकलदेशे
१०—नैलवाः	नैलव	कूर्मदेशे
११—वैतानलाः		नेपालदेशे
१२—जनिश्रवाः	जनीश्रव	मत्स्यदेशे
१३—भद्रकाः	भद्रकार	बौध्यपर्वतदेशे
१४—सौभराः		बौध्यपर्वतदेशे
१५—कुथीश्रवाः	कुथिवश्रव	हिमवद्देशे
१६—बौध्यकाः	वोधक	बौध्यपर्वतदेशे
१७—पांचालजाः		पांचालदेशे
१८—उर्ध्वांगजाः		काश्मीरदेशे
१९—कुशेन्द्रवाः		कूर्मदेशे
२०—पुष्करणीयाः		मारवाडदेशे
२१—जयत्रवाराः		मरुद्देशे
२२—उर्ध्वरेतसः	जयंत्रव	मरुदेशे
२३—कथसाः	काथस	गोदादक्षिणभागे
२४—पालाशनीयाः	पलसी	गोदादक्षिणदेशे

[द्वितीय-विभाग]

वाजसनेय-याज्ञवल्क्य-कृण्वादिपंचदश-शुक्लयाजुषाः।

१—कण्वाः		कृष्णाउनदेशे
२—कठाः		गोदादक्षिणे
३—पिञ्जुल्कठा	पिञ्जुलककठाः	क्रौंचद्वीपे
४—जृम्भककठाः	जृम्भककठ	श्वेतद्वीपे
५—औदलकठाः		शाकद्वीपे
६—सपिछलकठाः		शाकद्वीपे
७—मुद्गलकठाः		काश्मीरदेशे
८—शृगलकठाः		सृजयदेशे
९—सौभरकठाः		सिंहलदेशे
१०—मौरसकठाः		कुशद्वीपे
११—चञ्चुकठाः	चण्चुलकठ	यवनदेशे
१२—योगकठाः		यवनदेशे
१३—हसलककठाः		यवनदेशे
१४—दौसलकठाः		सिगलकठ
१५—घोघकठाः		क्रौंचद्वीपे

[तृतीय-विभाग]

कृष्णयजुः तैत्तिरीयाः ८

१—तैत्तिरीयाः	निरंगुल	गोदादक्षिणदेशे
२—औख्या	आईज	आन्ध्रदेशे [प्रथम-वर्ग]

[द्वितीय-वर्ग]

३—कांडिकेयाः	तीरगुल	दक्षिणदेशे प्रसिद्धाः
४—आपस्तम्वी		आन्ध्रदेशे
५—वौधायनीयाः		शेषदेशे
६—सात्याषाढी		देवरुख कृष्णातीरे
७—हिरण्यकेशी		परशुरामसन्निधौ
८—श्रौधेयी		माल्यपर्वतदेश

[चतुर्थ-विभाग]
चरकों के १२ भेद

१—चरकाः		पश्चिमदेशे
२—आह्वरकाः		नारायणसरोवरे
३—कठाः		करघ्नयवनदेशे
४—प्राच्यकठाः		प्राची कटघ्नयवनदेशे
५—कपिष्ठलकठाः		कपिलकठघ्नयचनदेशे
६—चारायणीयाः		यवनदेशे
७—वार्तलवेयाः	वार्तलव	श्वेतद्वीपदेश
८—श्वेताः	श्वेतरी	श्वेतद्वीपे
९—श्वेततराः	श्वेततरानी	श्वेतद्वीपे
१०—औपमन्यवाः		क्रौंचद्वीपे
११—पातांडनीयाः		पातांडीन्यवीमरुते काश्वपुराणदेशे
१२—मैत्रायणीयाः		गोदादक्षिणदेशे

[चतुर्थ विभागान्तर्गत सं० १२ वाले मैत्रायणियों के ७ भेद]

१—मानवाः		सौराष्ट्रदेशे
२—दुन्दुभाः	दुन्दुभि	काश्मीरदेशे
३—ऐकेयाः		सौराष्ट्रदेशे
४—वाराहाः		मरुद्देशे
५—हारिद्रवेयाः	हरिद्रव	गुर्जरदेशे
६—शामाः	शामल	गौडदेशे
७—शामायनीयाः		गोदावरीतीरे

इन नामों में आकार या विसर्ग के अतिरिक्त हम ने कुछ जोड़ा या बदला नहीं। इन में से अधिकांश नाम शाखाकारों के नहीं हैं, प्रत्युत भिन्न भिन्न ब्राह्मण कुलों के हैं।

अथर्वणों के ४९वें अर्थात् चरणव्यूह परिशिष्ट में लिखा है—

तत्र यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतिर्भेदा भवन्ति। यद्यथा—

काण्वाः । माध्यन्दिनाः। जावालाः । शापेयाः । श्वेताः । श्वेततराः । ताम्रायणीयाः । पौर्णवत्साः । आवटिकाः । परमावटिकाः । हौष्याः । धौष्याः [औख्याः] । खाडिकाः [खांडिकाः] । आह्वरकाः । चरकाः । मैत्राः । मैत्रायणीयाः । हारिकर्णाः । शालायनीयाः । मर्चकठाः । प्राच्यकठाः । कपिष्ठलकठाः । उपलाः। तैत्तिरीयाश्चेति ॥ २ ॥

इन में से पहले दश शुक्ल यजुः और अगले चौदह कृष्ण यजुः हैं । आथर्वण परिशिष्टों के मुद्रित-पाठ वहुत भ्रष्ट हैं । हम ने केवल दो पाठ कोष्ठों में कुछ शुद्ध कर दिए हैं ।

अब आगे याज्ञवल्क्य और उस के प्रवचन किए हुए शुक्ल-यजुओं का वर्णन होगा ।

वाजसनेय याज्ञवल्क्य

जन्मदेश

महाभारत काल में भारत के पश्चिम में, सौराष्ट्र नाम का एक विस्तीर्ण प्रान्त था । उस का एक भाग आनर्त कहाता था । आनर्त की राजधानी थी चमत्कारपुर । आनर्त देश का एक और प्रधान पुर नगर नाम से विख्यात था । नागर ब्राह्मणों का वही उद्गम-स्थान है । स्कन्द पुराण, नागर खण्ड १७४।५५॥ के अनुसार चमत्कारपुर के समीप ही कहीं याज्ञवल्क्य का आश्रम था । योगियाज्ञवल्क्य पूर्व खण्ड १।१॥[1] तथा याज्ञवल्क्य स्मृति १।२॥ में याज्ञवल्क्य को मिथिलास्थ अर्थात् मिथिला में ठहरा हुआ कहा गया है । सम्भव है, कि जनक के साथ प्रीति होने के कारण मिथिला भी याज्ञवल्क्य का एक निवासस्थान हो ।

कुल, गोत्र और पिता के अनेक नाम

वायु पुराण ६१।२१॥ ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग ३५।२४॥ तथा विष्णु पुराण ३।५।३॥ के अनुसार याज्ञवल्क्य के पिता का नाम ब्रह्मरात था । वायु पुराण ६०।४१॥ के अनुसार उस का नाम ब्रह्मवाह था । श्रीमद्भागवत १२।६।६४॥ के अनुसार उस के पिता का नाम देवरात था । एक देवरात था शुनःशेप । यह शुनःशेप एक विश्वामित्र का

१—यह ग्रन्थ अभी अमुद्रित ही पड़ा है ।

पुत्र बन गया था। वायु पुराण ९१।९३॥ के अनुसार इस विश्वामित्र का निज नाम विश्वरथ था। विश्वामित्र के कुल वाले कौशिक कहाते हैं। वायु पुराण ९१।९८॥ तथा ब्रह्माण्ड पुराण मध्यम भाग ६६।७०॥ के अनुसार याज्ञवल्क्य भी विश्वामित्र कुल में से ही था।[1] महाभारत अनुशासन पर्व ७।५१॥ में भी यही बात कही गई है। और याज्ञवल्क्य को विख्यात विशेषण से स्मरण कर के इस की दिगन्त कीर्ति का परिचय कराया है। अतः सम्भव है कि याज्ञवल्क्य देवरात का ही पुत्र हो। ऐसा भी हो सकता है कि देवरात का कोई पुत्र ब्रह्मरात हो और याज्ञवल्क्य इस ब्रह्मरात का पुत्र हो, अथवा देवरात एक ब्रह्मा हो, और इस कारण से उसे ब्रह्मरात भी कहते हों। आगे याज्ञवल्क्य के वर्णन के अन्त में महाभारत शान्ति पर्व ३१५।४॥ का एक प्रमाण दिया जायगा, उस से तो यही निश्चित होता है कि याज्ञवल्क्य के पिता का नाम देवरात था।

आठवीं शताब्दी विक्रम के समीप का होने वाला याज्ञवल्क्य स्मृति का टीकाकार आचार्य विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका में लिखता है—

यज्ञवल्क्यो ब्रह्मा इति पौराणिकाः। तदपत्यं याज्ञवल्क्यः।१।१॥

अर्थात्—पौराणिकों के अनुसार यज्ञवल्क्य[2] नाम ब्रह्मा का है। उसी का पुत्र याज्ञवल्क्य है। वायु पुराण ६०।४२॥ लिखा है—

ब्रह्मणोऽङ्गात्समुत्पन्नः।

अर्थात्—याज्ञवल्क्य ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुआ था।

ब्रह्माण्ड पुराण के इसी प्रकरण में लिखा है—

अथान्यस्तत्र वै विद्वान् ब्रह्मणस्तु सुतः कविः। ३४।४४॥

अर्थात्—याज्ञवल्क्य ब्रह्मा का पुत्र था।

अन्य सम्बन्धी

जनमेजय को तक्षशिला में महाभारत की समग्र कथा का सुनाने वाला, भगवान् व्यास का एक प्रिय शिष्य, सुप्रसिद्ध चरकाचार्य वैशंपायन

१—तुलना करो, मत्स्य पुराण १९८।४॥

२—पाणिनीय गण ४।१।१०५॥ में यज्ञवल्क नाम पढ़ा गया है।

इसी प्रतापी ब्राह्मण याज्ञवल्क्य का मामा था । महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२३ में लिखा है—

कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम् ।
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः ॥१७॥

अर्थात्—समग्र शतपथ को मैं ने किया । और सौ शिष्यों ने मुझ से इस का अध्ययन किया । यह बात मेरे मामा (वैशंपायन) और उस के शिष्यों के लिए बुरी थी ।

मामा वैशंपायन कृष्ण या चरक यजुओं के प्रवचन-कर्ता थे, अतः शुक्ल यजुओं का प्रचार उन्हें रुचिकर न था ।

याज्ञवल्क्य के पुत्र पौत्र के विषय में स्कन्द पुराण, नागर खण्ड अध्याय १३० में लिखा है—

एवं सिद्धिं समापन्नो याज्ञवल्क्यो द्विजोत्तमः ।
कृत्वोपनिषदं चारु वेदार्थैः सकलैर्युतम् ॥७०॥
जनकाय नरेन्द्राय व्याख्याय च ततः परम् ।
कात्यायनं सुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम् ॥७१॥

पुनः आगे अध्याय १३१ में लिखा है—

कात्यायनाभिधं च यज्ञविद्याविचक्षणम् ॥४८॥
पुत्रो वररुचिर्यस्य वभूव गुणसागरः ॥४९॥

अर्थात्—याज्ञवल्क्य का पुत्र कात्यायन और कात्यायन का पुत्र वररुचि था ।

याज्ञवल्क्य कौशिक था, यह अभी कहा जा चुका है । उस का पुत्र कात्यायन भी कौशिक होना चाहिए । वस्तुतः वात है भी ऐसी । वास्तविक प्रतिज्ञासूत्र परिशिष्ट में जो कात्यायन-प्रणीत है, लिखा है—

सोहं कौशिकपक्षः शिष्यः । खण्ड ११ ॥

अर्थात्—मैं कात्यायन कौशिक हूं ।

यज्ञसूत्र का कर्ता कात्यायन ही याज्ञवल्क्य का पुत्र था, इस का पूरा विचार आगे कल्पसूत्रों के इतिहास में किया जाएगा । यहां इतना कहना पर्याप्त है कि पुराण के इस लेख पर सहसा अविश्वास नहीं हो सकता ।

सम्भवतः दो याज्ञवल्क्य

विष्णुपुराण ४।४।। में लिखा है—

ततश्च विश्वसहो जज्ञे ।। १०६ ।। तस्माद् हिरण्यनाभः । यो महायोगीश्वराज् जैमिनेश्शिष्याद् याज्ञवल्क्याद् योगमवाप ।। १०७ ।।

अर्थात्—इक्ष्वाकु कुल में श्री राम के बहुत पश्चात् एक राजा विश्वसह उत्पन्न हुआ । उस से हिरण्यनाभ उत्पन्न हुआ । उस ने जैमिनि के शिष्य महायोगीश्वर याज्ञवल्क्य से योग सीखा ।

श्रीमद्भागवत ९।१२।३,४।। में भी ऐसी ही वार्ता का उल्लेख है ।

विष्णु पुराण के अनुसार इस हिरण्यनाभ के पश्चात् बारहवीं पीढ़ी में बृहद्बल नाम का एक कोसल-राजा हुआ । वह अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु से भारत-युद्ध में मारा गया ।

स्मरण रहे कि यहां पर विष्णुपुराण प्राधान्येन मयेरिताः कह कर केवल प्रधान-प्रधान राजाओं का ही उल्लेख कर रहा है ।

हस्तिनापुर के बसाने वाले महाराज हस्ती के द्वितीय पुत्र द्विजमीढ के पश्चात् आठवां राजा कृत था । उस के विषय में विष्णु पुराण ४।१९।। में लिखा है—

कृतः पुत्रो ऽभूत्।।५०।। यं हिरण्यनाभो योगमध्यापयामास।।५१।। यश्चतुर्विंशतिः प्राच्यसामगानां संहिताश्चकार ।। ५२ ।।

अर्थात्—कृत ने हिरण्यनाभ से योग सीखा । यही हिरण्यनाभ प्राच्य सामगों की २४ संहिताओं का प्रवचनकार है ।

वायुपुराण ९९।१९०।। में इसी हिरण्यनाभ के साथ कौथुम का विशेषण जुड़ा है ।

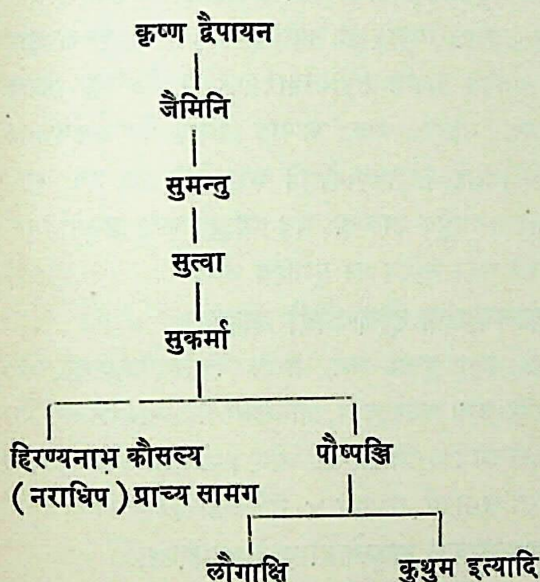
पुनः ब्रह्माण्ड पुराण मध्यम भाग अध्याय ६४ में लिखा है—

व्युषिताश्वसुतश्चापि राजा विश्वसहः किल ।।२०६।।
हिरण्यनाभः कौसल्यो वरिष्ठस्तत्सुतोभवत् ।
पौष्पंजेश्च स वै शिष्यः स्मृतः प्राच्येषु सामसु ।।२०७।।
शतानि संहितानां तु पञ्च योऽधीतवांस्ततः ।
तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ।।२०८।।

अर्थात्—याज्ञवल्क्य ने पौष्पञ्जि के शिष्य हिरण्यनाभ कौसल्य से योगविद्या सीखी।

यह मत विष्णु पुराण के मत से सर्वथा विपरीत है। प्रतीत होता है, कि इन स्थानो का पुराण-पाठ बहुत भ्रष्ट हो चुका है, अस्तु।

दूसरी ओर वायु आदि पुराणों के साम-शाखा-प्रवचन-प्रकरण में लिखा है कि सामग शाखाकारों का सम्बन्ध निम्नलिखित है—



इस परम्परा के अनुसार महाराज हिरण्यनाभ महाभारत-कालीन हो जाएगा। पहली परम्परा के अनुसार वह महाभारत-कालीन राजा वृहद्बल से कम से कम १२ पीढ़ी पहले होगा। यह एक कठिनाई है जो हल होनी चाहिए। यदि प्रथम विचार सत्य माना जाए, तो याज्ञवल्क्य सम्भवतः दो होंगे। एक वाजसनेय याज्ञवल्क्य, और दूसरा किसी प्राचीन जैमिनि का शिष्य और हिरण्यनाभ कौसल्य का गुरु याज्ञवल्क्य। परन्तु अधिक सम्भव यही है कि पुराण-पाठ भ्रष्ट हों, और हिरण्यनाभ कौसल्य ही दो हों, तथा याज्ञवल्क्य एक ही हो। अथवा वृहद्बल से पहले के बारह कोसल-राजाओं का काल बहुत थोड़ा हो। अथवा जैमिनि कई हों, और

पहले जैमिनि का गुरु कृष्णद्वैपायन व्यास न हो, प्रत्युत कोई पहला अन्य व्यास हो। स्कन्द पुराण, नागर खण्ड ५।६॥ के अनुसार एक याज्ञवल्क्य सूर्यवंशी राजा त्रिशंकु के यज्ञ में उद्गाता का काम करता था।

वाजसनेय याज्ञवल्क्य के गुरु

वाजसनेय याज्ञवल्क्य के दो निश्चित गुरुओं की इतिहास सूचना देता है। उन में से एक तो था प्रसिद्ध चरकाचार्य वैशम्पायन। पुराणों के अनुसार इस गुरु से उस का विवाद हो गया था। उस का दूसरा गुरु था उद्दालक आरुणि। शतपथ ब्राह्मण १४।९।३।१५-२०॥ से ऐसा ज्ञात होता है। स्कन्द पुराण, नागर खण्ड अध्याय १२९ में याज्ञवल्क्य सम्बन्धी एक कथानक है। यदि वह सत्य है, तो याज्ञवल्क्य का एक गुरु भार्गव अन्वयसम्भूत ब्राह्मण-शार्दूल शाकल्य था। वह शाकल्य वर्धमानपुर में रहता था और सूर्यवंशी राजा सुप्रिय का पुरोहित था।

याज्ञवल्क्य एक दीर्घ-जीवी ब्राह्मण

खाण्डव-दाह से बचा हुआ मय नामक विख्यात असुर जब महाराज युधिष्ठिर की दिव्य सभा बना चुका, तो उस के प्रवेश-उत्सव के समय अनेक ऋषि और राजगण इन्द्रप्रस्थ में आए। उन में एक याज्ञ-वल्क्य भी था। महाभारत सभापर्व अध्याय ४ में लिखा है—

तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः ॥१८॥

तत्पश्चात् महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भगवान् व्यास ऋत्विजों को लाए। उन के विषय में महाभारत सभापर्व अध्याय ३६ में लिखा है —

ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपानयत् ॥३३॥
स्वयं ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य सत्यवतीसुतः।
धनञ्जयानामृषभः सुसामा सामगोऽभवत् ॥३४॥
याज्ञवल्क्यो बभूवाथ ब्रह्मिष्ठोऽध्वर्युसत्तमः।
पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत् ॥३५॥

अर्थात्—उस राजसूय यज्ञ में द्वैपायन ब्रह्मा था, सुसामा उद्गाता, याज्ञवल्क्य अध्वर्यु और धौम्य सहित पैल होता थे।

इसी राजसूय के अन्त में जब अवभृथ स्नान हो चुका, तब याज्ञवल्क्य आदि की पूजा होने का वर्णन है। सभापर्व अध्याय ७२ में लिखा है—

याज्ञवल्क्यं च कपिलं कपालं (कालपं ?) कौशिकं तथा।
सर्वांश्च ऋत्विक् प्रवरान् पूजयामास सत्कृतान् ॥ ६ ॥

तदनन्तर सम्राट् युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ में भी ऋषि याज्ञवल्क्य उपस्थित था। महाराज युधिष्ठिर भगवान् व्यास से कहते हैं कि हे व्यास जी आप ही मुझे इस अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित करें। इस का उल्लेख महाभारत आश्वमेधिक पर्व अध्याय ७२ में है। व्यास जी बोले—

अयं पैलोऽथ कौन्तेय याज्ञवल्क्यस्तथैव च ॥३॥

अर्थात्—हे कुन्ति-पुत्र यह पैल और याज्ञवल्क्य तुम्हारा कृत्य कराएंगे।

इस के पश्चात् जब महाराज युधिष्ठिर को राज्य करते हुए ३६ वर्ष व्यतीत हो चुके[1] और उन्हों ने वृष्ण्यन्धक-कुल का नाश सुन लिया, तो उन्हों ने परिक्षित् को सिंहासन पर बिठा कर प्रस्थान का निश्चय किया। उस प्रस्थान के समय जो जन उपस्थित थे, उन के विषय में महाप्रस्थानिक पर्व प्रथमाध्याय में लिखा है—

द्वैपायनं नारदं च मार्कण्डेयं तपोधनम्।
भारद्वाजं याज्ञवल्क्यं हरिमुद्दिश्य यत्नवान् ॥१२॥

अर्थात्—व्यास, याज्ञवल्क्य आदि को युधिष्ठिर ने भोजन कराया, और उन की कीर्ति गाई।

युधिष्ठिर के पश्चात् ६० वर्ष पर्यन्त परिक्षित् का राज्य रहा। परिक्षित् के पश्चात् जनमेजय और उस के पुत्र शतानीक ने ८० वर्ष तक राज्य किया।[2] इस शतानीक ने याज्ञवल्क्य से वेद पढ़ा था। विष्णुपुराण ४।२१॥ में लिखा है—

१—षट्त्रिंशे त्वथ संप्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः ॥१॥ मौसल पर्व अ० १।

२—यह गणना सत्यार्थप्रकाश एकादशसमुल्लासान्तर्गत वंशावली के अनुसार है। परन्तु इस में थोड़ा सा संशोधन हम ने किया है।

जनमेजयस्यापि शतानीको भविष्यति ॥ ३ ॥ यो ऽसौ याज्ञवल्क्याद् वेदमधीत्य कृपादस्त्राण्यवाप्य विषमविषयविरक्तचित्तवृत्तिश्च शौनकोपदेशादात्मज्ञानप्रवीणः परं निर्वाणमवाप्स्यति ॥ ४ ॥

महाभारत के एक कोश के अनुसार महाराज युधिष्ठिर का आयु १०८ वर्ष कहा गया है।[1] यह आयु परिमाण ठीक ही प्रतीत होता है। उसी कोश के अनुसार युधिष्ठिर ने २३ वर्ष इन्द्रप्रस्थ में राज्य किया था। यह वार्ता १२ वर्ष के वनवास से पूर्व की है। अतः सभा-प्रवेश के पश्चात् युधिष्ठिर ने कम से कम २० वर्ष तक राज्य किया होगा। परन्तु हम १० वर्ष ही गिनती में लेते हैं। अतः यदि सभा के प्रवेश-उत्सव के समय याज्ञवल्क्य की आयु कम से कम ४० वर्ष की मानी जाए, तो उस की कुल आयु लगभग निम्नलिखित होगी—

४०	वर्ष	प्रवेश-उत्सव के समय
१०	,,	वनवास-पूर्व इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर-राज्य
१३	,,	वनवास और अज्ञातवास
३६	,,	युधिष्ठिर-राज्य
६०	,,	परिक्षित्-राज्य
८०	,,	जनमेजय और शतानीक का राज्य
२३९	वर्ष	

संभव है याज्ञवल्क्य इस से भी अधिक जीवित रहा हो।

याज्ञवल्क्य का संक्षिप्त जीवन

याज्ञवल्क्य के जीवन की अनेक बातें अभी लिखी जा चुकी हैं। इन के अतिरिक्त दो चार बातें और भी वर्णन योग्य हैं। याज्ञवल्क्य एक महातेजस्वी ब्राह्मण था। जब उस का अपने मामा वैशम्पायन से विवाद हो गया, तो उस ने आदित्य-सम्बन्धी शुक्ल-यजुओं का प्रवचन किया। तब उस के अनेक शिष्य हुए। उन में से पन्द्रह ने उस के प्रवचन की १५ शाखाओं का पठन-पाठन चलाया। उन्हीं पन्द्रह शाखाओं का आगे उल्लेख होगा। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थीं। एक थी ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी

१—आदिपर्व पूना संस्करण, पृ० ९१३, कालम प्रथम।

और दूसरी थी स्त्रीप्रज्ञा वाली कात्यायनी । महाराज जनक की सभा में उस ने अनेक ऋषियों से महान् संवाद किया था । जनक के साथ उसकी मैत्री थी और इसीलिए वह बहुधा मिथिला में रहा करता था। वह योगीश्वर अपितु परमयोगीश्वर था । उसने संन्यास-धर्म पर बड़ा बल दिया है और वह स्वयं भी संन्यासी हो गया था ।

याज्ञवल्क्य के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ

वाजसनेय ब्राह्मण आदि का प्रवचनकार तो निस्सन्देह याज्ञवल्क्य ही है । इन के अतिरिक्त उस के नाम से तीन और ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं । वे निम्नलिखित हैं—

१—याज्ञवल्क्य शिक्षा ।

२—याज्ञवल्क्य स्मृति ।

३—योगियाज्ञवल्क्य ।

ये तीनों ग्रन्थ वाजसनेय याज्ञवल्क्य प्रणीत हैं, अथवा उसकी शिष्य-परम्परा में किसी या किन्हीं ने पीछे से बनाए हैं, यह विचारास्पद है । हां, इतना कहा जा सकता है कि लगभग आठवीं शताब्दी विक्रम का याज्ञवल्क्य स्मृति का टीकाकार आचार्य विश्वरूप वाजसनेय याज्ञवल्क्य को ही इस स्मृति का कर्ता मानता है । यह याज्ञवल्क्य स्मृति कौटल्य अर्थ शास्त्र से बहुत पहले विद्यमान थी । और इस स्मृति के अनुसार स्मृति के कर्ता ने ही एक योगशास्त्र भी बनाया था । या० स्मृति प्रायश्चित्ताध्याय यतिधर्मप्रकरण में लिखा है—

ज्ञेयमारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान् ।
योगशास्त्रं च मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता ॥१००॥

अर्थात्—योग की इच्छा करने वाले को मेरा कहा हुआ योग-शास्त्र जानना चाहिए ।

या० स्मृति १।१॥ में उसे योगीश्वर और १।२॥ तथा ३।३२४॥ में उसे योगीन्द्र कहा गया है ।

योगियाज्ञवल्क्य ग्रन्थ के दो भाग हैं । एक है मुद्रित, और दूसरा मुद्रित रूप में हमारे देखने में नहीं आया । देवगभट्ट प्रणीत स्मृति

चन्द्रिका आदि ग्रन्थों में योगियाज्ञवल्क्य के अनेक प्रमाण मिलते हैं। इस ग्रन्थ के उत्तम संस्करण निकलने चाहिएं।

याज्ञवल्क्य शिक्षा भी दो प्रकार की है। उस के सुसंस्करणों का भी अभी तक अभाव है।

याज्ञवल्क्य और जनक

शान्तिपर्व अध्याय ३१५ से शरशय्याशायी गाङ्गेय भीष्म जी श्री महाराज युधिष्ठिर को जनक और याज्ञवल्क्य का सम्वाद सुनाना आरम्भ करते हैं—

याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशाः।
पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदांवरः ॥४॥

अर्थात्—प्रश्न पूछने वालों में श्रेष्ठ, महा-यशस्वी दैवराति मैथिल जनक ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछा।

इस महाभारत-पाठ में सम्भवतः भूल है

हम पृ० १५१ पर लिख चुके हैं कि भागवत पुराण के अनुसार याज्ञवल्क्य के पिता का नाम देवरात था, अतः दैवराति विशेषण याज्ञवल्क्य का भी हो सकता है। यदि यह सत्य हो ती महाभारत-पाठ दैवरातिः नहीं, प्रत्युत दैवरातिं होना चाहिए और जनक का विशेषण तथा निज नाम हमें ढूंढना ही पड़ेगा।

इस से आगे याज्ञवल्क्य और जनक का सम्वाद आरम्भ होता है। अध्याय ३२३ में याज्ञवल्क्य कथा सुनाता है कि उस ने सूर्य से किस प्रकार वेद (श्लोक १०) अथवा उस की १५ शाखाएं (श्लो० २१, २५) प्राप्त कीं। याज्ञवल्क्य जनक को कहता है कि हे महाराज आप के पिता का यज्ञ भी मैं ने कराया था। तभी सुमन्तु, पैल और जैमिनि ने मेरा मान किया था। पुनः याज्ञवल्क्य महाराज जनक को वेदान्तज्ञान के जानने वाले गन्धर्वराज विश्वावसु से अपना सम्वाद सुनाता है। याज्ञवल्क्य का सारा उपदेश सुन कर वह जनक अनेक धन, रत्न और गाएं ब्राह्मणों को दान दे कर और अपने पुत्र को विदेह का राज्य दे कर आप संन्यासव्रत में चला गया।

जिस याज्ञवल्क्य की जीवन-घटनाएं पूर्व लिखी गई हैं, उसी प्रतापी वाजसनेय याज्ञवल्क्य की प्रवचन की हुई पन्द्रह शाखाओं का अब वर्णन किया जायगा।

पन्द्रह वाजसनेय शाखाएं

वाजसनेय के प्रवचन को पढ़ने वाले शिष्य वाजसनेयिन कहाए। उन में से पन्द्रह ने उस प्रवचन को विशेष रूप से पढ़ा पढ़ाया। उनके विषय में वायुपुराण अध्याय ६१ में लिखा है—

याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते कण्ववैधेयशालिनः ॥२४॥
मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्दलः।
ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैशिरी ॥२५॥
आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपरायणः।
इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दश पञ्च च संस्मृताः ॥२६॥

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग अध्याय ३५ का यही पाठ निम्नलिखित है—

याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते कण्वो बौधेय एव च।
मध्यन्दिनस्तु सापत्यो वैधेयश्चाद्धबौद्धकौ ॥२८॥
तापनीयाश्च वत्साश्च तथा जावालकेवलौ।
आवटी च तथा पुंड्रो वैणोयः सपराशरः ॥२९॥
इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दशपंच च सत्तमाः।

कतिपय चरणव्यूहों का पाठ है—

वाजसनेया नाम पञ्चदशभेदा भवन्ति—
जावाला बौधायनाः काण्वा माध्यन्दिनाः शाफेयास्
तापनीयाः कपोलाः पौण्डरवत्सा आवटिकाः परमावटिकाः
पाराशरा वैणेया वैधेया अद्धा बौधेयाश्चेति।

दूसरे प्रकार के चरणव्यूहों का पाठ निम्नलिखित है—

काण्वा माध्यन्दिनाः शावीयास् तापायनीयाः कापालाः
पौण्डरवत्सा आवटिकाः परमावटिकाः पाराशर्या वैधेया
नैनेया गालवा औधेया वैजवाः कात्यायनीयाश्चेति।

चौखम्बा में काण्वसंहिता पर जो सायण भाष्य मुद्रित हुआ है,

उस की भूमिका में सायण भी यही पाठ उद्धृत करता है। परन्तु इसी के ग्रन्थ के जो हस्तलेख लाहौर और मद्रास में हैं, उन का पाठ निम्नलिखित है—

जाबाला गौधेयाः काण्वा माध्यन्दिनाः श्यामाः
श्यामायनीया गालवाः पिङ्गला वत्सा आवटिकाः
परमावटिकाः पाराशर्या वैणेया वैधेया गालवाः।

प्रतिज्ञा-परिशिष्ट का पाठ भी देखने योग्य है—

जाबाला बौधेयाः काण्वा माध्यन्दिनाः शापेयास्
तापायनीयाः कापोलाः पौण्ड्रवत्सा आवटिकाः परमावटिकाः
पाराशरा वैनतेया वैधेयाः कौन्तेया वैजवापाश्चेति।

महीधर अपने यजुर्वेद-भाष्य के आरम्भ में लिखता है—

जावाल–बौधेय–काण्व–माध्यन्दिनादिभ्यः पञ्चदशशिष्येभ्यः।

ये सारे मत निम्नलिखित चित्र से अधिक स्पष्ट हो जाएंगे—

प्रतिज्ञा	वायु	ब्रह्माण्ड	चरणव्यूह १	चरणव्यूह २	सायण मुद्रित
१—जाबालाः		जाबालाः	जाबालाः		
२—बौधेयाः		बौधेयाः	बौधायनाः	औधेयाः	औधेयाः[1]
३—काण्वाः	कण्वः	कण्वः	कण्वः	कण्वः	कण्वः
४—माध्यन्दिनः	मध्यन्दिनः	मध्यन्दिनः	मध्यन्दिनः	मध्यन्दिनः	मध्यन्दिनः
५—शापेयाः	शापेयी	सापत्यः	शाफेयाः	शाबीयाः	शाबीयाः[2]
६-तापायनीयाः	ताम्रायणश्च	ताम्रायणश्च	ताम्रायणश्च	तापायनीयाः	तापायनीयाः[3]
७—कापोलाः		केवल	कपोलाः	कापालाः	कापालाः
८—पौण्ड्रवत्साः	वात्स्यः	वत्साः	पौण्डरवत्साः	पौण्डरवत्साः	पौण्ड्रवत्साः[4]
९—आवटिकाः	आटवी	आवटी	आवटी	आवटी	आवटी
१०—परमावटिकाः			परमावटिकाः	परमावटिकाः	परमावटिकाः
११—पाराशराः	प्रायणः	पराशरः	पराशरः	पाराशर्याः	पाराशर्याः
१२—वैनतेयाः	वीरणी	वैणोयः	वैणेयाः	नैनेयाः	वैनेयाः[5]

सायण लिखित के पाठान्तर—१—गौधेयाः। २—श्यामाः। ३—श्यामायनीयाः। ४—वत्साः। ५—वैणेयाः।

प्रतिज्ञा	वायु	ब्रह्माण्ड	चरणव्यूह १	चरणव्यूह २	सायण मुद्रित
१३—वैधेयाः	वैधेयः	वैधेयः	वैधेयः	वैधेयः	वैधेयः
१४—कौन्तेयाः					
१५—वैजवापाः				वैजवाः	
	शालिन				
	विदिग्ध				
	उद्दल				
	गालव				गालवाः
	शैषिरी				
	पर्णी	पुंड्रः			
		अद्ध	अद्धा	औधेयाः	औधेयाः
		बौद्धक	बांधेयाः		
				कात्यायनीयाः	कात्यायनीयाः[1]

शुक्ल-यजु-शाखाकारों के ये कुल २५ नाम इन स्थानों में मिलते हैं। इन में से १५ नाम तो ठीक हो सकते हैं, परन्तु शेष १० नाम लेखकप्रमाद रूपी भूलें ही कही जा सकती हैं। इन पाठों में कहां कहां और क्यों भूलें हुई हैं, यह बताया जा सकता है, परन्तु विस्तर-भय से ऐसा किया नहीं गया। प्रतिज्ञा-परिशिष्ट के पाठ प्रायः ठीक हैं। केवल १४ अङ्कान्तर्गत कौन्तेयाः के स्थान में या तो औधेयाः पाठ चाहिए या कात्यायनीयाः। इन पन्द्रह शाखाओं में से जिस जिस शाखा के सम्बन्ध में हमें कुछ ज्ञात हो सका है, वह नीचे लिखा जाता है—

१—जाबालाः। हमारा अनुमान है कि उपनिषद् वाङ्मय का प्रसिद्ध आचार्य महाशाल[2] सत्यकाम जाबाल ही इस शाखा का प्रवचन-

---

१—सायण लिखित के पाठान्तर—पिङ्गलाः।

२—जाबाल शब्द पर लिखते हुए मैकडानल और कीथ अपने वैदिक इण्डैक्स में महाशाल को सत्यकाम से पृथक् व्यक्ति स्वीकार करते हैं। यह एक भूल है। महाशाल तो बड़ी शाला वाले को कहते हैं। छान्दोग्य उप ५।१।११॥ में अन्य ऋषि भी महाशाल कहे गए हैं।

कर्ता था। वह वाजसनेय याज्ञवल्क्य का शिष्य और जनक आदि का समकालीन ही है। महाभारत अनुशासन पर्व ७।५५॥ के अनुसार एक जाबालि विश्वामित्र कुल का था। वह सम्भवतः गोत्रकार भी था। स्कन्द पुराण नागर खण्ड ११२।२४॥ के अनुसार जाबाल गोत्र वाले नगर नाम के पुर में भी रहते थे। मत्स्यपुराण १९८।४॥ में भी जाबाल कौशिक कहे गए हैं। वायु और ब्रह्माण्ड में ऐसा पाठ नहीं है। जाबालों का उल्लेख जैमिनीय उप० ब्रा० ३।७।२॥ में मिलता है।

वर्तमान काल में जाबालोपनिषद् के अतिरिक्त इस शाखा का अन्य कोई ग्रन्थ ज्ञात-पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं है। जाबाल ब्राह्मण और कल्प आदि के अनेक-ग्रन्थोद्धृत जो प्रमाण हमें मिले हैं, वे इस इतिहास के ब्राह्मण भाग में दिए जाएंगे। एक प्रमाण ध्यानविशेष देने योग्य है। वह कदाचित् संहिता से सम्बन्ध रखता है, अतः आगे लिखा जाता है। कात्यायनकृत परिशिष्टों में एक हौत्रसूत्र प्रसिद्ध है। इस पर कर्क उपाध्याय का भाष्य भी मिलता है। उस के अध्याय २ खण्ड ८ में लिखा है—

नववतीश्चिकीर्षेत्-इति जाबालाः।

अर्थात्—जाबालों का मत है कि इस स्थान पर दूसरी ऋचाएं पढ़े। वे चौदह ऋचाएं आगे प्रतीकमात्र उद्धृत हैं। कर्क उनका समग्र पाठ देता है। उन में से कुछ ऋचाएं ऋग्वेद में और कुछ तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलती हैं। हौत्रसूत्र में प्रतीकमात्र पाठ होने से यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः ये ऋचाएं जाबाल संहिता में विद्यमान हों।

जाबाल श्रुति का निम्नलिखित प्रमाण स्थपति गर्ग अपनी पारस्कर गृह्यपद्धति में देता है—

दक्षिणपूर्वेद्वारे द्व्यरत्निके जाबालश्रुतेरेतदुपलब्धम्।[1]

२—बौधेयाः। ऋग्वेदीय बाष्कल शाखाओं का उल्लेख करते समय आङ्गिरस गोत्र वाले बोध के पुत्र बौध्य का वर्णन हो चुका है।

१—पञ्जाब यूनिवर्सिटी का हस्तलेख पत्र ७ख पंक्ति २।

वही ऋग्वेदीय बौध्य शाखा का प्रवर्तक था। दूसरे गोत्र वाले बोध के पुत्र को बौधि कहते हैं। बौधेय का सम्बन्ध भी बुद्ध या बोध से ही होगा। परन्तु किस गोत्र वाले किस व्यक्ति से इस का सम्बन्ध था, यह हम नहीं जान सके।

महाराज जनमेजय के सर्पसत्र में बोधिपिङ्गल नाम का एक आचार्य उपस्थित था। वह था भी अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेदी। आदिपर्व अध्याय ४८ में लिखा है—

ब्रह्मासवच्छार्ङ्गरवो अध्वर्युर्बोधिपिङ्गलः ॥ ६ ॥

क्या इस बोधिपिङ्गल का बौधेयों से कोई सम्बन्ध था, यह जानना चाहिए। बौधेयों के सम्बन्ध में इस से अधिक हम नहीं जान सके।

चरणव्यूह के कुछ हस्तलेखों में बौधेय के स्थान में बौधायन पाठ भी मिलता है। और बौधायन श्रौतसूत्र का माध्यन्दिन और काण्व शतपथों से सामान्यतया तथा काण्व शतपथ से विशेषतया सम्बन्ध है। देखो डा० कालेण्ड सम्पादित काण्वीय शतपथ की भूमिका पृ० ९४—१०१। इस से यही अनुमान होता है कि या तो बौधेय और बौधायन परस्पर भाई हैं, अथवा यह एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं, जो पहले एक शाखा पढ़ता था, और पीछे से उस ने दूसरी शाखा अपना ली और अपना नाम भी बदल लिया। परन्तु यह कल्पनामात्र है और विशेष सामग्री के अभाव में अभी कुछ निश्चय से नहीं कहा जा सकता।

३—**काण्वाः**। काण्व शाखा की संहिता और ब्राह्मण दोनों ही सम्प्रति उपलब्ध हैं। संहिता का सम्पादन सब से पहले सन् १८५२ में वैबर ने किया था। तत्पश्चात् सन् १९१५ में मद्रास प्रान्तान्तर्गत आनन्द-वन नामक नगर में कई काण्व शाखीय ब्राह्मणों से संशोधित एक संस्करण निकला था। वह संस्करण अत्यन्त उपादेय है। ग्रन्थाक्षरों में भी काण्व संहिता का एक संस्करण कुम्भघोण में छपा था।

काण्व संहिता में ४० अध्याय ३२८ अनुवाक और २०८६ मन्त्र हैं। उनका व्योरा निम्नलिखित है—

अध्याय	अनुवाक	मन्त्र	अध्याय	अनु०	मन्त्र
१	१०	५०	२१	७	१०६
२	७	६०	२२	८	७५
३	९	७६	२३	६	६०
४	१०	४९	२४	२१	४७
५	१०	५५	२५	१०	६७
६	८	५०	२६	८	४४
७	२२	४०	२७	१५	४५
८	२२	३२	२८	१२	१४
९	७	४६	२९	६	५०
१०	६	४३	३०	४	४६
	१११	५०१		९७	५५४
११	१०	४७	३१	७	५१
१२	७	८५	३२	६	८४
१३	७	११६	३३	२	४६
१४	७	६५	३४	४	२२
१५	९	३५	३५	४	५५
१६	७	८५	३६	१	२४
१७	८	६४	३७	३	२०
१८	७	८६	३८	७	२७
१९	९	४३	३९	९	१२
२०	५	४६	४०	१	१८
	७६	६७२		४४	३५९

यह गणना आनन्दवन के संस्करणानुसार है।

इस प्रकार चारों दशकों में कुल संख्या निम्नलिखित है—

दशक	अनुवाक	मन्त्र
१	१११	५०१
२	७६	६७२
३	९७	५५४
४	४४	३५९
	३२८	२०८६

काण्व-शाखा का प्रवर्तक

कण्व के शिष्य काण्व कहाते हैं। उन्हीं शिष्यों में कण्व का प्रवचन सब से पहले प्रवृत्त हुआ होगा। कण्व एक गोत्र है, अतः कण्व नाम के अनेक ऋषि समय समय पर हुए होंगे। कण्व नार्षद[1], कण्व श्रायस[2], कण्वाः सौश्रवसाः[3], कण्व घौर[4], आदि अनेक कण्व हो चुके हैं। कश्यप कुल का एक कण्व महाराज दुःषन्त के काल में था। उसी के आश्रम में शकुन्तला वास करती थी। इसी ने भरत का वाजिमेध यज्ञ कराया था। आदिपर्व ६९।४८॥ में लिखा है—याजयामास तं कण्वः। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय प्रथम में लिखा है कि द्वैपायन, नारद, देवल, देवस्थान और कण्व अपने शिष्यों सहित भारत युद्ध के अवसान पर महाराज युधिष्ठिर से मिलने गए। पुनः शान्तिपर्व अध्याय ३४४ में लिखा है कि अङ्गिरा के पुत्र चित्रशिखण्डी नाम के एक बृहस्पति का शिष्य राजा उपरिचर वसु था। उस राजा ने एक महान् अश्वमेध यज्ञ किया था। उस यज्ञ के १६ सदस्यों में कोई एक कण्व भी था। इन कण्वों में से प्रत्येक का निज नाम हमें अज्ञात है। मौसल पर्व २।४॥ में भी एक कण्व उल्लिखित है। विश्वामित्र और नारद के साथ उसी ने यादवों को कुलान्त करने वाला

१—जै० ब्रा० १।२१६॥ कालेण्ड ७९।

२—तै० सं० ५।४।७।५॥ का० सं० २१।८॥ मै० सं० ३।३।९॥

३—का० सं० १३।१२॥

४—ऋ० १।३७॥ आदि का ऋषि।

शाप दिया था। बहुत सम्भव है कि शान्तिपर्व के आरम्भ में उल्लिखित कण्व और उसके शिष्य ही काण्व शाखा से सम्बन्ध रखने वाले हों। कण्व लोग अङ्गिरा गोत्र वाले हैं। हरिवंश अध्याय ३२ में लिखा है—

एते ह्यंगिरसः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः ॥६८॥

तथा ब्रह्माण्ड पुराण मध्यम भाग १।११२॥ में भी यही लिखा है। वायु पुराण ५९।१००॥ में भी कण्व अङ्गिरा कहे गए हैं।

कण्व का आश्रम

आदि पर्व ६४।१८॥ के अनुसार मालिनी नदी पर कण्व का आश्रम था। यह स्थान प्राचीन मध्यदेशान्तर्गत है। काण्व संहिता में एक पाठ है—

एष वः कुरवो राजैष पञ्चाला राजा।

इसी के स्थान में माध्यन्दिन पाठ है—एष वोऽमी राजा। तैत्तिरीय आदि संहिताओं में इस पाठ में अन्य जनपदों के नाम हैं। इस से प्रतीत होता है कि काण्वों का स्थान कुरु-पाञ्चालों के समीप ही था।

कण्वों का एक आगम काठक गृह्य ५।८॥ के देवपाल भाष्य में उद्धृत है। कण्व के श्लोक स्मृति चन्द्रिका श्राद्धकाण्ड पृ० ६७, ६८ पर उद्धृत हैं। कण्व और कण्व धर्मसूत्र के प्रमाण गोतम धर्मसूत्र के मस्करी भाष्य में बहुधा मिलते हैं। काण्व नाम के दो आचार्य आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्मरण किए गए हैं।

भारत के काण्व राजा

पुष्यमित्र स्थापित शुङ्ग—राज्य के पश्चात् मगध का राज्य काण्वों के पास चला गया। ये काण्व राजा ब्राह्मण थे। पुराणों में इन्हें काण्वायन भी कहा गया है। ये राजा काण्व-शाखीय ब्राह्मण ही होंगे।

काण्वी शाखा वालों का पाञ्चरात्रागम से सम्बन्ध

पाञ्चरात्रागम का काण्व शाखा से कोई सम्बन्धविशेष प्रतीत होता है। इस आगम की जयाख्य संहिता के प्रथम पटल में लिखा है—

काण्वीं शाखामधीयानाव् औपगायनकौशिकौ।
प्रपत्तिशास्त्रनिष्णातौ स्वनिष्ठानिष्ठितावुभौ ॥१०९॥

तद्गोत्रसम्भवा एव कल्पान्तं पूजयन्तु माम् ।
जयाख्येनाथ पाद्मेन तन्त्रेण सहितेन वै ॥११४॥
अत्राधिकार उभयोस्तयोरेव कुलीनयोः ।
शाण्डिल्यश्च भरद्वाजो मुनिर्मौञ्जायनस्तथा ॥११५॥
इमौ च पञ्चगोत्रस्था मुख्याः काण्वीमुपाश्रिताः ।
श्रीपाञ्चरात्रतन्त्रीये सर्वेऽस्मिन् मम कर्मणि ॥११६॥

अर्थात्—पाञ्चरात्रागम वाले अपने कर्मकाण्ड में मुख्यता से काण्व शाखा का आश्रय लेते हैं। उन के अनेक आचार्य काण्वशाखीय ही हैं।

४—माध्यन्दिनाः। शुक्ल यजुओं में इस समय माध्यन्दिन-शाखा ही सब से अधिक पढ़ी जाती है। कश्मीर, पञ्जाब, राजपूताना, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, बङ्गाल, विहार और संयुक्त प्रान्त में प्रायः सर्वत्र ही इस शाखा का प्रचार है। संहिता के हस्तलिखित ग्रन्थों में इसे बहुधा यजुर्वेद या वाजसनेय संहिता ही कहा गया है। सम्भव है कि सिवाय स्वर और उच्चारण आदि भेदों के इस का मूल से पूरा सादृश्य हो।

माध्यन्दिन ऋषि कौन और किस देश का था, यह हम अभी नहीं बता सकते। शाखा अध्येता इस शाखा में कुल १९७५ मन्त्र कहते हैं। यह गणना कण्डिका-मन्त्रों की है। इस से आगे प्रत्येक कण्डिका मन्त्र में भी कई कई मन्त्र हैं। उन मन्त्रों की गणना वासिष्ठी शिक्षा के अन्त में मिलती है। वह आगे दी जाती है—

एकीकृत्वा ऋचः सर्वा मुनिषड्वेदभूमिताः ।
अब्धिरामाथ वा ज्ञेया वसिष्ठेन च धीमता ॥१॥
एवं सर्वाणि यजूँषि रामाश्विवसुयुग्मकाः ।
अथ वा पञ्चभिर्न्यूनाः संहितायां विभागतः ॥२॥

अर्थात्—सारी ऋचाएं १४६७ हैं। इन की संख्या का विकल्प अस्पष्ट है। इस प्रकार सारे यजु २८२३ अथवा २८१८ हैं।

यह हुई ऋक् और यजुओं की गणना। अब अनुवाकसूत्राध्याय के अनुसार अनुवाकों की संख्या लिखी जाती है। अनुवाकसूत्राध्याय के अन्तिम श्लोक निम्नलिखित हैं—

दशाध्याये समाख्यातानुवाकाः सर्वसंख्यया ।
शतं दशानुवाकाश्च नवान्ये च मनीषिभिः ॥१॥
सप्तषष्टिश्चितो ज्ञेया सौत्रैर्द्वाविंशतिस्तथा ।
अश्व एकोनपञ्चाशत्पञ्चत्रिंशत् खिले स्मृताः ॥२॥
शुक्रियेषु तु विज्ञेया एकादश मनीषिभिः ।
एकीकृत्य समाख्यातं त्रिशतं त्र्यधिकं मतम् ॥३॥

अर्थात्—प्रथम १० अध्यायों में ११९ अनुवाक हैं। अग्निचयन अथवा ११–१८ अध्यायों में ६७ अनुवाक हैं। १९–२१ अर्थात् सौत्रामणि अध्यायों में २२ अनुवाक हैं। अश्वमेध अर्थात् २२–२५ अध्यायों में ४९ अनुवाक हैं। २६—३५ अर्थात् खिल अध्यायों में ३५ अनुवाक हैं। शुक्रिय अर्थात् अन्तिम ५ अध्यायों में ११ अनुवाक हैं। एकत्र कर के—११९+६७+२२+४९+३५+११=३०३ तीन सौ तीन कुल अनुवाक हैं।

चालीस अध्यायों के अनुवाकों, मन्त्रों, ऋचाओं और यजुओं की संख्या आगे लिखी जाती है। इन में से अनुवाक और मन्त्रों की संख्या तो अनुवाकसूत्राध्याय के अनुसार है और ऋचाओं और यजुओं की गणना वासिष्ठी शिक्षा के अनुसार है। काशी के शिक्षा-संग्रह में मुद्रित वासिष्ठी शिक्षा का पाठ बहुत भ्रष्ट है, अतः ऋचाओं और यजुओं की गणना में पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी भावी विचारार्थ मुद्रित ग्रन्थ के आधार पर ही यह गणना दी जाती है।

अध्याय	अनुवाक	मन्त्र	ऋक्	यजुः
१	१०	३१	१	११७
२	७	३४	१२	७६
३	१०	६३	६३ या ६२	३४ या ३६
४	१०	३७	२१ या २०	६५ या ६६
५	१०	४३	१७	११५
६	८	३७	१७	८३
७	२५	४८	३०	१११
८	२३	६३	४३	१०३ या १०४

अध्याय	अनुवाक	मन्त्र	ऋक्	यजुः
९	८	४०	२२	८४
१०	८	३४	१२	१०२
११	७	८३	७६	२६
१२	७	११७	११४	१२
१३	७	५८	५२	८७
१४	८	३१	१७	१५४
१५	७	६५	४६	९०
१६	९	६६	३३	१२९
१७	९	९९	९५	११
१८	१३	७७	३६	३६८
१९	७	९५	९४	३०
२०	९	९०	८४	१४
२१	६	६१	२८	३३
२२	१९	३४	१३	११३
२३	११	६५	५८	२४
२४	४	४०	०	४०
२५	१५	४७	४३	
२६	२	२६	२५	१५
२७	४	४५	४४	१
२८	४	४६	०	४६
२९	४	६०	५७	३२
३०	२	२२	३	१७७
३१	२	२२	२२	०
३२	२	१६	२५	
३३	७	९७	११९	०
३४	६	५८	६२	०
३५	२	२२	२१	६

अध्याय	अनुवाक	मन्त्र	ऋक्	यजुः
३६	२	२४	२०	२२
३७	२	२१	५	३१
३८	३	२८	१३ या १४	५२
३९	२	१३	२	१०७
४०	२	१७	१७	७
	३०३	१९७५		

माध्यन्दिनों का कोई श्रौत और गृह्य कभी था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। माध्यन्दिन के नाम से दो शिक्षा-ग्रन्थ शिक्षासंग्रह में छपे हैं। उन का इस शाखा से सम्बन्ध भी है। पदपाठ की अनेक बातें और गलित ऋचाओं का वर्णन उन में मिलता है। ये शिक्षाएं कितनी प्राचीन हैं, यह विचारसाध्य है।

५—शापेयाः। इस नाम के कुछ पाठान्तर पृ० १६२ पर आ चुके हैं। उन सब में से शापेयाः पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है। पाणिनीय सूत्र **शौनकादिभ्यश्छन्दसि** ४।३।१०६॥ पर जो गण पढ़ा गया है, उस में भी यह नाम पाया जाता है। गणपाठ के हस्तलेखों तथा उन हस्तलेखों की सहायता से मुद्रित हुए ग्रन्थों में इस नाम के और भी कई पाठान्तर हैं।

कात्यायन-प्रातिशाख्य अध्याय ३ सूत्र ४३ पर अनन्तभट्ट अपने भाष्य में लिखता है—

दुःनाशं। दूणाशं सख्यं तव। इदं शाबीयादिशाखोदाहरणम्।

अर्थात्—कई शाखाओं में दुःनाशं पाठ है, परन्तु शापेय शाखा में दूणाशं पाठ है।

ऋग्वेद में दूणाशं सख्यं तव ६।४५।२५॥ पाठ है। यह ऋचा माध्यन्दिन शाखा में नहीं है, परन्तु शापेय शाखा में होगी।

पुनः वही अनन्तभट्ट ३।४७॥ के भाष्य में लिखता है—

षट् दन्तः। षोडन्तो अस्य महतो महित्वात्। शाबीयादेरेतत्।

यह मन्त्र वैदिक कानकार्डेंस में हमें नहीं मिला।

६—तापनीयाः । नासिकक्षेत्र-वास्तव्य श्री अण्णाशास्त्री वारे के पुत्र श्री पण्डित विद्याधर शास्त्री ने गोपीनाथ भट्टी में से निम्नलिखित प्रमाण लिख कर हमें दिया था—

तापनीयश्रुतिरपि । सप्तद्वीपवतीभूमिर्दक्षिणार्थं न कल्प्यते–इति ।

तापनीय उपनिषदों में यह वचन हमारी दृष्टि में नहीं पड़ा, अतः सम्भव है कि यह वचन तापनीय ब्राह्मण या आरण्यक में हो।

७,८—कापोलाः । पौण्ड्रवत्साः । इन में से पहली शाखा के विषय में हम अभी तक कुछ नहीं जान सके । पौण्ड्रवत्स लोग वत्सों या वात्स्यों का ही कोई भेद थे । ऋग्वेद के शाकल चरण की एक वात्स्य शाखा का वर्णन हम पृ० ८९ पर कर चुके हैं । अब इन वत्सो और वात्स्यों के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से लिखा जाता है।

वत्स और वात्स्य

स्मृति चन्द्रिका श्राद्धकाण्ड पृ० ३२६ पर वत्ससूत्र का एक लम्बा प्रमाण मिलता है । उसी प्रमाण को अपने श्राद्ध प्रकरण में लिख कर हेमाद्रि कहता है—चरकाध्वर्युसूत्रकृत् वत्सः, अर्थात् वत्स चरकाध्वर्युओं का सूत्रकार था । पुनः स्मृतिचन्द्रिका संस्कारकाण्ड पृ० २ पर वत्स नाम का एक धर्मसूत्रकार लिखा गया है।

महाभारत आदिपर्व ४८।९॥ के अनुसार जनमेजय के सर्पसत्र में वात्स्य नाम का एक सदस्य उपस्थित था । कात्यायन श्रौत के परिभाषा अध्याय में वात्स्य नाम का आचार्य स्मरण किया गया है । मानवों के अनुग्राहिक सूत्र के द्वितीय खण्ड में एक वात्स्य का मत मिलता है। इसी अनुग्राहिक सूत्र के २३ खण्ड में चित्रसेन वात्स्यायन आचार्य का मत दिया है । तैत्तिरीय आरण्यक १।७।२१॥ में पञ्चकरण वात्स्यायन का मत मिलता है । पौण्ड्रवत्सों का इन में से किसी के साथ कोई सम्बन्ध था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता ।

९—१४ शाखाओं के तो अब नाममात्र ही मिलते हैं। इन में से पराशर शाखा के विषय में इतना ध्यान रखना चाहिए कि ऋग्वेदीय बाष्कल चरणान्तर्गत भी एक पराशर शाखा है।

१५—वैजवापाः। वैजवाप-गृह्य-संकलन हम मुद्रित कर चुके हैं।[1] वैजवापश्रौत के कई सूत्र यत्र तत्र उद्धृत मिलते हैं। इन का पूरा उल्लेख कल्पसूत्रों के इतिहास में किया जायगा। वैजवाप ब्राह्मण और संहिता का हमें अभी तक पता नहीं लग सका। चरक १। ११॥ में लिखा है कि हिमालय पर एकत्र होने वाले ऋषियों में एक वैजवापि भी था। वैजवापों की एक स्मृति भी यत्र तत्र उद्धृत मिलती है।

कात्यायनाः। कात्यायन श्रौत और कातीय गृह्य तो प्रसिद्ध ही हैं। स्मरण रहे कि कातीय गृह्य पारस्करगृह्य से कुछ विलक्षण है। एक कात्यायन शतपथ ब्राह्मण लाहौर के दयानन्द कालेज के लालचन्द पुस्तकालय में है। उस में पहले चार काण्ड हैं। वह काण्व शतपथ से मिलता है। क्या ये सब ग्रन्थ किसी शाखा-विशेष के हैं, यह विचारणीय है।

शुक्लयजुः की मन्त्र-संख्या

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग अध्याय ३५ श्लो० ७६, ७७ तथा वायु पुराण अध्याय ६१ श्लोक ६७, ६८ का पाठ निम्नलिखित है—

द्वे सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके।
ऋग्गणः परिसंख्यातो ब्राह्मणं तु चतुर्गुणम्॥
अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टावशीतिरन्यान्यधिकश्च पादः।
एतत्प्रमाणं यजुषामृचां च सशुक्रियं सखिलं याज्ञवल्क्यम्॥

अर्थात्—वाजसनेय आम्नाय में १९०० ऋचाएं हैं। तथा यजुओं और ऋचाओं का प्रमाण शुक्रिय और खिलसहित ८८८० और एक पाद है।

इस प्रकार पुराणों के अनुसार वाजसनेयों के पाठ में कुल मन्त्र ८८८० और एक पाद हैं। अथवा ६९८० और एक पाद यजुओं का तथा १९०० ऋचाएं हैं।

एक चरणव्यूह का पाठ है—

द्वे सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके।
ऋग्गणः परिसंख्यातस्ततो ऽन्यानि यजूंषि च॥

1— Fourth Oriental Conference, Proceedings, Volume II, 1928, pp. 59—67.

अष्टौ शतानि सहस्राणि चाष्टाविंशतिरन्यान्यधिकञ्च पादम्।
एतत्प्रमाणं यजुषां हि केवलं सवालखिल्यं सशुक्रियम् ॥
ब्राह्मणं च चतुर्गुणम् ॥

चरणव्यूह और पुराणों के पाठ का स्वल्प अन्तर है। चरणव्यूह के अनुसार वाजसनेयों की कुल मन्त्र संख्या ८८२० और एक पाद है।

प्रतिज्ञापरिशिष्ट सूत्र के चतुर्थ खण्ड में लिखा है—

वाजसनेयिनाम्—अष्टौ सहस्राणि शतानि चान्यान्यष्टौ संमितानि ऋग्भिर्विभक्तं सखिलं सशुक्रियं समस्तो यजूंषि च वेद ॥४॥

अर्थात्—वाजसनेयों की मन्त्र संख्या ८८०० है। इतना ही सम्पूर्ण यजुः है। इस में ऋचाएं, खिल और शुक्रिय अध्याय सम्मिलित हैं।

चरणव्यूह का टीकाकार महिदास इसी श्लोक के अर्थ में ऋक् संख्या १९२५ मानता है। उस के इस परिणाम पर पहुंचने का कारण जानना चाहिए।

यह ऋक् और यजुः संख्या १५ शाखाओं की सम्मिलित संख्या प्रतीत होती है। पहले लिखा जा चुका है कि वासिष्ठी शिक्षा के अनुसार माध्यन्दिन शाखा में १४६७ ऋचाएं हैं। पन्द्रह शाखाओं की ऋक् संख्या १९०० है। अतः शेष १४ शाखाओं में कुल ४३३ ऋचाएं ऐसी होंगी जो माध्यन्दिन शाखा में नहीं हैं। इसी प्रकार माध्यन्दिन यजुः संख्या २८२३ है। प्रतिज्ञासूत्रानुसार ऋचाएं निकाल कर ८८००–१९००=६९०० यजुः हैं। अतः ६९००–२८२३=४०७७ नए यजुः अन्य चौदह शाखाओं में होंगे।

माध्यन्दिन शाखा के समान यदि काण्व शाखा के भी ऋक्, यजुः गिन लिए जाएं, तो विषय अति स्पष्ट हो सकता है।

स्मरण रहे कि जिन ग्रन्थों से यह संख्या ली गई है, उन का पाठ शुद्ध होने पर इस संख्या में थोड़ा बहुत भेद करना पड़ेगा।

वाजसनेयों का कुरुजांगल राज्य में व्यापक-प्रभाव

वैशंपायन का कौरव जनपद से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वैशंपायन ही महाराज जनमेजय को भारत-कथा सुनाता है। अतः स्वाभाविक ही वहां पर

चरकों का प्रचार होना चाहिए। परन्तु वस्तुतः ऐसा हुआ नहीं। परिक्षित् के पुत्र महाराज जनमेजय ने वाजसनेयी ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में स्थापन किया। वैशंपायन इसे सहन न कर सका। उस ने जनमेजय को शाप दिया। उस शाप से जनमेजय का नाश हो गया। यह वृत्तान्त वायु पुराण अ० ९९ श्लोक २५०—२५५ तक पाया जाता है। कई अन्य पुराणों में भी यही वार्ता पाई जाती है। इस से प्रतीत होता है कि पौरव राज्य में वाजसनेयों का प्रभाव अधिक हो गया था। शनैः शनैः कश्मीर के अतिरिक्त सारे उत्तरीय भारत और सौराष्ट्र में शुक्ल यजुओं का ही अधिक प्रचार हो गया।

क्या कोई वाजसनेय-संहिता भी थी

बौधायन, आपस्तम्ब और वैखानस श्रौतसूत्रों में कई वार वाजसनेय या वाजसनेयकों के वचन उद्धृत मिलते हैं। वे वचन ब्राह्मण सदृश हैं। परन्तु माध्यन्दिन और काण्व शतपथों में वे पाठ नहीं मिलते। वासिष्ठधर्म-सूत्र १२।३१॥१४।४६॥ में भी दो वार वाजसनेय ब्राह्मण का पाठ मिलता है। प्रथम पाठ की तुलना मा० शतपथ १०।५।२।९॥ से की जा सकती है। वस्तुतः ये दोनों पाठ भी इन शतपथों में नहीं हैं। इस से किसी वाजसनेय-ब्राह्मण-विशेष की सम्भावना प्रतीत होती है। अथवा यह भी सम्भव है कि जाबाल आदि किसी ब्राह्मणविशेष को ही वाजसनेय ब्राह्मण कहते हों। इसी प्रकार यह भी विचारणीय है कि क्या शुक्ल यजुओं की आरम्भ से ही १५ संहिताएं थीं, अथवा कोई मूल वाजसनेय संहिता भी थी।

अनेक शुक्लयजुः संहिता पुस्तकों के अन्त में **इति वाजसनेय संहिता** अथवा **इति यजुर्वेद** लिखा मिलता है। वह संहिता माध्यन्दिन पाठ से मिलती है। इस पर पूरा पूरा विचार करना चाहिए।

वाजसनेयों के दो प्रधान मार्ग

प्रतिज्ञा परिशिष्ट खण्ड ११ के अनुसार वाजसनेयों के दो प्रधान मार्ग थे। प्रतिज्ञा परिशिष्ट का तत्सम्बन्धी पाठ यद्यपि बहुत अशुद्ध है, तथापि उस का अभिप्राय यही है। उन मार्गों में से एक मार्ग था आदित्यों का और दूसरा था आङ्गिरसों का। आदित्यों का मार्ग ही विश्वामित्र या कौशिकों का मार्ग हो सकता है। यही दो मार्ग माध्यन्दिन शतपथ ग्रहकांड ४,

प्रपाठक ४, खण्ड १९ में वर्णित हैं। इन्हीं दोनों मार्गों का उल्लेख कौपीतकि ब्राह्मण ३०।६॥ में मिलता है। वहां ही लिखा है कि (देवकीपुत्र श्रीकृष्ण के गुरु) घोर आङ्गिरस ने आदित्यों के यज्ञ में अध्वर्यु का काम किया था। इस भेद के अनुसार याज्ञवल्क्य के पन्द्रह शिष्य भी दो भागों में विभक्त हो जाएंगे। एक होंगे कौशिक पक्ष वाले और दूसरे आङ्गिरस पक्ष वाले। कात्यायन आदि कौशिक हैं और काण्व आदि आङ्गिरस हैं।

वाजसनेय और शङ्खलिखित-सूत्र

शङ्खलिखित रचित एक धर्मसूत्र है। वह वाजसनेयों से ही पढ़ा जाता है। ऐसी परम्परा क्यों चली, इस का निर्णय कल्पसूत्रों के इतिहास में करेंगे।

कृष्णयजुर्वेद प्रचारक वैशंपायन

त्रिकालदर्शी भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यास का दूसरा प्रधान शिष्य वैशंपायन था। वैशंपायन के पिता का नाम अथवा उस का जन्मस्थान हम नहीं जानते। वायु पुराण ६१।५॥ के अनुसार वैशंपायन एक गोत्र था। परन्तु ब्रह्माण्ड पु० ३४।८॥ के लगभग वैसे ही पाठानुसार वैशंपायन एक नामविशेष था। वैशंपायन का दूसरा नाम चरक था। अष्टाध्यायी की काशिका-वृत्ति ४।३।१०४॥ में लिखा है—

चरक इति वैशंपायनस्याख्या।

याज्ञवल्क्य इसी वैशंपायन का भागिनेय और शिष्य भी था। शान्तिपर्व ३४४।९॥ के अनुसार तित्तिरि या तैत्तिरि वैशंपायन का ज्येष्ठ भ्राता था। महाभारत के इस प्रकरण के पाठ से कुछ सन्देह होता है कि यह वैशंपायन किसी पहले युग का हो। परन्तु अधिक सम्भावना यही है कि यह वैशंपायन हमारा वैशंपायन ही है।

वैशंपायन का आयु

अन्य ऋषियों के समान वैशंपायन भी एक दीर्घजीवी ब्राह्मण था। आदि पर्व १।५७॥ के अनुसार तक्षशिला में सर्पसत्र के अनन्तर व्यास जी की आज्ञा से इसी वैशंपायन ने जनमेजय को भारत-कथा सुनाइ थी। जब जनमेजय ने वाजसनेयों को पुरोहित बना कर यज्ञ किया, तो इसी वैशंपायन

ने उसे वह शाप दिया था जो उस के नाश का कारण बना। वैशंपायन का आयु-परिमाण भी याज्ञवल्क्य के तुल्य ही होगा। व्यास जी से कृष्ण यजुर्वेद का अभ्यास कर के इस ने आगे अनेक शिष्यों को उस का अभ्यास कराया। उन शिष्यों के कारण इस कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाएं हुईं।

शबरस्वामी अपने मीमांसाभाष्य १।१।३०॥ में किसी प्राचीन ग्रन्थ का प्रमाण देता हुआ लिखता है—

स्मर्यते च—वैशंपायनः सर्वशाखाध्यायी।

अर्थात्—वैशंपायन इन सब ८६ शाखाओं को जानता था।

इसी वैशंपायन का कोई छन्दोबद्ध-ग्रन्थ भी था। उसी के श्लोकों को काशिकावृत्तिकार ४।३।१०७॥ पर **चारकाः श्लोकाः** लिखता है। सम्भव है ये श्लोक महाभारतस्थ ही हों।

कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं के तीन प्रधान भेद

पुराणों के अनुसार इन शाखाओं के तीन प्रधान भेद हैं—

वैशंपायनगोत्रो ऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत्।
षडशीतिस्तु येनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः॥
षडशीतिस्तथा शिष्याः संहितानां विकल्पकाः।
सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधा भेदाः प्रकीर्तिताः॥
त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदे ऽस्मिन्नवमे शुभे।
उदीच्या मध्यदेश्याश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधाः॥
श्यामायनिरुदीच्यानां प्रधानः सम्बभूव ह।
मध्यदेशप्रतिष्ठाता चारुणिः [चासुरिः ? ब्र०पु०] प्रथमः स्मृतः॥
आलम्बिरादिः प्राच्यानां त्रयोदेश्यादयस्तु ते।
इत्येते चरकाः प्रोक्ताः संहितावादिनो द्विजाः॥[1]

अर्थात्—कृष्ण यजुः की ८६ शाखाओं के तीन भेद हैं। वे भेद हैं उदीच्य=उत्तर, मध्यदेशीय और प्राच्य=पूर्व देशस्थ आचार्यों के भेद से। श्यामायनि उत्तर देश के कृष्ण याजुषों में प्रधान था। मध्यदेश वालों में

१—यह पाठ वायु ६१।५–१०॥ तथा ब्रह्माण्ड पूर्व भाग ३४।८–१३॥ को मिला कर दिया गया है।

आरुणि या आसुरि प्रथम था। और पूर्वदेश वालों में से आलम्बि पहला था।

काशिकावृत्ति ४।३।१०४॥ में इस विषय पर और भी प्रकाश डाला गया है—

आलम्बिश्चरकः प्राचां पलङ्गकमलावुभौ।
ऋचाभारुणिताण्ड्याश्च मध्यमीयास्त्रयो ऽपरे॥
श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनोः।

अर्थात्—आलम्बि, पलङ्ग और कमल पूर्वदेशीय चरक थे। ऋचाभ, आरुणि और ताड्य मध्यदेशीय चरक थे। तथा श्यामायन, कठ और कलाप उत्तरदेशीय चरक थे।

व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि भी सूत्र ४।२।१३८॥ पर लिखता है—

त्रयः प्राच्याः। त्रय उदीच्याः। त्रयो माध्यमाः॥

अर्थात्—[वैशम्पायन के नौ शिष्यों में से] तीन पूर्वीय, तीन उत्तरीय और तीन मध्यमदेशीय आचार्य हैं।

इसी प्रकार आर्च श्रुतर्षियों का वर्णन कर के ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग अध्याय ३३ में लिखा है—

वैशंपायनलौहित्यौ कठकालापशावधः॥ ५॥
श्यामायनिः पलङ्गश्च ह्यालंबिः कामलायनिः।
तेषां शिष्याः प्रशिष्याश्च षडशीतिः श्रुतर्षयः॥ ६॥

मुद्रित पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है। यह हमारा शोधित पाठ है। इस पाठ में भी पांचवें श्लोक का अन्तिम पद अस्पष्ट है।

वायु और ब्रह्माण्ड से जो लम्बा पाठ ऊपर दिया गया है, तदनुसार इन यजुओं की ८६ संहिताएं थीं। यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती। आपस्तम्बादि अनेक कृष्ण यजुः शाखाएं ऐसी हैं, जो सौत्ररूप ही हैं। कभी उन की स्वतन्त्र संहिता रही हो, यह उन उन सम्प्रदायों में अवगत नहीं। अतः पुराण के इस लेख की पूरी आलोचना आवश्यक है। अब इन चरक-चरणों और उन की अवान्तर शाखाओं का वर्णन किया जाता है।

१—चरक संहिता

वैशंपायन की मूल चरक संहिता कैसी थी, यह हम नहीं कह सकते। एक चरक संहिता चरणव्यूहादि में कही गई है।

यजुर्वेद ७।२३॥ और २५।२७॥ के भाष्य में उवट चरकों के मन्त्र उद्धृत करता है। कात्यायन प्रातिशाख्य ४। १६७॥ के भाष्य में उवट चरकों के एक सन्धि-नियम का उल्लेख करता है। चरक ब्राह्मण भी बहुधा उद्धृत मिलता है। इस का उल्लेख इस इतिहास के ब्राह्मण भाग में होगा। चरक-श्रौत के अनेक प्रमाण शांखायन श्रौत के आनर्तीय भाष्य में मिलते हैं। इन का वर्णन इस इतिहास के श्रौत भाग में होगा। सुनते हैं नागपुर का प्रसिद्ध श्रेष्ठी गृह, जिन्हें बूटी कहते हैं, चरकशाखा वालों का है। परन्तु वहां चरक शाखा अथवा उस के ग्रन्थों का अब कोई अस्तित्व नहीं, ऐसा सुना जाता है। मुद्रित कठसंहिता में कई स्थानों पर यह लिखा मिलता है—

इति श्रीमद्यजुषि काठके चरकशाखायाम्।

इस के अभिप्राय पर ध्यान करना चाहिए।

इन चरकाध्वर्युओं का खण्डन शतपथ में बहुधा मिलता है। बृहदारण्यक उप० ३।३।१॥ में मद्रदेश में चरकों के अस्तित्व का उल्लेख है। आयुर्वेदीय चरकसंहिता सूत्रस्थान १४।१०१॥ में पुनर्वसु भी चान्द्रभाग कहा गया है। चन्द्रभागा=चनाब नदी के पास ही मद्रदेश था। अतः सम्भव है कि मद्रदेश में या उस के समीप ही वैशंपायन का आश्रम हो।

२, ३—आलम्बिन तथा पालङ्गिन शाखाएं

इन शाखाओं का अब नाममात्र ही शेष है। आलम्बि और पलङ्ग पूर्वदेशीय आचार्य थे। एक आलम्बायन आचार्य का वर्णन महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ४९ में मिलता है—

चारुशीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः सखा।
आलम्बायन इत्येवं विश्रुतः करुणात्मकः॥ ५॥

अर्थात्—सुन्दर शिर वाला, इन्द्र-सखा, विश्रुत, करुणामय आलम्बायन बोला। [हे युधिष्ठिर! गोकर्ण में तप तथा शिव-स्तुति से मैं ने पुत्र प्राप्त किए थे।]

आलम्बि पूर्वदिशा का था। इन्द्र-राज्य भी इसी दिशा में था। अतः आलम्बायन का इन्द्र-सखा होना स्वाभाविक ही है।

सभा पर्व ४।२०॥ के अनुसार युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश समय अनेक ऋषियों के साथ एक आलम्ब भी वहां उपस्थित था। माध्यन्दिन शतपथ के अन्त में जो वंश कहा गया है, वहां भी आलम्बी और आलम्बायनी दो नाम मिलते हैं।

४—कमल की शाखा

काशिकावृत्ति ४।३।१०४॥ के अनुसार इस शाखा के पढ़ने वाले कामलिन कहाते हैं। कामलायिन नाम की भी एक शाखा थी। उस का एक लम्बा पाठ अनुग्राहिक सूत्र के १७वें खण्ड से आरम्भ होता है—

अथ ॐ याज्ञिकल्पं कामलायिनः समामनंति वसंते वै···।[1]

कामलिन और कामलायिन क्या एक थे या दो, यह जानना आवश्यक है। हम अभी तक कोई सम्मति स्थिर नहीं कर सके। व्याकरण में कामलिनः पाठ है और पुराण में उसी का कामलायिनः पाठ है। तीसरा नाम कामलायन है। इन तीनों नामों का सम्बन्ध ज़ानना चाहिए।

छान्दोग्य उप० ४।१०।१॥ में लिखा है—

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास।

अर्थात्—उपकोसल कामलायन सत्यकाम जाबाल का शिष्य था। यहां उपकोसल का अभिप्राय यदि उपकोसल देश वासी है, तो यह आचार्य इस शाखा से सम्बन्ध रखने वाला हो सकता है। कमल शाखा का प्रवक्ता पूर्वदेशीय था, और कमल भी प्राच्य कहा गया है।

५—आर्चाभिन-शाखा

निरुक्त २।३॥ में आर्चाभ्याम्नाय के नाम से यास्क इसे उद्धृत करता है। दुर्ग, स्कन्द आदि निरुक्त-टीकाकारों के मुद्रित ग्रन्थों में इस शब्द का ठीक अर्थ नहीं लिखा। वे आर्चाभ्याम्नाय का अर्थ ऋग्वेद करते हैं। उस अर्थ की भूल-विवेचना इस इतिहास के दूसरे भाग के निरुक्त-प्रकरण में होगी।

१—हमारा हस्तलेख पृ० १०क।

६, ७—आरुणिन अथवा आसुरि और ताण्डिन शाखाएं

एक आरुणि शाखा का उल्लेख ऋग्वेद की शाखाओं के वर्णन में हो चुका है। क्या यह शाखा ऋग्वेदीय है, या याजुष, अथवा दोनों वेदों में इस नाम की एक एक शाखा है, यह अभी संदिग्ध है। हो सकता है कि याजुष शाखा का वास्तविक नाम आसुरि शाखा हो। ब्रह्माण्ड पुराण में आरुणि का पाठान्तर आसुरि मिलता है। आसुरि नाम का एक आचार्य याजुष साहित्य में प्रसिद्ध भी है। एक तण्डि ऋषि का नाम अनुशासन पर्व ४८।१७६॥ में मिलता है। इसी पर्व के ४७वें तथा अन्य अध्यायों में भी उस का उल्लेख है। महाभाष्य ४।१।१९॥ में एक आसुरीयः कल्पः लिखा है।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३४४।७॥ में राजा उपरिचरवसु के यज्ञ में महान् ऋषि ताण्ड्य का उपस्थित होना लिखा है। एक ताण्ड्य आचार्य मा० शतपथ ६।१।२।२५॥ में भी स्मरण किया गया है। सामवेद में भी एक ताण्ड्य ब्राह्मण मिलता है। तण्डि और ताण्ड्य का सम्बन्ध, तथा साम और यजुः से सम्बन्ध रखने वाले ताण्ड्य नाम के दो आचार्य थे, वा एक, यह सब अन्वेषणीय है।

८—श्यामायन शाखा

पुराणों के अनुसार वैशंपायन के प्रधान शिष्यों में से एक श्यामायन है। परन्तु चरणव्यूहों में श्यामायनीय लोग मैत्रायणीयों का अवान्तर भेद कहे गए हैं। महाभारत अनुशासन पर्व ७।५५॥ के अनुसार श्यामायन विश्वामित्र गोत्र का कहा गया है। इस विषय में इस से अधिक हम अभी तक नहीं जानते।

९—कठ अथवा काठक शाखा

जिस प्रकार वैशंपायन चरक के सब शिष्य चरक कहाते हैं, वैसे ही कठ के भी समस्त शिष्य कठ ही कहाते हैं। अष्टाध्यायी ४।३।१०७॥ का भी यही अभिप्राय है। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३४४ में जहां राजा उपरिचरवसु के यज्ञ का वर्णन है, वहां १६ ऋत्विजों में से आद्य कठ भी एक था—

आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशंपायनपूर्वजः ॥९॥

इस से प्रतीत होता है कि अनेक कठों में जो प्रधान कठ था, अथवा जो उन सब का मूल गुरु था, उसे ही आद्य कठ कहा है। महाभारत आदि-पर्व अध्याय ८ में शुनक के पिता रुरु का आख्यान है। भृगु कुल में च्यवन एक ऋषि था । इस के कुल का वर्णन अनुशासनपर्व अध्याय ८ में भी स्वल्प पाठान्तरों से मिलता है । इस च्यवन का पुत्र प्रमति था । प्रमति का रुरु और रुरुसुत शुनक था। इसी शुनक का पुत्र सुप्रसिद्ध शौनक था। रुरु का विवाह स्थूलकेश ऋषि की पालिता कन्या प्रमद्वरा से हुआ। प्रमद्वरा को सांप ने काट खाया । उस समय अनेक द्विजवर वहां उपस्थित हुए। पूना संस्करण के अनुसार आदिपर्व के आठवें अध्याय का २२९वां प्रक्षेप निम्नलिखित है—

उद्दालकः कठश्चैव श्वेतकेतुस्तथैव च ।

सभापर्व अध्याय ४।२४॥ के अनुसार युधिष्ठिर की दिव्य-सभा के प्रवेश संस्कार समय कालाप और कठ वहां विद्यमान थे।

कठ एक चरण है

कठ एक चरण है । इस की अवान्तर शाखाएं अनेक होंगी। काशिकावृत्ति ४।२।४६॥ में लिखा है—

चरणशब्दाः कठकालापादयः ।

कम से कम दो कठ तो चरणव्यूहों में कहे गए हैं, अर्थात् प्राच्य कठ और कपिष्ठल कठ। एक मर्चकठ आथर्वण चरणव्यूह में वर्णित हैं।

काठक आम्नाय

व्याकरण महाभाष्य ४।३।१२॥ के अनुसार कठों का धर्म वा आम्नाय काठक कहाता है। इस आम्नाय की महाभाष्य ४।२।६६॥ में बड़ी प्रशंसा है—

यथेह भवति–पाणिनीयं महत् सुविहितम् इत्येवमिहापि स्यात् कठं महत् सुविहितमिति ।

अर्थात्—पाणिनि का ग्रन्थ महान् और सुन्दर रचना वाला है। तथा कठों का ग्रन्थ [श्रौतसूत्र आदि ?] भी महान् और सुन्दर रचना वाला है।

कठ देश और कठ जाति

कठों का सम्प्रदाय अत्यन्त विस्तृत था। पुराणों के पूर्वलिखित प्रमाणों के अनुसार कठ उत्तरदेशीय था। उत्तर दिशा में अल्मोड़ा, गढ़वाल, कमाऊं, काश्मीर, पञ्जाब और अफ़गानिस्तान आदि देश हैं। इन में से कठ कोई देश विशेष होगा। उस देश में कठ जाति का निवास था। महाभाष्य में—पुंवत् कर्मधारय-जातीय-देशीयेषु। ६।३।४२॥ सूत्र के व्याख्यान में लिखा है—

जातेश्च [४१] इत्युक्तं तत्रापि पुंवद्भवति। कठी वृन्दारिका कठवृन्दारिका। कंठजातीया कठदेशीया।

अर्थात्—कठ जाति अथवा कठ देश की स्त्री।

सम्प्रति कठ ब्राह्मण काश्मीर प्रदेश में ही मिलते हैं। महाभाष्य ४।३।१०१॥ के अन्तर्गत पतञ्जलि का कथन है कि उस के समय में ग्राम ग्राम में कठ संहिता आदि पढ़े जाते थे—

ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते।

नासिक में एक ब्राह्मण ने हम से कभी कहा था कि मूलतापी निवासी कुछ कठ ब्राह्मण उन्हें एक वार मिले थे। वे अपनी संहिता जानते थे। मूलतापी दक्षिण में है। वहां हमें जाने का अवसर नहीं मिला। परन्तु यह बात हमारे ध्यान में नहीं आई, तथापि इस का निर्णय होना चाहिए।

क्या कट्यूरों का कठों से कोई सम्बन्ध है

कमाऊं प्रदेश के उत्तर की ओर एक पार्वत्य स्थान है। उस का नाम कट्यूर है। वहां सूर्यवंशी कट्यूरी राजा राज्य करते रहे हैं। पूर्वकाल में उन की राजधानी जोशीमठ में थी। एक महाशय हम से कहते थे कि यही लोग कठार्य हैं। वे ऐसा भी कहते थे कि काठिवाड़ की काठी जाति भी कठ जाति ही है, और कभी उत्तरीय कट्यूरों और काठियों का परस्पर सम्बन्ध भी था। ये बातें अभी हमारी समझ में नहीं आईं। इन को सिद्ध करने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता है।

कठ और लौगाक्षी

काठकगृह्य सूत्र लाहौर और श्रीनगर, काश्मीर में मुद्रित हो चुका

है । कई हस्तलेखों में इसे लौगाक्षिगृह्य भी कहा गया है । इस से प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कठ और लौगाक्षी समान व्यक्ति थे । हमारा विचार है कि ये दोनों भिन्न भिन्न व्यक्ति थे। हो सकता है कि काठक शाखा पर लौगाक्षी का ही कल्प हो, और उसी का नाम काठक यज्ञसूत्र या काठक कल्प हो गया हो। परन्तु कठ का यदि कोई यज्ञसूत्र था, तो लौगाक्षी का सूत्र उस से पृथक् रहा होगा। पुनः वहुसमानता के कारण ये दोनों सूत्र परस्पर मिल कर एक हो गए होंगे। इस पर विचार-विशेष कल्प-सूत्र-भाग में करेंगे। वैखानसों की आनन्द-संहिता में काठकसूत्र से लौगाक्षिसूत्र सर्वथा पृथक् गिना गया है । अतः इन दोनों सूत्रों के विभिन्न होने की बड़ी संभावना है। पाणिनीय सूत्र ४।३।१०६॥ के गण में **काठशाठिनः** या **काठशाडिनः** प्रयोग मिलता है। तथा ६।२।३७॥ के गणान्तर्गत **कठकालापाः** और **कठकौथुमाः** प्रयोग मिलते हैं। इन स्थलों में कठों के साथ स्मरण हुए आचार्यों का गहरा सम्बन्ध होगा। पाणिनीयसूत्र ७।४।३॥ पर हरदत्त अपनी पदमञ्जरी में लिखता है—

वह्वृचानामप्यस्ति कठशाखा ।

हमें इस वात की सत्यता में सन्देह है।

कठ वाङ्मय

काठक संहिता अध्यापक श्रौडर की कृपा से मुद्रित हो चुकी है। कठ ब्राह्मण के कुछ अंश डा० कालेण्ड ने मुद्रित किए थे । अव वे और अन्य नूतनोपलब्ध अंश हमारे मित्र अध्यापक सूर्यकान्त जी लाहौर में मुद्रित कर रहे हैं। कठों की एक पद्धति मैं ने लाहौर से प्राप्त की थी। उस में कठ ब्राह्मण के अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं, जो अन्यत्र नहीं मिले थे । इस ब्राह्मण का नाम **शताध्ययन** ब्राह्मण भी था । न्यायमञ्जरीकार भट्ट जयन्त ऐसा ही लिखता है।[1] काठक यज्ञ-सूत्र अभी तक अनुपलब्ध है। हां, इस का गृह्य-भाग मुद्रित हो चुका है। लौगाक्षिधर्मसूत्र का एक प्रमाण गौतम-धर्मसूत्र १०।४२॥ के मस्करी भाष्य में उद्धृत है।

कुछ चरणव्यूहों में लिखा है—

१—न्यायमञ्जरी, विजयनगर ग्रन्थमाला, पृ० २५८ ।

तत्र कठानान्तूपगा यजुर्विशेषाः । चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्थाः ।

अन्य चरणव्यूहों में इस के स्थान में निम्नलिखित पाठ है—

तत्र कठानान्तु बुकाध्ययनादिविशेषः । चत्वारिंशदुपग्रन्थाः । तन्नास्ति यन्न काठके ।

अर्थात्—काठकों के चालीस या चवालीस उपग्रन्थ हैं । बुकाध्ययन कदाचित् शताध्ययन हो । जो काठक में नहीं वह कहीं नहीं ।

कठ आरण्यक या कठ-प्रवर्ग्यब्राह्मण का त्रुटित पाठ श्रौडर ने मुद्रित किया था । कठ उपनिषद् तो प्रसिद्ध ही है । एक कठश्रुत्युपनिषद् भी मुद्रित हो चुका है । कठों से सम्बन्ध रखने वाली एक लौगाक्षिस्मृति है । इस का पाठ ४००० श्लोक के लगभग है । इस का हस्तलेख हमारे मित्र श्री पं० राम अनन्तकृष्ण शास्त्री ने हमें दिया था । वह अब दयानन्द कालेज के पुस्तकालय में सुरक्षित है ।

गोत्र प्रवरमञ्जरी नामक ग्रन्थ में पुरुषोत्तम पण्डित लौगाक्षि-प्रवर-सूत्र के अनेक लम्बे पाठ उद्धृत करता है । वह लौगाक्षिसूत्र कात्यायन-प्रवर-सूत्र से बहुत मिलता जुलता है । वाजसनेयों के साथ भी कई कठों का सम्बन्ध बताया जाता है । वह सम्बन्ध कैसा था, यह अन्वेषणीय है ।

विष्णु स्मृति भी कठशाखीय लोगों का ग्रन्थ है । वाचस्पति अपने श्राद्धकल्प या पितृभक्तितरंगिणी में लिखता है—

यत्त्वग्निं परिस्तीर्य पौष्णं श्रपयित्वा पूषा गा इति विष्णुस्मृतावुक्तं तत्कठशाखिपरं तस्य तत्सूत्रकारत्वात् ।[1]

अर्थात्—विष्णुस्मृति कठशाखा सम्बन्धी है ।

१०—कालाप शाखा

वैशंपायन का तीसरा उत्तरदेशीय शिष्य कलापी था । इसी का उल्लेख अष्टाध्यायी ४।३।१०४, १०८।। में मिलता है । महाभारत सभा-पर्व ४।२४।। के अनुसार युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश-समय एक कालाप भी वहां उपस्थित था । कलापी की संहिता कालाप संहिता कहाती है, और उस के शिष्य भी कालाप कहाते हैं ।

१—काणे के धर्मशास्त्रेतिहास में उद्धृत पृ० VI

कलापग्राम

नन्दलाल दे के भौगोलिक कोशानुसार कलाप ग्राम वदरिकाश्रम के समीप ही था । सम्भव है कि कलापी का वास-स्थान होने से इस का नाम कलापग्राम हो गया हो। वायुपुराण ४१।४३॥ में इस की स्थिति का वर्णन है।

कलापी के चार शिष्य

अष्टाध्यायी ४।३।१०४॥ पर काशिका-वृत्ति में किसी प्राचीन ग्रन्थ का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

हरिद्रुरेषां प्रथमस्ततश्छगलितुम्बुरू ।
उलपेन चतुर्थेन कालापकमिहोच्यते ॥

अर्थात्—चार कालाप हैं । पहला हरिद्रु, दूसरा छगली, तीसरा तुम्बुरू और चोथा उलप ।

मैत्रायण और कालापी

चरणव्यूहों के एक पाठानुसार मानव, वाराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय और श्यामायनीय मैत्रायणीयों के छः भेद हैं । दूसरे पाठानुसार मानव, दुन्दुभ, ऐकेय, वाराह, हारिद्रवीय, श्याम और श्यामायनीय सात भेद हैं । इन में से हरिद्रु नाम दोनों पाठों में समान है । प्रथम पाठ में छगली भी एक नाम है । हरिद्रु और छगली कलापि-शिष्य हैं । निरुक्त १०।५॥ पर भाष्य करते हुए आचार्य दुर्ग लिखता है—

हारिद्रवो नाम मैत्रायणीयानां शाखाभेदः ।

इस से कई लोग अनुमान करते हैं कि मैत्रायण और कलापी कदाचित् समान व्यक्ति हों ।

व्याकरण महाभाष्य में लिखा है कि कठ और कालाप संहिताएं ग्राम ग्राम में पढ़ी जाती हैं। वस्तुतः ये दोनों संहिताएं बहुत समान होंगी। मुद्रित काठक और मैत्रायणीय संहिताएं बहुत मिलती जुलती हैं । आचार्य विश्वरूप याज्ञवल्क्यस्मृति १।७॥ पर अपनी बालक्रीडा टीका में लिखता है—

न हि मैत्रायणीशाखा काठकस्यात्यन्तविलक्षणा ।

अर्थात्—मैत्रायणी शाखा काठक से बहुत भिन्न नहीं है ।

इन बातों से एक अनुमान हो सकता है कि मैत्रायणी और कालाप

एक ही संहिता के दो नाम हैं । परन्तु दूसरा अनुमान यह भी हो सकता है कि मैत्रायणी और कालाप दो संहिताएं थीं, और परस्पर बहुत मिलती थीं।

यदि मैत्रायणी और कालाप दो भिन्न २ संहिताएं थीं, तो सम्प्रति कालाप संहिता और ब्राह्मण का हमें ज्ञान नहीं है, अस्तु । हरिद्रु आदि जो चार कालापक अभी कहे गए हैं, उन का वर्णन आगे किया जाता है ।

११—हारिद्रवीय शाखा

हरिद्रु के कुल, जन्म, स्थान आदि के विषय में हम कुछ नहीं जान सके । इस शाखा का ब्राह्मणग्रन्थ तो अवश्य विद्यमान था । सायणकृत ऋग्वेदभाष्य ५।४०।८॥ और निरुक्त १०।५॥ में वह उद्धृत है ।

वायुपुराण ६१।६६॥ तथा ब्रह्माण्डपुराण पूर्व भा० ३५।७५॥ में अध्वर्यु-छन्द-संख्या गिनते समय लिखा है—

तथा हारिद्रवीयाणां खिलान्युपखिलानि तु ।

अर्थात्—हारिद्रविक शाखा वालों के खिल और उपखिल भी हैं।

प्रतीत होता है कि हारिद्रविकों की पूर्ण गणना के श्लोक इन दोनों पुराणों में से लुप्त हो गए हैं। कई ग्रन्थों में हारिद्रविकों के पांच अवान्तर भेद कहे गए हैं। यथा—हारिद्रव, आसुरि, गार्ग्य, शार्कराक्ष और अग्रावसीय इन में से हारिद्रव तो वर्णन किए गए हैं, शेष चार कदाचित् खिल और उपखिल ही हों ।

१२—छागलेय शाखा

छगली ऋषि के शिष्य छागलेय कहाते हैं। अष्टाध्यायी ४।३।१०९॥ के अनुसार उन्हें छागलेयी भी कहते हैं ।

छागलेयश्रौत का एक सूत्र शांखायन श्रौत ६।१।७॥ के आनर्तीय भाष्य में उद्धृत मिलता है । सन् १९२५ में अध्यापक श्रीपादकृष्ण बेल्वेल्कर ने छागलेयोपनिषद् मुद्रित कर दिया था ।

छागलेयस्मृति के श्लोक भी निबन्ध-ग्रन्थों में उद्धृत मिलते हैं ।

१३, १४—तुम्बुरु और उलप शाखाएं

एक तुम्बुरु सामवेदीय है। इस याजुष तुम्बुरु और उलप का हमें कुछ ज्ञान नहीं है ।

अब चरणव्यूहों में चरकों के जो बारह भेद कहे गए हैं, वे आगे लिखे जाते हैं । इन में से चरकों और कठों का वर्णन पहले हो चुका है, अतः शेष दस भेद ही लिखेंगे ।

१५—आह्वरक शाखा

आह्वरकों के संहिता और ब्राह्मण दोनों ही विद्यमान थे । ब्राह्मण सम्बन्धी उल्लेख जहां जहां मिलता है, वह यथास्थान लिखा जायगा। आह्वरक शाखा का एक मन्त्र यादवप्रकाश पिङ्गलसूत्र ३।१५॥ की अपनी टीका में उद्धृत करता है । पृ० १४१ पर संख्या ५ के अन्दर वह मन्त्र लिखा जा चुका है।

१६—प्राच्यकठ शाखा

इस शाखा का अब नाममात्र ही शेष रह गया है । किसी प्राच्य देश में रहने वाला उत्तरीयकठ का कोई शिष्य ही इस शाखा का प्रवचन-कर्ता होगा। अष्टाध्यायी ४।३।१०४॥ पर व्याकरण महाभाष्य में एक वार्तिक पढ़ा गया है । उस पर पतञ्जलि लिखता है कि **कठान्तेवासी खाडायन** था। इस खाडायन का प्राच्य आदि कठों में से किस से सम्बन्ध था, यह जानना चाहिए ।

१७—कपिष्ठल कठ शाखा

जिस प्रकार प्राच्यकठ देशविशेष की दृष्टि से प्राच्य कहाते हैं; क्या वैसे ही कपिष्ठल कठ भी देशविशेष की दृष्टि से कपिष्ठल कहाते हैं, यह विचारणीय है। पाणिनीय गण २।४।६९॥ और पाणिनीय सूत्र ८।३।९१॥ में गोत्रवाची कपिष्ठल शब्द विद्यमान है । इस शाखा की संहिता आठ अष्टकों और ६४ अध्यायों में विभक्त थी। सम्प्रति प्रथमाष्टक, चतुर्थाष्टक, पञ्चमाष्टक और षष्ठाष्टक ही मिलते हैं । इन में से भी कई स्थानों का पाठ त्रुटित हो गया है। यह लस्तलेख काशी में सुरक्षित है । सन् १९३२ के अन्त में यह संहिता लाहौर में मुद्रित हो गई है। इस का मुद्रण मेरी प्रति से हुआ है। यह प्रति भी बनारस के ही हस्तलेख की नकल है और अब दयानन्द कालेज के पुस्तकालय में है।

कपिष्ठल कठ गृह्य का एक हस्तलेख मैं ने ७ अगस्त सन् १९२८

को सरस्वती भवन काशी के पुस्तकालय में देखा था । उस का बहुत सा पाठ त्रुटित है ।

कपिष्ठल कठों का कोई अन्य ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया ।

१८—चारायणी शाखा

चर ऋषि का गोत्रापत्य चारायण है । चर का नाम पाणिनीय गण ४।१।९९॥ में स्मरण किया गया है । देवपाल के गृह्यभाष्य में कहीं चारायणीय गृह्य और कहीं काठकगृह्य नाम का प्रयोग मिलता है। संभव है कि स्वल्प भेद वाले दो गृह्यों को तत् तत् शाखा वाले एक ही भाष्य के साथ पढ़ते हों, और उन्हीं के कारण हस्तलेखों में ये दो नाम आ गए हों। चारायणीय एक शाखाविशेष थी, और उस का एक स्वतन्त्र गृह्य रखना उचित ही है। चारायणीयों का एक मन्त्रार्षाध्याय अब भी मिलता है। उस का एक हस्तलेख दयानन्द कालेज लाहौर में और दूसरा बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय में है। अध्यापक हैल्मथ फान ग्लैसनप ने बर्लिन के हस्तलेख के पाठान्तर, लाहौर की मुद्रित प्रति पर करा कर मुझे भेजे थे। ये पाठान्तर उन के शिष्य ने दिए हैं। शोक से कहना पड़ता है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका।

इस मन्त्रार्षाध्याय के देखने से निम्नलिखित बातों का पता लगता है—

१—चरायणीय संहिता का विभाग अनुवाकों और स्थानकों में था । इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही लिखा है—**गोषदसि इत्यनुवाकद्वयं सवितुरश्यावाश्वस्य**। तथा ४० खण्ड के साथ **स्था** लिखा है, यदि काठकसंहिता को देख कर यह नहीं लिखा गया, तो अवश्य ही चारायणीय संहिता भी स्थानकों में विभक्त थी।

२—चारायणीय संहिता में याज्यानुवाक्या ऋचाएं चालीसवें स्थानक के अन्त में एकत्र पढ़ी गई थीं । काठक संहिता में वे यत्रतत्र बहुत स्थानों में पाई जाती हैं ।

३—चारायणीय संहिता में कहीं तो काठक संहिता का क्रम था और कहीं मैत्रायणीय संहिता का ।

४—चारायणी सं० के कई पाठ काठक में नहीं हैं और कई मैत्रायणी में नहीं हैं ।

५—चारायणीय संहिता के अन्त में अश्वमेधादि का पाठ था। मन्त्रार्षाध्याय के अन्त में लिखा है—

प्राजापतिमुखात् पूर्वमार्षं छन्दश्च दैवतम्।
योगः प्राप्तोत्रिमुनिना बोधो लौगाक्षिणा ततः॥

अर्थात्—ऋषि, छन्द और देवता अत्रि मुनि ने प्रजापति से प्राप्त किए और तदनन्तर लौगाक्षी को उन का ज्ञान हुआ।

काठक गृह्य ५।१॥ के भाष्य में देवपाल किसी चारायणीय सूत्र से एक प्रमाण देता है। वह प्रातिशाख्य-पाठ प्रतीत होता है।

एक चारायण आचार्य कामसूत्र १।१।१२॥ में स्मरण किया गया है। वह कामसूत्र-रचयिता वात्स्यायन से पूर्व और दत्तक के पश्चात् हुआ होगा। दीर्घचारायण नाम के एक ब्राह्मण की वार्ता कौटल्य अर्थशास्त्र प्रकरण ९३ में मिलती है। पं० गणपति की टीका के अनुसार यह विद्वान् कौटल्य से पुरातन किसी मगध-राज्य का आचार्य था।

एक चारायणीय शिक्षा भी कश्मीर से प्राप्त हुई थी। उस का उल्लेख इण्डियन एण्टीक्वेरी जुलाई सन् १८७६ में अध्यापक कीलहार्न ने किया है।

व्याकरण महाभाष्य १।१।७३॥ में कम्बलचारायणीयाः प्रयोग मिलता है।

१९—वारायणीय शाखा

वारायणीय नाम यद्यपि दो प्रकार के चरणव्यूहों में पाया जाता है, तथापि इस के अस्तित्व में हमें सन्देह है। कदाचित् चारायणीय से ही यह नाम बन गया हो।

२०—वार्तन्तवीय शाखा

शाखाकार वरतन्तु का उल्लेख पाणिनीय सूत्र ४।३।१०२॥ में मिलता है। कालिदास अपने रघुवंश ५।१॥ में एक कौत्स के गुरु वरतन्तु का नाम लिखता है। इन के किसी ग्रन्थादि का हमें अभी तक पता नहीं लग सका।

२१—श्वेताश्वतर शाखा

श्वेताश्वतरों के ब्राह्मण का एक प्रमाण बालक्रीडा टीका भाग १

पृ० ८ पर उद्धृत है । श्वेताश्वतरों की मन्त्रोपनिषद् प्रसिद्ध ही है । इस मन्त्रोपनिषद् के अतिरिक्त इस शाखा वालों की एक दूसरी मन्त्रोपनिषद् भी थी। उस का एक मन्त्र अस्य वामीय सूक्त भाष्यकार आत्मानन्द १६वें मन्त्र के भाष्य में उद्धृत करता है । वह मन्त्र उपलब्ध उपनिषद् में नहीं मिलता ।

२२, २३—औपमन्यव और पाताण्डनीय शाखाएं

औपमन्यव एक निरुक्तकार था। उस का उल्लेख यथास्थान होगा। औपमन्यव शाखा के किसी ग्रन्थ का भी हमें ज्ञान नहीं है। ब्रह्माण्ड पुराण मध्यम भाग ८।९७, ९८॥ में कुणी नामक इन्द्रप्रमति के कुल का वर्णन है। वहां लिखा है कि वसु का पुत्र उपमन्यु और उस के पुत्र औपमन्यव थे। अगली पाताण्डनीय शाखा का भी कुछ पता नहीं लग सका ।

२४—मैत्रायणीय शाखा

इस शाखा का प्रवचन-कर्ता मैत्रायणी ऋषि होगा। उत्तर पाञ्चाल कुलों में दिवोदास नाम का एक राजा था । उस का पुत्र ब्रह्मर्षि महाराज मित्रयु और उस का पुत्र मैत्रायण था। हरिवंश ३२।७६॥ में इसी मैत्रायण के वंशज मैत्रेय कहे गए हैं । ये मैत्रेय भार्गव पक्ष में मिश्रित हो गए थे। मैत्रायणी ऋषि इन से भिन्न कुल का प्रतीत होता है । इसी मैत्रायणी आचार्य के शिष्य प्रशिष्य मैत्रायणीय कहाए ।

मैत्रायणीय संहिता मुद्रित हो चुकी है । शार्मण्यदेशीय अध्यापक श्रौडर को इस के सम्पादन का श्रेय है । इस शाखा का ब्राह्मण था वा नहीं, इस का विवेचन यथास्थान करेंगे ।

मैत्रायणीय और तत्सम्बन्धी आचार्यों का ज्ञान मानवगृह्यपरिशिष्ट के तर्पण प्रकरण से सुविदित होता है,अतः वह आगे उद्धृत किया जाता है—

प्राचीनावीति ।

सुमन्तुजैमिनिपैलवैशंपायनाः सशिष्याः ।
भृगुच्यवनाप्रवानौरवजामदग्नयः सशिष्याः ।
आङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्व-हरिद्रछागलिर्लवय (?)
तुम्बुरु औलंपायनाः सशिष्याः ।

मानववराहदुंदुभिकपिलबादरायणाः सशिष्याः ।
मनुपराशरयाज्ञवल्क्यगौतमाः सशिष्याः ।
मैत्रायण्यासुरीगार्गिशाक्र ऋषयः सशिष्याः ।
आपस्तम्बकात्यायनहारीतनारदवैजंपायनाः सशिष्याः ।
शालंकायनांतर्कमन्तकायिनाः(?) सशिष्याः ।[1]

इस दूसरे अर्थात् अन्तिम खण्ड के पाठ में तीन नामों के अतिरिक्त शेष सब नाम स्पष्ट हैं । यहां हरिद्रु आदि एक गण में, मानव, वराह आदि दूसरे गण में और मैत्रायणी, आसुरी आदि एक पृथक् गण में पढ़े गए हैं ।

एक मैत्रायणी वाराहगृह्य ९।१॥ में स्मरण किया गया है ।

माध्यन्दिन, काण्व, काठक और चारायणीय संहिताओं के समान मैत्रायणीय संहिता में भी चालीस अध्याय हैं ।

सम्प्रति मैत्रायणी संहिता खानदेश, नासिकक्षेत्र और मोर्वी आदि देशों में पढ़ी जाती है । इस शाखा के कल्प अनेक हैं । उन में से कई एक गृह्य के हस्तलेखों के अन्त में मैत्रायणीगृह्य और कई एक के अन्त में मानवगृह्य लिखा मिलता है । हमारा अनुमान है कि इन दोनों सूत्रों की अत्यन्त समानता के कारण, आधुनिक पाठक इन्हें एक ही गृह्य मानने लग पड़े हैं । नासिक में हमने यज्ञेश्वर दाजी के घर में मैत्रायणी संहिता का एक कोश देखा था । उस के अन्त में लिखा था—

इति मैत्रायणी-मानव-वाराहसंहिता समाप्ता ॥

इस से प्रतीत होता है कि इन तीनों शाखाओं के पृथक् पृथक् गृह्य थे । यदि मैत्रायणी और मानवगृह्य एक ही होते, तो मैत्रायणीश्रौत और मानवश्रौत भी एक ही होते । बात वस्तुतः ऐसी नहीं है । हेमाद्रि आदि में उद्धृत मैत्रायणीश्रौत वा उस के परिशिष्टों के पाठ वाराहश्रौत और उस के परिशिष्टों के पाठ से अधिक मिलते हैं । मैत्रायणी, मानव और वाराहों की यह समस्या इन ग्रन्थों के भावी सम्पादकों को सुलझानी चाहिए ।

स्मरण रखना चाहिए कि इन तीनों शाखाओं के शुल्वसूत्रों में

१—मेरा हस्तलेख, मानवगृह्यपरिशिष्टे पञ्चमहायज्ञविधानम् पत्र २ख ।

शाखा-भेदक पर्याप्त विभिन्नता है । महाशय विभूतिभूषणदत्त के अनुसार मैत्रायणी में चार, मानव में सात और वाराह में तीन ही खण्ड हैं ।[१] परन्तु मैत्रायणी और मानव के दत्तनिर्दिष्ट खण्ड-विभाग में हमें अभी सन्देह है ।

अब मैत्रायणीयों के अवान्तर भेदों का कथन किया जाता है ।

२५—मानव शाखा

यह सौत्र शाखा ही है। इस के श्रौत का अधिकांश भाग मुद्रित हो चुका है । गृह्य भी कई स्थानों पर छप चुका है । मानवों के श्रौत और गृह्य के अनेक परिशिष्ट हैं । उन के हस्तलेख इस शाखा के पढ़ने वाले कई गृहस्थों के पास मिलते हैं । प्रसिद्ध पुस्तकालयों में भी यत्र तत्र मानवों के कुछ ग्रन्थ पाए जाते हैं । मेरे पास भी कुछ एक ग्रन्थ हैं । मानव परिशिष्टों का संस्करण अत्यन्त उपादेय होगा ।

२६—वाराह शाखा

वराह ऋषि महाराज युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश समय उन के राज दरबार में उपस्थित था । इस का श्रौत श्रीयुत मेहरचन्द लक्ष्मणदास संस्कृत पुस्तक-विक्रेता लाहौर द्वारा मुद्रित हो गया है । उस का पाठ कई स्थलों पर त्रुटित है । यत्न करने पर इस के पूर्ण हस्तलेख नन्दुर्बार[२] आदि से अब भी मिल सकेंगे । वाराह श्रौत के परिशिष्ट भी मुद्रित होने योग्य हैं । इन का विस्तृत वर्णन कल्पसूत्रों के भाग में करेंगे । वाराह गृह्य भी पञ्जाब यूनिवर्सिटी की ओर से मुद्रित हो चुका है । इस संस्करण के लिए जो दो हस्तलेख काम में लाए गए हैं, वे नासिकक्षेत्र वासी श्री रामचन्द्र पौराणिक ने हमें दिए थे । उस ब्राह्मण का घर गोदावरी-तट पर बड़े पुल के पास है । कभी वह नदी में स्नान कर रहा था, जब एक वृद्धा ने पुस्तकों का एक बण्डल नदी में डाल दिया । ब्राह्मण ने उसे निकाल लिया और अन्य हस्तलेखों के साथ वाराहगृह्य के भी दो हस्तलेख सम्भाल लिए । उन्हीं हस्तलेखों के आधार पर यह संस्करण मुद्रित हुआ है । मैं यहां पर उन का धन्यवाद करना अपना कर्तव्य समझता हूं ।

1—The Science of the Sulba, Calcutta, 1932. p. 6.

२—यह स्थान खानदेश में है ।

यहां पर यह और लिखना अरुचिकर न होगा कि इसी ब्राह्मण के ज्येष्ठ भ्राता से मैं ने मैत्रायणी संहिता का सस्वर पाठ सुना है। और संहिताओं के पाठ से इसमें कुछ भिन्नता है। यह संहितापाठी ब्राह्मण इस समय बैलगाड़ी चला कर अपनी आजीविका करता है। काल की गति का क्या कहना है!

२६—दुन्दुभ शाखा

इस शाखा का तो अब नाममात्र ही अवशिष्ट है।

२७—ऐकेय शाखा

कई चरणव्यूहों में मानवों का एक भेद ऐकेयों का कहा गया है। एक ऐकेय आचार्य का मत अनुग्राहिक सूत्र[1] खण्ड १६ में दिया गया है।

२८—तैत्तिरीय शाखा

वैशंपायन के शिष्यों अथवा प्रशिष्यों में से एक तित्तिरि था। महाभारत के प्रमाण से पृ० १७७ पर यह लिखा जा चुका है कि एक तित्तिरि किसी वैशंपायन का ज्येष्ठ भ्राता था। ४।३।१०२॥ सूत्र में पाणिनि का कथन है कि तित्तिरि से छन्द पढ़ने वाले अथवा तित्तिरि का प्रवचन पढ़ने वाले तैत्तिरीय कहाते हैं। युधिष्ठिर की सभा को प्रवेश-समय तित्तिरि भी अलङ्कृत कर रहा था। यही तित्तिरि वेदवेदाङ्ग-पारग और शाखा-प्रवचन-कर्ता था। यादवों का जो सात्वत् विभाग था, उस में कपोतरोम का पुत्र तैत्तिरि, तैत्तिरि का पुत्र पुनर्वसु, और पुनर्वसु का पुत्र अभिजित् कहा गया है। हरिवंश अध्याय ३७ श्लोक १७–१९ में यह वार्ता कही गई है।[2] आयुर्वेद की चरक संहिता के आरम्भ में पुनर्वसु (श्लोक ३०) और अभिजित् (श्लो० १०) के नाम मिलते हैं। यह चरक संहिता है भी वैशंपायन के शिष्यों में से किसी की बनाई हुई। आधुनिक पाश्चात्य अध्यापकों का विचार, कि यह आयुर्वेद-ग्रन्थ कनिष्क के काल में बनाया गया, सर्वथा भ्रान्त है। कनिष्क के काल में चरक शाखा का

१—मानवसूत्र परिशिष्ट, मेरा हस्तलेख, पत्र ९ख।

२—तुलना करो मत्स्य ४४।६२–६९॥

पढ़ने वाला कोई चरक विद्वान् होगा, परन्तु आयुर्वेदीय चरक संहिता बहुत पहले बन चुकी थी। इस पर विस्तृत विचार आगे करेंगे।

तित्तिरि वा तैत्तिरि के सम्बन्ध में अधिक जानने की अभी बड़ी आवश्यकता है।

तित्तिरि-प्रोक्त तैत्तिरीय संहिता में ७ काण्ड हैं। इस विभाग के विषय में प्रपञ्चहृदयकार का लेख देखने योग्य है—

तथा यजुर्वेदे तैत्तिरीयशाखा मन्त्रब्राह्मणमिश्रा। सा द्विविधा संहिताशाखाभेदेन। तत्र संहिता चतुष्पादा सप्तकाण्डा चतुश्चत्वारिंशत्प्रश्ना च। तत्र प्रथमकाण्डेऽष्टौप्रश्नाः। द्वितीयसप्तमौ पञ्च पञ्च। तृतीयचतुर्थौ सप्त सप्त। पञ्चमषष्ठौ षडेकैकौ (?) तस्मादेकादशैकादश प्रश्नाश्चत्वारः पादाः।

अर्थात्—संहिता के सात काण्डों के चार पाद हैं। प्रथम काण्ड में आठ प्रश्न दूसरे सातवें में पांच पांच, तीसरे चौथे में सात सात और पांचवें छटे में छः छः प्रश्न है। कुल प्रश्न—८+५+७+७+६+६+५=४४ हैं। इस लिए ग्यारह ग्यारह प्रश्नों के चार पाद हैं।

तैत्तिरीय संहिता के सात काण्डों में जो विषय विभाग है, वह काण्डानुक्रमणिका में भले प्रकार लिखा गया है। लौगाक्षिस्मृति में इसी विभाग की विस्तृत व्याख्या मिलती है। वहां प्रपाठक और अनुवाकानुसार सारा वर्णन किया गया है। उस वर्णन के कतिपय श्लोक यहां उद्धृत किए जाते हैं—

तानि काण्डानि वेदस्य प्रवदामि च सुस्फुटम्।
पौरोडाशो याजमानं हौतारो हौत्रमेव च॥१॥
पितृमेधश्च कथितो ब्राह्मणेन च तत्परम्।
तथैवानुब्राह्मणेन प्राजापत्यानि चोचिरे॥२॥
तत्काण्डौघविशेषज्ञा वसिष्ठाद्या महर्षयः।
तद्विशेषप्रकाशार्थं सम्यगेतत्विविच्यते॥३॥
पौरोडाशा इषेत्याद्या अनुवाकास्त्रयोदश।
तत्ब्राह्मणं तृतीयस्यां प्रत्युष्टं पाठकद्वयम्॥४॥

एवं चतुश्चत्वारिंशं काण्डानां तैत्तिरीयके।
महाशाखाविशेषस्मिन् कथिता ब्रह्मवादिभिः ॥३८॥[1]

इन श्लोकों से एक बात स्पष्ट है कि वसिष्ठादि महर्षि और ब्रह्मवादी लोग इस काण्डादि विभाग के विशेषज्ञ थे। क्या सम्भव हो सकता है कि उन्हों ने ही ये काण्डादि बनाए हों। तथा तैत्तिरीय एक महाशाखा या चरण है।

तैत्तिरीय और कठों का सम्बन्ध

तैत्तिरीय और कठों का आरम्भ से ही गहरा सम्बन्ध प्रतीत होता है। काण्डानुक्रमणी में कहा है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण के अन्तिम अध्याय काठक कहाते हैं। तित्तिरि का प्रवचन उन से पहले समाप्त हो जाता है। लौगाक्षिस्मृति का कठों से सम्बन्ध है, परन्तु उस में भी तैत्तिरीयों के काण्डविभाग का विस्तृत वर्णन बताता है कि इन दोनों चरणों का आदि से ही सम्बन्धविशेष हो गया था।

तैत्तिरीयों के दो भेद हैं। अब उन का वर्णन किया जाता है।

२९—औखेय शाखा

चरणव्यूह में लिखा है—

तत्र तैत्तिरीयका नाम द्विभेदा भवन्ति। औखेयाः खाण्डिकेयाश्चेति।

अर्थात्—औखेय और खाण्डिकेय नाम के तैत्तिरीयों के दो भेद हैं।

काण्डानुक्रमणी के अनुसार तित्तिरि का शिष्य उखा था। इसी उखा का प्रवचन औखेय कहाता है। पाणिनीय सूत्र ४।३।१०२॥ के अनुसार उखा के शिष्य औखीय थे। औखीय और औखेयों में गोत्रादि का कोई भेद हमें ज्ञात नहीं है। हमें ये दोनों नाम एक ही लोगों के प्रतीत होते हैं। ऐसा ही नामभेद खाण्डिकीय या खाण्डिकेयों का है।

औखेय और वैखानस

वैखानसश्रौतसूत्र की व्याख्या के आरम्भ में एक श्लोक है—

येन वेदार्थं विज्ञाय लोकानुग्रहकाम्यया।
प्रणीतं सूत्रं औखेयं तस्मै विखनसे नमः॥

१—ये अङ्क हम ने लगाए हैं। स्मृति में लगभग २७० श्लोक के पश्चात् ही हमारा पहला श्लोक आरम्भ होता है।

अर्थात्—औखेयों का सूत्र विखना ने बनाया ।

आनन्दसंहिता के आठवें अध्याय में एक श्लोक है—

औखेयानां गर्भचक्रं न्यासचक्रं वनौकसाम् ।
वैखानसान् विनान्येषां तप्तचक्रं प्रकीर्तितम् ॥१३॥
औखेयानां गर्भचक्रदीक्षा प्रोक्ता महात्मनाम् ॥२८॥[1]

अर्थात्—औखेयों की गर्भचक्र से दीक्षा होती है । माता के गर्भ समय यज्ञ करते हुए विष्णु बलि के अवसर पर एक चक्र का चिन्ह चावलों के समूह पर लगाया जाता है । उसे गर्भिणी माता खाती है ।

वैखानसों में भी यह क्रिया ऐसे ही की जाती है ।

प्रपञ्चहृदय के पूर्वोद्धृत पाठ में उखा की शाखा का स्पष्ट वर्णन है । बोधायन गृह्यसूत्र ३।९।६॥ में ऋषितर्पण के समय उखा स्मरण किया गया है । इस शाखा की संहिता वा ब्राह्मण थे या नहीं, और यदि थे तो कैसे थे, इस विषय में हम कुछ नहीं कह सकते । चरणव्यूहों में वैखानसों का कोई उल्लेख नहीं है ।

३०—आत्रेय शाखा

आत्रेयों का उल्लेख काण्डानुक्रमणी और प्रपञ्चहृदय आदि में मिलता है । आत्रेय एक गोत्र है, और इस गोत्र नाम को धारण करने वाले अनेक आचार्य हो चुके हैं । स्कन्द-पुराण नागर खण्ड अध्याय ११५ में अनेक गोत्रों की गणना की है । वहां लिखा है—

आत्रेया दश संख्याताः शुक्लात्रेयास्तथैव च ॥१६॥
कृष्णात्रेयास्तथा पञ्च ॥२३॥

अर्थात्—दश आत्रेय गोत्र वाले दश ही शुक्ल आत्रेय गोत्र वाले, तथा पांच कृष्णात्रेय थे ।

आयुर्वेद की चरक संहिता जो महाभारत-काल में लिखी गई, पुनर्वसु आत्रेय का ही उपदेश है । हमें तो इसी पुनर्वसु आत्रेय का सम्बन्ध इस आत्रेयी संहिता से प्रतीत होता है । लगभग सातवीं शताब्दी का जैन

१—परलोकगत डा० कालेण्ड के ग्रन्थ से उद्धृत, पृ० ११ ।
On the sacred books of the Vaikhanasas, Amsterdam, 1928.

आचार्य अकलङ्कदेव अपने राजवार्तिक के पृ० ५१ और २९४ पर अज्ञान-दृष्टि वाले वैदिक लोगों की ६७ शाखाएं गिनाता हुआ वसु का भी स्मरण करता है । बहुत संभव है कि इस नाम से भी आत्रेय शाखा कभी प्रसिद्ध रही हो । आत्रेय शाखा वाले ही कृष्ण आत्रेय कहाते होंगे । भेल संहिता[1] में पुनर्वसु को चान्द्रभाग लिखा गया है । इस का यही अभिप्राय है कि उस का आश्रम कहीं चन्द्रभागा या चनाब नदी पर था । पुनर्वसु को भेल संहिता[2] में कृष्णात्रेय भी कहा गया है । महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २१२ में लिखा है—

देवर्पिचरितं गर्गो कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम् ॥३३॥

अर्थात्—कृष्ण आत्रेय ने चिकित्सा शास्त्र रचा ।

इन सब स्थलों के देखने से प्रतीत होता है कि पुनर्वसु, पुनर्वसु आत्रेय और कृष्ण-आत्रेय एक ही व्यक्ति के नाम हैं । यह आत्रेय एक चरक था, अतः आयुर्वेद संहिता भी चरक नाम से ही पुकारी जाने लगी थी ।

आत्रेय संहिता का स्वरूप

काण्डानुक्रमणी में जिस संहिता का वर्णन-विशेष किया गया है, वह यद्यपि तैत्तिरीय संहिता से बहुत समानता रखती है, तथापि है वह तैत्तिरीय संहिता नहीं । वह वर्णन तो आत्रेयी संहिता का ही है । आत्रेयी संहिता में याज्या ऋचाएं एक ही स्थान पर हैं । वर्तमान तै०सं० में वे पहले चार काण्डों में यत्र तत्र मिलती हैं । इस प्रकार आत्रेयी संहिता में अश्वमेध प्रकरण भी एक ही स्थान पर है । तै० सं० में ऐसा नहीं है । आत्रेयी संहिता में होतृकर्म भी अन्य स्थान पर था ।

आत्रेय ऋषि तैत्तिरीय संहिता का पदपाठकार भी है । बोधायन गृह्यसूत्र आदिकों में ऋषितर्पण के समय इसे पदकार आत्रेय के नाम से ही स्मरण किया जाता है ।

१—पृ० ३०,३९ । चरकसंहिता, सूत्र स्थान १३।१०१॥ में भी ऐसा ही कथन है ।

२—पृ०२६, ९८ ।

३१—वैखानस शाखा

वैखानस शाखा सौत्र शाखा ही है । इस का कल्प सम्प्रति उपलब्ध है । इस का वर्णन कल्प-सूत्र-भाग में होगा ।

वैखानसों का वर्णन अध्यापक कालेण्ड के ग्रन्थ में देखने योग्य है ।[1]

३२—खाण्डिकीय शाखा

पाणिनीय सूत्र ४।३।१०२॥ में खण्डिक का नाम स्मरण किया गया है। उसी के शिष्य खाण्डिकीय कहाते हैं । इन की संहिता वा ब्राह्मण का हमें कुछ पता नहीं लग सका । एक खण्डिक या षण्डिक औद्धारि मै० सं० १।४।१२॥ तथा जै० ब्रा० २।१२२॥ में स्मरण किया गया है। औद्धारि विशेषण से पता लगता है कि इस के पिता का नाम उद्धार था । दूसरे किसी खण्डिक का अभी तक हमें पता नहीं लगा ।

चरणव्यूहों में खाण्डिकेयों की पांच शाखाएं कही गई हैं ।

३३–३७—पांच खाण्डिकीय शाखाएं

खाण्डिकीय शाखाओं के विषय में चरणव्यूहों का पाठ दो प्रकार का है । एक पाठ में नाम हैं—

कालेता शाट्यायनी हिरण्यकेशी भारद्वाजी आपस्तम्बी ।

दूसरे पाठ में नाम हैं—

आपस्तम्बी बौधायनी सत्याषाढी हिरण्यकेशी औधेयी ।

इन दोनों पाठों में से तीन नाम हमारी समझ में नहीं आए । वे हैं—कालेता, शाट्यायनी और औधेयी । आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ, हिरण्यकेशी और भारद्वाज सौत्र शाखाएं हैं । इन का वर्णन कल्प-सूत्र-भाग में होगा । इन सब के कल्पग्रन्थ उपलब्ध हैं ।

३८—वाधूल शाखा

तैत्तिरीय संहिता से सम्बन्ध रखने वाली केरल-देश-प्रसिद्ध एक और भी सौत्र शाखा है । वह है वाधूल शाखा । इस का कल्प भी अब प्राप्त हो गया है ।

1—On the sacred books of the Vaikhanasas, Amsterdam, 1928.

३९, ४०—कौण्डिन्य और अग्निवेश शाखाएं

कृष्ण यजुर्वेद वालों की दो और सौत्र शाखाएं हैं। वे हैं कौण्डिन्य और अग्निवेश। इन के नाम आनन्द-संहिता में मिलते हैं। वहां यजुर्वेद के पन्द्रह सूत्रग्रन्थ गिनाए हैं। उन में कौण्डिन्य और अग्निवेश के अतिरिक्त तीन और भी सूत्र हैं, जो सम्प्रति लुप्त हैं। उन लुप्त सूत्रों के याजुष-सूत्र होने का हमें सन्देह है, अतः वे यहां नहीं लिखे गए। कौण्डिन्य और अग्निवेश सूत्र से उद्धृत वचन कई ग्रन्थों में मिलते हैं। उन का उल्लेख आगे होगा। कुण्डिन को बोधायन आदि गृह्यों के तर्पण प्रकरण में तैत्तिरीयों का वृत्तिकार भी कहा गया है, अतः उस के कल्प का याजुष होना बहुत संभव है। अग्निवेश कल्प का रचयिता वही आचार्य प्रतीत होता है जिस ने कि आयुर्वेदीय चरक-संहिता का निर्माण किया था। वह कृष्ण-यजुर्वेदीय आत्रेय का शिष्य था, अतः उस का कल्प भी याजुष ही होगा।

४१—हारीत शाखा

यह भी एक सौत्र शाखा है। हारीत श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र के वचन अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। बोधायन, आपस्तम्ब और वसिष्ठ धर्मसूत्रों में हारीत का मत बहुधा उद्धृत किया गया है। धर्मशास्त्रेतिहास लेखक काणे के अनुसार हारीत भगवान् मैत्रायणी का स्मरण करता है।[१] मानव श्राद्धकल्प और मैत्रायणी परिशिष्टों के कई वचन हारीत के वचनों से बहुत मिलते हैं। अतः अनुमान होता है कि हारीत भी कृष्ण यजुर्वेद का सूत्रकार था।

एक हारीत किसी आयुर्वेद संहिता का भी रचयिता था। एक कुमार हारीत का नाम बृहदारण्यक उपनिषद् ४।६।३॥ में मिलता है।

कृष्ण यजुर्वेद की ४१ शाखाओं का वर्णन हो चुका। इन के साथ कठों की यदि ४४ उपशाखाएं मिला दी जाएं, तो कुल ८५ शाखाएं बनती हैं। चाहिएं वस्तुतः ये ८६। यदि ८६ संख्या इसी प्रकार पूर्ण होनी चाहिए, तो हम कह सकते हैं कि कृष्ण यजुर्वेद का पर्याप्त

१—पृ० ७१।

वाङ्मय हमें उपलब्ध है। अस्तु, शेष ग्रन्थों के खोजने का यत्न करना चाहिए।

कृष्ण यजुर्वेद की मन्त्र संख्या

चरणव्यूहों का एक पाठ है—

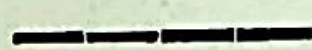
अष्टादश यजुः सहस्राण्यधीत्य शाखापारो भवति।

दूसरा पाठ है—

अष्टाशत यजुसहस्राण्यधीत्य शाखापारो भवति।

प्रथम पाठ के अनुसार यजुः संख्या १८००० है और दूसरे पाठ के अनुसार तो संख्या बहुत अधिक है। दूसरा पाठ वस्तुतः अशुद्ध है। शुक्ल यजुः में ऋक्संख्या १९०० है। क्या कृष्णयजुः में भी ऋक्संख्या इतनी ही होगी?

याजुष शाखाओं का वर्णन हो चुका। अब आगे सामशाखाओं का वर्णन किया जाएगा।



दशम अध्याय

सामवेद की शाखाएं

पतञ्जलि अपने व्याकरणमहाभाष्य के पस्पशाह्निक में लिखता है—

सहस्रवर्त्मा सामवेदः।

अर्थात्—सहस्र शाखा युक्त सामवेद है।

प्रपञ्चहृदय के द्वितीय अर्थात् वेदप्रकरण में लिखा है—

तत्र सामवेदः सहस्रधा।......तत्रावशिष्टाः सामबाह्वृचयोर्द्वादश द्वादश। तत्र सामवेदस्य–तलवकार–छन्दोग–शाट्यायन–राणायनि–दुर्वासस–भागुरि–गौः–तलवकारालि–सावर्ण्य–गार्ग्य–वार्षगण्य औपमन्यवशाखाः।

अर्थात्—सामवेद की सहस्र शाखाओं में से अब बारह बची हैं। प्रपञ्चहृदय के सातवें आठवें नामों का पाठ बहुत अशुद्ध हो गया है।

दिव्यावदान नामक बौद्ध ग्रन्थ में लिखा है—

ब्राह्मण सर्व एते छन्दोगाः पक्तिरित्येका भूत्वा साशीतिसहस्रधा भिन्ना। तद्यथा—शीलवल्का अरणेमिकाः लौकाक्षाः कौथुमा ब्रह्मसमा महासमा महायाजिकाः सात्यमुग्राः समन्तवेदाः। तत्र—

शीलवल्काः पञ्चविंशतिः	[२५]
लौकाक्षाश्चत्वारिंशत्	[४०]
कौथुमानां शतं	[१००]
ब्रह्मसमानां शतं	[१००]
महासमानां पञ्चशतानि	[५००]
महायाजिकानां शतं	[१००]
सात्यमुग्राणां शतं	[१००]
समन्तवेदानां शतम्।	[१००]

इतीयं ब्राह्मण छन्दोगानां शाखाः पक्तिरित्येका भूत्वा साशीतिसहस्रधा भिन्ना। [१०६५]

अर्थात्—सामवेद की १०८० शाखाएं हैं।

दिव्यावदान में सामशाखाओं की संख्या दी तो १०८० गई है, परन्तु प्रत्येक चरण की अवान्तर शाखाओं का व्योरा जोड़ने से सामशाखाओं की कुल संख्या १०६५ बनती है। दिव्यावदान का यह पाठ पर्याप्त भ्रष्ट हो गया है।

आथर्वण परिशिष्ट चरणव्यूह में लिखा है—

तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीत्।······। तत्र केचिदवशिष्टाः प्रचरन्ति। तद्यथा—राणायनीयाः। सात्यमुग्राः। कालापाः। महाकालापाः। कौथुमाः। लाङ्गलिकाश्चेति।

कौथुमानां षड्भेदा भवन्ति। तद्यथा—सारायणीयाः। वातरायणीयाः। वैतधृताः। प्राचीनास्तेजसाः। अनिष्टकाश्चेति।

यह पाठ भी पर्याप्त भ्रष्ट है।

सुब्रह्मण्य शास्त्री की रची हुई गोभिलगृह्यकर्मप्रकाशिका के नित्याह्निक प्रयोग में निम्नलिखित तेरह सामग आचार्यों का तर्पण करना लिखा है—

राणायनिः। सात्यमुग्रिः। व्यासः। भागुरिः। और्गुण्डिः। गौल्गुलविः। भानुमानौपमन्यवः। कराटिः। मशको गार्ग्यः। वार्षगण्यः। कौथुमिः। शालिहोत्रिः। जैमिनिः।

इस से आगे उसी ग्रन्थ में दश प्रवचनकारों का तर्पण कहा गया है—

शटिः। भाल्लविः। काल्बविः। ताण्ड्यः। वृषाणः। शमबाहुः। रुरुकिः। अगस्त्यः। बष्कशिराः। हूहूः।

सामशाखाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन २३ आचार्यों का नाम स्मरण रखना चाहिए। सायण से धन्वी पुराना है, और धन्वी से रुद्रस्कन्द पुराना है। वह रुद्रस्कन्द खादिर गृह्य ३।२।१४॥ की टीका में इन्हीं १३ आचार्यों और १० प्रवचनकारों की ओर संकेत करता है।

चरणव्यूह की टीका में महिदास भी इसी अभिप्राय के दो श्लोक लिखता है—

राणायनी सात्यमुग्रा दुर्वासा अथ भागुरिः।
भारुण्डो गोर्गुजवीर्भगवानौपमन्यवः ॥१॥

दारालो गार्ग्यसावर्णी वार्षगण्यश्च ते दश ।
कुथुमिः शालिहोत्रश्च जैमिनिश्च त्रयोदश ॥२॥

जैमिनिगृह्यसूत्र के तर्पण-प्रकरण १।१४॥ में निम्नलिखित तेरह आचार्यों के नाम मिलते हैं—

जैमिनिं—तलवकारं—सात्यमुग्रं—राणायनिं—दुर्वाससं—च भागुरिं गौरुण्डिं—गौर्गुलविं—भगवन्तमौपमन्यवं—कारडिं—सावर्णिं— गार्ग्यवार्षगण्यं—दैवन्त्यम् इति ।

प्रपञ्चहृदय, गोभिलगृह्यकर्मप्रकाशिका और जैमिनिगृह्य के पाठों को मिला कर अनेक अशुद्ध हुए हुए नाम भी पर्याप्त शुद्ध किए जा सकते हैं।

अब सामाचार्य जैमिनि और सामशाखाओं का वर्णन होगा ।

सामवेद-प्रचारक जैमिनि

कृष्णद्वैपायन व्यास का तीसरा प्रधान शिष्य जैमिनि था। सभापर्व ४।१७॥ से हम जानते हैं कि युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश समय जैमिनि वहां उपस्थित था। आदिपर्व अध्याय ४८ में लिखा है—

उद्गाता ब्राह्मणो वृद्धो विद्वान् कौत्सार्यजैमिनिः ॥६॥

अर्थात्—महाराज जनमेजय के सर्पसत्र में कौत्स-कुल या कौत्स-गोत्र वाला वृद्ध विद्वान् ब्राह्मण आर्यजैमिनि उद्गाता का कर्म करता था ।

सामसंहिताकारों के लाङ्गल-समूह में भी एक जैमिनि का नाम मिलता है। यह निर्णय करना अभी कठिन है कि वह जैमिनि कौन था। भौगोलिक-कोश के कर्ता नन्दलाल दे ने द्वैतवन शब्द के अन्तर्गत लिखा है कि द्वैतवन जैमिनि का जन्मस्थान था ।

जैमिनि से उत्तरवर्ती परम्परा

व्यास से पढ़ कर जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को सामवेद पढ़ाया। उस ने अपने पुत्र सुत्वा को वही वेद पढ़ाया। सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को उसी वेद की शिक्षा दी। सुकर्मा ने उस की एक सहस्र संहिताएं बनाईं। उस के अनेक शिष्य उन्हें पढ़ने लगे। पुराणों के अध्ययन से पता लगता है कि जिस देश में ये सामग लोग पाठ करते थे, वहां कोई इन्द्र-प्रकोप

हुआ, अर्थात् कोई भूकम्प आदि आया । उस में सुकर्मा के शिष्य और उन के साथ वे शाखाएं भी नष्ट हो गईं। तदनन्तर सुकर्मा के दो बड़े प्रतापी महाप्राज्ञ शिष्य हुए । एक का नाम था पौष्पिंजी और दूसरे का राजा हिरण्यनाभ कौसल्य । पौष्पिंजी ने ५०० संहिताएं प्रवचन कीं । उन के पढ़ने वाले उदीच्य अर्थात् उत्तरीय सामग कहाते थे। इसी प्रकार कोसल के राजा हिरण्यनाभ ने भी ५०० संहिताओं का प्रवचन किया। इन को पढ़ने वाले प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में रहने वाले सामग कहाते थे ।

उदीच्य सामग पौष्पिञ्जी की परम्परा

वायु और ब्रह्माण्ड दोनों पुराणों में साम-संहिताकारों का वर्णन अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है । ऐसी अवस्था में अनेक सामग ऋषियों के यथार्थ नामों का जानना महादुष्कर है । हमारे पास इन दोनों पुराणों के हस्तलेख भी अधिक नहीं हैं, अतः पर्याप्त सामग्री के अभाव में अगला वर्णन पूर्ण सन्तोषदायक नहीं होगा ।

पौष्पिञ्जी के चार संहिता-प्रवचनकर्ता शिष्य थे । उन के नाम थे, लौगाक्षी, कुथुमि, कुसीदी और लाङ्गलि । इन में से लौगाक्षी के पांच शिष्य थे। वे थे, राणायनि, ताण्ड्य, अनोवेन या मूलचारी, सकैतिपुत्र और सात्यमुग्र । ब्रह्माण्ड के पाठ के अनुसार लौगाक्षी के छः शिष्य हो जाते हैं। उन में एक सुनामा है । हमें यह नाम सुसामा का अपपाठ प्रतीत होता है।

महाभारत-काल में सामग सुसामा

सभापर्व ३६।३४॥ के अनुसार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में धनञ्जयों का ऋषभ सुसामा सामग का कृत्य करता था । लाट्यायन और द्राह्यायण श्रौतसूत्रों में इति धानञ्जय्यः प्रयोग बहुधा मिलता है । यह धानञ्जय महाभारत के धनञ्जयों में से ही कोई होगा । सम्भव है, यह सुसामा ही हो। पुराण-पाठ की अनिश्चित दशा में इस से अधिक नहीं कहा जा सकता ।

कुथुमि के तीन पुत्र

पौष्पिञ्जी के दूसरे शिष्य कुथुमि के तीन पुत्र या शिष्य थे। नाम थे उन के, औरस, पराशर और भागवित्ति । एक चूड भागवित्ति बृह० उप० ६।३।९॥ में स्मरण किया गया है । ये सब कौथुम थे । औरस या

भागवित्ति के शिष्यों में शौरिद्यु और शृङ्गिपुत्र थे । इन्हीं के दो साथी राणायनि और सौमित्रि थे । शृङ्गिपुत्र ने तीन संहिताएं प्रवचन कीं । उन के पढ़ने वाले थे, चैल, प्राचीनयोग और सुराल । छान्दोग्य उप० ५।१३।१॥ में सत्ययज्ञ पौलुषि को प्राचीनयोग्य पद से सम्बोधित किया गया है । जैमिनि ब्रा० २।५६॥ में सात्ययज्ञ=सत्ययज्ञ के पुत्र सोमशुष्म का उल्लेख है । उसे भी वहां प्राचीनयोग्य पद से सम्बोधन किया है ।

पाराशर्य कौथुम ने छः संहिताओं का प्रवचन किया । उन को पढ़ते थे, आसुरायण, वैशाख्य, प्राचीनयोगपुत्र और बुद्धिमान् पतञ्जलि । शेष दो नाम अपपाठों के कारण लुप्त हो गए हैं । हमारा अनुमान है कि यही पतञ्जलि निदानसूत्र का कर्ता है । छन्दोगश्रौतप्रयोगप्रदीपिका[1] के आरम्भ में तालवृन्तनिवासी लिखता है—

द्राह्यायणीय–पातञ्जल–वाररुच–माशकानुपसंगृह्य ।

तालवृन्तनिवासी का अभिप्राय यदि यहां पातञ्जल निदानसूत्र से नहीं है, तो अवश्य ही कोई पातञ्जल श्रौत भी होगा ।

लाङ्गलि और शालिहोत्र ने भी छः छः संहिताएं प्रवचन कीं । शालिहोत्र और कुसीदी एक ही व्यक्ति के नाम हैं या नहीं, यह विचारार्ह है । लाङ्गलि के छः शिष्य थे, भाल्लवि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायानि, कण्डु और कहोल । ये छः लाङ्गल कहाते हैं ।

हिरण्यनाभ कौसल्य प्राच्यसामग

सुकर्मा का दूसरा शिष्य कोसल देश का राजा हिरण्यनाभ था । इस के विषय में पूर्व पृ० ११५ पर लिखा जा चुका है । तदनुसार हिरण्यनाभ का काल अनिश्चित ही है । इस के विषय में जितने विकल्प हैं, वे पहले दिए जा चुके हैं । प्रश्न उप० ६।१॥ में लिखा है कि सुकेशा भारद्वाज पिप्पलाद ऋषि के पास गया । उस ने पिप्पलाद से कहा कि राजपुत्र हिरण्यनाभ कौसल्य मेरे पास आया था । प्रतीत होता है कि सुकेशा भारद्वाज के पास जाने वाला हिरण्यनाभ ही पीछे से सामसंहिताकार

१—मद्रास, राजकीयसंग्रह का हस्तलेख, वैदिक ग्रन्थों का सूचीपत्र, पृ० ७६२ संख्या १०३९ ।

हुआ होगा । इस प्रमाण से यही परिणाम निकलता है कि हिरण्यनाभ कौसल्य महाभारत-काल में विद्यमान था । पुराण-पाठों की अस्त-व्यस्त अवस्था में इस से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता ।

कृत

हिरण्यनाभ का शिष्य राजकुमार कृत था। विष्णु पुराण ४।१९।५०॥ के अनुसार द्विजमीढ के कुल में सन्नतिमान का पुत्र कृत था। विष्णुपुराण के इस लेख के अनुसार कृत भी महाभारत-काल से बहुत पहले हुआ था। इस लेख से भी पूर्व-प्रदर्शित ऐतिहासिक अड़चन उत्पन्न होती है, और ऐसा प्रतीत होता है कि सामवेद के प्रवक्ता जैमिनि का गुरु कोई बहुत पहला व्यास हो। परन्तु यह सब कल्पनामात्र है ।

कृत के विषय में पाणिनीय सूत्र **कार्तकौजपादयश्च** ६।२।३७॥ का गण भी ध्यान रखने योग्य है । इस कृत के सामसंहिताकार चौबीस शिष्य थे। उन के नाम वायु और ब्रह्माण्ड के अनुसार नीचे लिखे जाते हैं—

वायु	राडः	राडवीयः	पञ्चमः	वाहनः	तलकः	माण्डुकः
ब्रह्माण्ड	राडिः	महवीर्यः	,,	,,	तालकः	पाण्डकः
वायु	कालिकः	राजिकः	गौतमः	अजवस्त	सोमराजायनः	पुष्टिः
ब्रह्माण्ड	,,	,,	,,	,,	सोमराजा	पृष्टघ्नः
वायु	परिकृष्टः	उलूखलकः	यवीयसः	वैशालः	अङ्गुलीयः	कौशिकः
ब्रह्माण्ड	,,	,,	,,	वैशाली	,,	,,
वायु	सालिमञ्जरि	सत्यः	कापीयः	कानिकः	पराशरः	
ब्रह्माण्ड	शालिमञ्जरि	पाकः	शधीयः	कानिनः	पाराशर्याः	

चौबीसवां नाम दोनों पुराणों में लुप्त हो गया है। जो नाम मिलते हैं, उन के पाठों में भी बहुत शोधन आवश्यक है। इस से आगे साम-शाखा-वर्णन के अन्त में पुराणों में लिखा है कि साम-संहिताकारों में पौष्पिञ्जी और कृत सर्वश्रेष्ठ हैं ।

एक प्रकार के चरणव्यूहों में राणायनीयों के सप्तभेद लिखे हैं—

राणायनीयाः । सात्यमुग्राः । कापोलाः । महाकापोलाः । लाङ्गलायनाः । शार्दूलाः । कौथुमाः चेति ।

दूसरे प्रकार के चरणव्यूहों में राणायनीयों के नवभेद लिखे हैं—

राणायनीयाः । शाट्यायनीयाः । सात्यमुग्राः । खल्वलाः । महाखल्वलाः । लाङ्गलाः । कौथुमाः । गौतमाः । जैमिनीयाः चेति ।

प्रथम प्रकार के चरणव्यूहों में कौथुमों के सप्तभेद कहे हैं—

आसुरायणाः । वातायनाः । प्राञ्जलिर्द्वैनभृताः । कौथुमाः । प्राचीनयोग्याः । नैगेयाः चेति ।

दूसरे प्रकार के चरणव्यूहों में राणायनीयों के नवभेदों से पूर्व का पाठ है—

आसुरायणीयाः । वासुरायणीयाः । वार्तान्तरेयाः । प्राञ्जलाः । ऋग्वैनविधाः । प्राचीनयोग्याः । राणायनीयाः चेति ।

साम की अनेक शाखाओं के नाम, जो पुराण आदिकों में मिलते हैं, वर्णन हो चुके । अब इन में से जिन शाखाओं का हमें पता है, अथवा जिन का कोई ग्रन्थ मिलता है, उन का वर्णन आगे किया जाता है ।

सामसंहिताओं के दो भेद—गान और आर्चिक

प्रत्येक सामसंहिता के गान और आर्चिक नाम के दो भेद हैं । गान के आगे चार विभाग हो जाते हैं, और आर्चिक के दो ही रहते हैं । कौथुमों की संहिता के ये विभाग उपलब्ध हैं । गानों के अन्तिम दो विभाग पौरुषेय हैं, अथवा अपौरुषेय, इस विषय में निदानसूत्र २।१॥ और जैमिनिन्यायमालाविस्तर ९।२।१–२॥ देखने योग्य हैं ।

१—कौथुमाः । ग्रामे गेयगान=वेयगान । इस में १७ प्रपाठक हैं । प्रत्येक प्रपाठक के पुनः पूर्व और उत्तर दो भाग हैं । इस का सम्पादन सत्यव्रत सामश्रमी ने सन् १८७४ में किया था । इस से भी एक शुद्ध संस्करण कृष्णास्वामी श्रौति का है । वह ग्रन्थाक्षरों में तिरुवदि से सन् १८८९ में मुद्रित हुआ था । उस का नाम है—

सामवेदसंहितायां कौथुमशाखाया वेयगानम् ।

अरण्ये गेयगान=आरण्यगान । दो दो भागों वाले छः प्रपाठकों में है । इस में चार पर्व हैं, अर्कपर्व, द्वन्द्वपर्व, व्रतपर्व, और शुक्रियपर्व । इन्हीं के अन्त में महानाम्नी ऋचाएं हैं । सामश्रमी के संस्करण में यह गान मुद्रित हो चुका है ।

ऊहगान। यह सप्तपर्व-युक्त है, दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्र। इस में दो दो भागों वाले कुल २३ प्रपाठक हैं। यह भी कलकत्ता संस्करण में मुद्रित है।

ऊह्यगान। इस में भी सात पर्व हैं। इन के नाम वही हैं, जो ऊहगान के पर्वों के नाम हैं। इस में १६ प्रपाठक और ३२ अर्धप्रपाठक हैं। यह भी कलकत्ता संस्करण में छप चुका है।

आर्चिक रूपी सामसंहिता=सामवेद

पूर्वार्चिक। इस में छः प्रपाठक हैं। ग्रामेगेयगान के साम इन्हीं मन्त्रों पर हैं। स्टीवनसन सन् १८४३, बैनफी सन् १८४८, और सामश्रमी द्वारा यह सामसंहिता मुद्रित हो चुकी है।

आरण्यकसंहिता। पांच दशतियों में।

उत्तरार्चिक। नौ प्रपाठकों में। ऊहगान के मन्त्र इसी में हैं।

यह संहिता कौथुमों की कही जाती है।

कौथुमों की साम-संख्या

ग्रामेगेयगान	११९७
आरण्यगान	२९४
ऊहगान	१०२६
ऊह्यगान	२०५
	२७२२

कालेण्ड के अनुसार कौथुम संहिता की कुल मंत्रसंख्या १८६९ है।

कौथुम गृह्य। संस्कृत हस्तलेखों के राजकीय पुस्तकालय मैसूर के सन् १९३२ में मुद्रित हुए सूचीपत्र के पृ० ६८ पर लिखा है कि उस पुस्तकालय में इक्कीस खण्डात्मक एक कौथुम गृह्यसूत्र है। हमारे मित्र अध्यापक सूर्यकान्त जी ने हमारी प्रार्थना पर उस की प्रतिलिपि मंगाई थी। उन का कहना है, कि यह एक स्वतन्त्र गृह्य सूत्र है। पूना के भण्डारकर इण्स्टीट्यूट में सांख्यायनगृह्यसूत्र व्याख्या नाम का एक हस्तलेख है। उस का लेखनकाल संवत् १६५५ है। उस में पत्र १क पर लिखा है—

कौथुमिगृह्ये। कामं गृह्येग्नौ पत्नी जुहुयात्। सायं प्रातरौ होमौ गृह्या:। पत्नीगृह्य एषोग्निर्भवति। इति।

इन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि कौथुमों का कोई स्वतन्त्र कल्पसूत्र भी होगा।

२—जैमिनीयाः। जैमिनीय संहिता, ब्राह्मण, श्रौत और गृह्य सभी अब मिलते हैं। ब्राह्मण आदि का वर्णन यथास्थान करेंगे, यहां संहिता का ही उल्लेख किया जाता है। इस के हस्तलेख बड़ोदा और लाहौर में मिलते हैं। लण्डन का हस्तलेख अपूर्ण है। यह संहिता भी दो प्रकार की है। अनेक हस्तलेखों के अनुसार जैमिनीय गानों की साम-संख्या निम्नलिखित है—

ग्रामगेयगान	१२३२
आरण्यगान	२९१
ऊहगान	१८०२
ऊह्य=रहस्यगान	३५६
	३६८१

अध्यापक कालेण्ड ने धारणालक्षण नामक लक्षणग्रन्थ से जैमिनीयों की साम संख्या दी है। पञ्जाब यूनिवर्सिटी पुस्तकालय के जैमिनीय शाखा के एक ग्रन्थ में वह संख्या कुछ भिन्न प्रकार से दी हुई है। वही नीचे लिखी जाती है—

आग्नेयस्य शतं प्रोक्ता ऋचो दश च षट् तथा।
ऐन्द्रस्य त्रिशतं चैव द्विपञ्चाशदृचो मिताः ॥१॥[1]
एकोनविंशतिशतं पावमान्यः स्मृता ऋचः।[1]
पञ्चपञ्चाशदित्युक्ता आरणस्य क्रमादृचः ॥२॥
प्रकृतेः षट्शतं चैव द्विचत्वारिंशदुत्तरम्।
प्रकृति ऋक्संख्या रघुस्तु ६४२। प्रकृतिसामसंख्या गिरीशोयं १५२३।

१—चरणव्यूहों का निम्नलिखित पाठ विचारणीय है—

अशीतिशतमाग्नेयं पावमानं चतुःशतम्।
ऐन्द्रं तु षड्विंशतिर्यानि गायन्ति सामगाः ॥

अर्थात्—आग्नेयपर्व में	११६
ऐन्द्र में	३५२
पावमान्य में	११९
और आरण में	५५
	———

कुल ६४२ प्रकृति ऋक्संख्या है।

तथा ग्रामेगेयगान और आरण्यगान की कुल संख्या १५२३ है। इस से आगे धारणालक्षण में इन १५२३ सामों का व्योरा है। तत्पश्चात् ऊह और ऊह्यगान की संख्या गिनी गई है। जैमिनीय सामगान की कुल संख्या ३६८१ है। अर्थात् कौथुम शाखा की अपेक्षा जैमिनीय शाखा के गानों में ९५९ साम अधिक हैं। जैमिनीय संहिता का अभी तक कोई भाग मुद्रित नहीं हुआ।

जैमिनीय संहिता के पाठान्तर कालेण्ड ने रोमनलिपि में सम्पादन किए हैं, परन्तु इस संहिता के देवनागरी लिपि में छपने की परमावश्यकता है। कौथुम संहिता से इस का भेद तो है, परन्तु स्वल्प ही। जैमिनीय संहिता की मन्त्रसंख्या कालेण्ड के अनुसार १६८७ है। पूर्वार्चिक और आरण्य में ६४६ और उत्तरार्चिक में १०४१। पूर्वार्चिक की प्रकृति ऋक्संख्या हम पहले ६४२ लिख चुके हैं। तदनुसार आरण में ५५ मन्त्र हैं। यह चार मन्त्रों का भेद विचारणीय है। सम्भव है हमारे हस्तलेख का पाठ यहां अशुद्ध हो। इस प्रकार जैमिनीय संहिता में कौथुम संहिता की अपेक्षा १८२ मन्त्र कम हैं। परन्तु स्मरण रहे कि जैमिनीय-संहिता में कई ऐसी ऋचाएं भी हैं, जो कि कौथुम संहिता में नहीं हैं।

जैमिनीय और तलवकार

जैमिनीय ब्राह्मण को बहुधा तलवकार ब्राह्मण भी कहा जाता है। जैमिनि गुरु था और तलवकार शिष्य था। ब्राह्मण क्यों उन दोनों के नाम से पुकारा जाने लगा, यह विचारणीय है। संभव है कि जैमिनीयों की अवान्तर शाखा तलवकार हो। जैमिनीय शाखा के ब्राह्मण सम्प्रति दक्षिण मद्रास के तिन्नेवल्ली जिला में मिलते हैं।

३—राणायनीयाः । राणायन-शाखीय ब्राह्मण तो हमें अनेक मिले हैं, परन्तु राणायन-शाखा हम ने किसी के पास नहीं देखी । अध्यापक विण्टर्निट्ज़ का मत है कि स्टीवनसन की सम्पादन की हुई संहिता ही राणायनीय संहिता है ।[1] यह बात युक्त प्रतीत नहीं होती । कुछ मास हुए, लाहौर में ही एक ब्राह्मण हमें मिले थे । उन का पता भी हम ने लिख लिया था ।[2] वे कहते थे कि उन के पास राणायनीय संहिता का एक बहुत पुराना हस्तलेख है । जब तक इस चरण के मूल ग्रन्थ न मिल जाएं, तब तक हम इस के विषय में कुछ नहीं कह सकते ।

राणायनीयों के खिलों का एक पाठ शाङ्कर वेदान्तभाष्य ३।३।२३॥ में मिलता है । उस से आगे राणायनीयों के उपनिषद् का भी उल्लेख है । हेमाद्रिरचित श्राद्धकल्प के १०७९ पृष्ठ पर राणायनीय सम्बन्धी लेख देखने योग्य है ।

४—सात्यमुग्राः । राणायनीय चरण की एक शाखा का नाम सात्यमुग्र है । इन के विषय में आपिशली शिक्षा के षष्ठ-प्रकरण में लिखा है—

छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया ह्रस्वानि पठन्ति ।

अर्थात्—सात्यमुग्र शाखा वाले सन्ध्यक्षरों के ह्रस्व पढ़ते हैं ।

पुनः व्याकरणमहाभाष्य १।१।४, ४८॥ में लिखा है—

ननु च भोश्छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया अर्धमेकारमर्धमोकारं चाधीयते । सुजाते ए अश्वसूनृते । अध्वर्यो ओ अद्रिभिः सुतम् । शुक्रं ते ए अन्यद्यजतम् ।

सात्यमुग्रों का भी कोई ग्रन्थ अभी तक हमें नहीं मिल सका ।

५—नैगेयाः । इस शाखा का नाम चरणव्यूहों के कौथुमों के अवान्तर-विभागों में मिलता है । नैगेयपरिशिष्ट नाम का एक ग्रन्थ है ।

१—भारतीय वाङ्मय का इतिहास, अङ्ग्रेजी अनुवाद, पृ० १६३, तीसरी टिप्पणी ।

२—पं० हरिहरदत्त शास्त्री, भण्डारी गली, घर नम्बर ९/१०, बांस का फाटक, बनारस सिटी ।

उस में दो प्रपाठक हैं। प्रथम में ऋषि और दूसर में देवता का उल्लेख है। यह ग्रन्थ नैगेय शाखा पर लिखा गया है। इस से इस शाखा का आकार प्रकार पता लगता है।

६—**शार्दूलाः**। काशी के एक ब्राह्मण घर के हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र में इस शाखा का नाम लिखा है। इस से प्रतीत होता है कि शार्दूल संहिता का पुस्तक कभी वहां विद्यमान था, परन्तु अब यह ग्रन्थ वहां से कोई ले गया है। खादिर नाम का एक गृह्यसूत्र सम्प्रति उपलब्ध है। उस के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह शार्दूल शाखीय लोगों का गृह्यसूत्र है।[1] श्राद्धकल्प परिभाषाप्रकरण पृ० १०७८, १०७९ पर हेमाद्रि लिखता है—

तद्यथा शार्दूलशाखिनां—स पूर्वो महानामिति मधुश्चुन्निधनम्।

यह पाठ शार्दूलशाखा का है। इस से आगे भी हेमाद्रि इस शाखा का पाठ देता है। यत्न करने पर इस शाखा के ग्रन्थ अब भी मिल सकेंगे।

७—**वार्षगण्याः**। साम आचार्यों में वार्षगण्य का नाम पूर्व लिखा जा चुका है। इस शाखा वालों के संहिता और ब्राह्मण कभी अवश्य होंगे। सौभाग्य का विषय है कि वार्षगण्यों का एक मन्त्र अब भी उपलब्ध है। पिङ्गल छन्दःसूत्र ३।१२॥ पर टीका करते हुए यादवप्रकाश नागी गायत्री के उदाहरण में लिखता है—

ययोरिदं विश्वमेजति ता विद्वांसा हवामहे वाम्।
वीतं सोम्यं मधु॥ इति वार्षगण्यानाम्।

अर्थात्—नागी गायत्री का यह उदाहरण वार्षगण्यों की संहिता में मिलता है।

सांख्य शास्त्र प्रवर्तकों में भी वार्षगण्य नाम का एक प्रसिद्ध आचार्य था। कई एक विद्वानों के अनुसार षष्टितन्त्र का रचयिता वार्षगण्य ही था। सांख्यकार वार्षगण्य और साम-संहिताकार वार्षगण्य का सम्बन्ध जानना चाहिए। वार्षगण्यों का इस से अधिक इतिवृत्त हम नहीं जान सके।

1—Report on a search of Sanskrit mss. in the Bombay Presidency, 1891—1895, by A. V. Kathavate, Bombay, 1901, No. 79.

८—गौतमाः । गौतमों की कोई स्वतन्त्र संहिता थी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता । गौतम धर्मसूत्र, गौतम पितृमेधसूत्र इस समय भी मिलते हैं । गौतम शिक्षा भी सम्प्रति उपलब्ध है । यत्न करने पर इस शाखा के अन्य ग्रन्थों के मिलने की भी संभावना है ।

९—भाल्लविनः । इस शाखा का ब्राह्मण विद्यमान था । संहिता के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते । भाल्लवियों का निदान ग्रन्थ कई ग्रन्थों में उद्धृत मिलता है । भाल्लविकल्प भी कभी मिलता होगा । भाल्लवियों का वर्णनविशेष हम ब्राह्मण भाग में करेंगे । सुरेश्वर के बृहदारण्यकभाष्य-वार्तिक में भाल्लविशाखा की एक श्रुति लिखी है । सुरेश्वर का तत्सम्बन्धी लेख आगे लिखा जाता है—

अतः संन्यस्य कर्माणि सर्वाण्यात्मावबोधतः ।
हत्वाऽविद्यां धियैवेयात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२१९॥
इति भाल्लविशाखायां श्रुतिवाक्यमधीयते ॥२२०॥

अर्थात्—हत्वाऽविद्यां·····पदम् भाल्लविश्रुति है ।

भाल्लवियों के उपनिषद् ग्रन्थ भी थे ।

जै॰ उप॰ ब्रा॰ २।४।७॥ में भाल्लवियों का मत उल्लिखित है । इस से पता लगता है कि जै॰ उप॰ ब्रा॰ के काल से पहले या समीप ही भाल्लवि शाखा का प्रवचन हो चुका था । जै॰ ब्रा॰ ३।१५६॥ में आषाढ भाल्लवेय और १।२७१॥ में इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय के नाम मिलते हैं । भाल्लवियों और भाल्लवेयों के गोत्र जानने चाहिएं ।

१०—कालबविनः । इस शाखा के ब्राह्मण के प्रमाण अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं । उन का उल्लेख ब्राह्मण भाग में करेंगे । कालबवियों के कल्प, निदान और संहिता का पता हमें नहीं लगा ।

११—शाट्यायनिनः । इस शाखा के ब्राह्मण, कल्प और उपनिषद् कभी विद्यमान् थे । संहिता के सम्बन्ध में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता । शाट्यायनि आचार्य का मत जैमिनि-उपनिषद्-ब्राह्मण में बहुधा उद्धृत मिलता है ।

१२—रौरुकिणः । इस शाखा के प्रमाण भी अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं ।

१३—**कापेयाः** । काशिकावृत्ति४।१।१०७॥ में कापेय आङ्गिरस से भिन्न गोत्र के माने गए हैं । आङ्गिरसगोत्र वाले काप्य होंगे । बृहदारण्यक उपनिषद् ३।३।१॥ का पतञ्जल काप्य आङ्गिरसगोत्र का होगा । एक शौनक कापेय जैमिनि-उपनिषद्-ब्राह्मण ३।१।२१॥ में उल्लिखित है । जैमिनीय ब्राह्मण २।२६८॥ में भी इसी कापेय का नाम मिलता है । इस शाखा के ब्राह्मण का वर्णन आगे होगा ।

१४—**माषशराव्यः** । द्राह्यायण श्रौत ८।२।३०॥ पर धन्वी लिखता है—

माषशराव्यो नाम केचिच्छाखिनः ।

पाणिनीय गणपाठ ४।१।९ में भी यह नाम मिलता है ।

१५—**करद्विषः** । इस शाखा का नाम ताण्ड्य ब्राह्मण २।१५।४॥ में मिलता है ।

१६—**शाण्डिल्याः** । आपस्तम्ब श्रौत के रुद्रदत्तकृत ९।११।२१॥ के भाष्य में एक शाण्डिल्यगृह्य उद्धृत किया गया है । लाट्यायन, द्राह्यायण आदि कल्पों में शाण्डिल्य आचार्य का मत बहुधा लिखा गया है, अतः हमारा अनुमान है कि शाण्डिल्य गृह्य किसी साम शाखा का ही गृह्य होगा । आनन्दसंहिता के अनुसार शाण्डिल्य सूत्रकार याजुष है । एक सुयज्ञ शाण्डिल्य जैमिनीय उप० ब्रा० ४।१७।१॥ के वंश में लिखा गया है ।

१७—**ताण्ड्याः** । ताण्ड्यों की एक स्वतन्त्र शाखा बहुत प्राचीनकाल से मानी जा रही है । वेदान्त भाष्य ३।३।२७॥ में शङ्कर लिखता है—

अन्येऽपि शाखिनस्ताण्डिनः शाट्यायनिनः ।

पुनः ३।३।२४॥ में वही लिखता है—

यथैकेषां शाखिनां ताण्डिनां पैङ्गिनां च ।

वर्तमान छान्दोग्योपनिषद् इन्हीं की उपनिषद् है । शाङ्कर वेदान्त भाष्य ३।३।३६॥ में लिखा है—

यथा ताण्डिनामुपनिषदि षष्ठे प्रपाठके—स आत्मा······ ।

यह पाठ छा० उप० ६।८।७॥ की प्रसिद्ध श्रुति है। छान्दोग्य नाम

एक सामान्य नाम है । पहले इस उपनिषद् को **ताण्ड्य-रहस्य-ब्राह्मण** या **ताण्ड्य आरण्यक** भी कहते होंगे। शाङ्कर वेदान्तभाष्य ३।३।२४॥ से ऐसा ही ज्ञात होता है ।

ताण्ड्य शाखा कौथुमों का अवान्तर विभाग समझी जाती है । अध्यापक कालेण्ड का ऐसा ही मत था । गोभिलगृह्य भी कौथुमों का ही गृह्य माना जाता है । परन्तु श्राद्धकल्प पृ० १४६०, १४६८ पर हेमाद्रि लिखता है कि **गोभिल राणायनीयसूत्रकृत** है । यदि हेमाद्रि की बात ठीक है, तो ताण्ड्य गृह्य का अन्वेषण होना चाहिए ।

ताण्ड्य ब्राह्मण और कौथुम संहिता

अध्यापक कालेण्ड ने ताण्ड्य ब्राह्मण से दो ऐसे उदाहरण दिए हैं कि जहां ब्राह्मण का क्रम वर्तमान कौथुमसंहिता के क्रम से भिन्न हो जाता है :—

ताण्ड्य ब्रा०	साम संहिता
इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ११।४।४॥	**इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे**[1]
अक्रान्त्समुद्रः परमे विधर्मन् १५।१।१॥	**अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन्**[1]

ताण्ड्य ब्राह्मणगत ये भेद निदान-सूत्र में भी विद्यमान हैं। आर्षेय कल्प में दूसरा प्रमाण मिलता है, और वह भी ब्राह्मणानुकूल है । इस से एक सम्भावना होती है कि ताण्ड्य ब्राह्मण का सम्बन्ध कदाचित् किसी अन्य सामसंहिता से रहा हो ।

अन्य साम प्रवचनकार

लाट्यायन, द्राह्यायण, गोभिल, खादिर, मशक और गार्ग्य के प्रवचन-ग्रन्थ इस समय भी उपलब्ध हैं । पहले पांचों के रचे हुए कल्प या कल्पों के भाग हैं और गार्ग्य का साम पदपाठ विद्यमान है । महाभाष्य आदि में **गार्गकम् । वात्सकम् ।** प्रयोग भी बहुधा मिलता है । इस से ज्ञात होता है कि गर्गों की कोई सामसंहिता भी विद्यमान थी ।

१—ये साम संहितास्थ मन्त्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं । उन का पाठ सामसंहिता के सदृश ही है । परमे और प्रथमे का भेद अन्यत्र भी पाया जाता है । मनुस्मृति १।१८०॥ में कोई परमे पढ़ता है और कोई प्रथमे ।

द्राह्यायण और खादिर का परस्पर सम्बन्ध भी विचारणीय है। इन विषयों पर कल्पसूत्र भाग में लिखा जाएगा।

साम-मन्त्र-संख्या

शतपथ ब्राह्मण १०।४।२।२३॥ में लिखा है—

अथेतरौ वेदौ व्यौहत्। द्वादशैव बृहतीसहस्राण्यष्टौ यजुषां चत्वारि साम्नाम्। एतावद्धैतयोर्वेदयोर्यत् प्रजापतिसृष्टं···।

अर्थात्—साम-मन्त्र-पाठ चार सहस्र बृहती छन्द के परिमाण का है। इतना ही प्रजापतिसृष्ट साम है।

एक बृहती छन्द में ३६ अक्षर होते हैं, अतः ४०००×३६=१४४००० अक्षर के परिमाण के सब साम हैं। यह साम-संख्या सहस्रसाम शाखाओं में से सौत्र शाखाओं को छोड़ कर शेष सब साम शाखाओं की होगी।

वायुपुराण ६१।६३॥ तथा ब्रह्माण्डपुराण २।३५।७१–७२॥ में साम गणना के विषय में लिखा है—

अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश।
सारण्यकं सहोहं च एतद्गायन्ति सामगाः॥

अर्थात्—आरण्यक आदि सब भागों को मिला कर कुल ८०१४ साम हैं, जिन्हें सामग गाते हैं।

इसी प्रकार का पाठ एक प्रकार के चरणव्यूहों में है—

अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश।
अष्टौ शतानि नवतिर्दशतिर्वालखिल्यकम्॥
सरहस्यं ससुपर्णं प्रेक्ष्य तत्र सामदर्पणम्।
सारण्यकानि ससौर्याण्येतत्सामगणं स्मृतम्॥

इसी का दूसरा पाठ दूसरे प्रकार के चरणव्यूहों में है—

अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश।
अष्टौ शतानि दशभिर्दशसप्तसुवालखिल्यः ससुपर्णः प्रेक्ष्यम्।
एतत्सामगणं स्मृतम्।

एक और प्रकार के चरणव्यूह का निम्नलिखित पाठ भी ध्यान देने योग्य है—

अष्टौ सामसहस्राणि छन्दोगार्चिकसंहिता ।
गानानि तस्य वक्ष्यामि सहस्राणि चतुर्दश ॥
अष्टौ शतानि ज्ञेयानि दशोत्तरदशैव च ।
ब्राह्मणञ्चोपनिषदं सहस्रं त्रितयं तथा ॥

अन्तिम पाठ का अभिप्राय बहुत विचित्र प्रकार का है । तदनुसार साम आर्चिक संहिता में ८००० साम थे । उसी के गान १४८२० थे । साम गणना के पुराणस्थ और चरणव्यूह-कथित पाठों में स्वल्प भेद हो गया है । उस भेद के कारण इन वचनों का स्पष्ट और निश्चित अर्थ लिखा नहीं जा सकता । हां, इतना तो निर्णीत ही है कि आर्चिक संहिता में शतपथ-प्रदर्शित १४४००० अक्षर परिमाण के सब मन्त्र होने चाहिएं । और अनेक स्थानों में ८००० के लगभग साम संख्या कहने से यह भी कुछ निश्चित ही है कि सामवेद की समस्त शाखाओं में कुल ८००० के लगभग मन्त्र होंगे ।

एकादश अध्याय

अथर्ववेद की शाखाएं

पतञ्जलि अपने व्याकरणमहाभाष्य के पस्पशाह्निक में लिखता है—

नवधाथर्वणो वेदः ।

अर्थात्—नव शाखायुक्त अथर्ववेद है ।

इन नव शाखाओं के विषय में आथर्वण परिशिष्ट चरणव्यूह में लिखा है—

तत्र ब्रह्मवेदस्य नव भेदा भवन्ति । तद्यथा—

पैप्पलादाः । स्तौदाः । मौदाः । शौनकीयाः । जाजलाः ।

जलदाः । ब्रह्मवदाः । देवदर्शाः । चारणावैद्याः चेति ।[1]

इस सम्बन्ध में एक प्रकार के चरणव्यूहों का पाठ है—

पिप्पलाः । शौनकाः । दामोदाः । तोत्तायनाः । जाबालाः ।

कुनखी । ब्रह्मपलाशाः । देवदर्शी । चारणविद्याः चेति ।

दूसरे प्रकार के चरणव्यूहों का पाठ है—

पैप्पलाः । दान्ताः । प्रदान्ताः । स्तौताः । औताः ।

ब्रह्मदापलाशाः । शौनकी । वेददर्शी । चरणविद्याः चेति ।

प्रपञ्चहृदय में लिखा है—

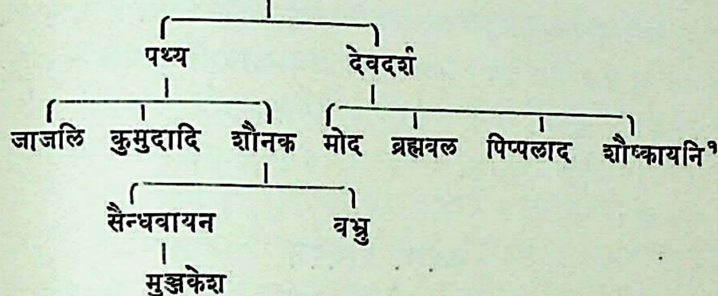
नवैवाथर्वणस्य ।…… । आथर्वणिकाः पैप्पलाद–योद–तोद

मोद–दायढ–ब्रह्मपद–शौनक–अङ्गिरस–देवर्षि–शाखाः ।

वायुपुराण ६१।४९–५३॥ ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग, दूसरा पाद ३५।५५–६१॥ तथा विष्णुपुराण ३।६।९–१३॥ तक के अनुसार आथर्वण शाखाभेद निम्नलिखित प्रकार से हुआ—

१—अथर्ववेद के सायणभाष्य के उपोद्घात के अन्त में आथर्वण शाखाओं के यही नाम मिलते हैं। हां स्तौरा के स्थान में वहां तौरा पाठ है ।

सुमन्तु ने दो संहिता कवन्ध को दीं।



इन दोनों संहिताओं का वर्णन पुराणों में नहीं है।

अहिर्बुध्न्यसंहिता अध्याय १२ और २० में क्रमशः लिखा है—

सान्नां शाखाः सहस्रं स्युः पञ्चशाखा ह्यथर्वणाम् ॥९॥
अथर्वाङ्गिरसो नाम पञ्चशाखा महामुने ॥२१॥

आथर्वण पांच शाखाओं की परम्परा कैसी थी, अथवा इस पाञ्चरात्र आगम का यह मत कैसा है, इस विषय में हम अभी कुछ नहीं कह सकते।

आथर्वण नौ शाखाओं के शुद्ध नाम

पूर्वोक्त आथर्वण शाखाओं के नामों में से आथर्वण चरणव्यूह में आए हुए नाम सब से अधिक शुद्ध हैं। उन में से छः के विषय में तो कोई सन्देह ही नहीं हो सकता। वे छः ये हैं—पैप्पलादाः। मौदाः। शौनकीयाः। जाजलाः। देवदर्शाः। चारणविद्याः या चारणवैद्याः। शेष स्तौदाः। जलदाः और ब्रह्मवदाः नामों में कुछ शोधन की आवश्यकता है। ब्रह्मवदाः तो कदाचित् ब्रह्मपलाशाः या ब्रह्मबलाः हो। अन्य दो नामों के विषय में हम कुछ विशेष नहीं कह सकते।

सुमन्तु

भगवान् कृष्ण द्वैपायन का चौथा प्रधान शिष्य सुमन्तु था। यह

१—ब्रह्माण्ड, विष्णु—शौल्कायनि।

सुमन्तु जैमिनि-पुत्र सुमन्तु से भिन्न होगा। सुमन्तु नाम का एक धर्मसूत्रकार बहुत प्रसिद्ध है। अपने धर्म-शास्त्रेतिहास में पृ० १२९–१३१ तक पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने इस सुमन्तु के सम्बन्ध में विस्तृत लेख लिखा है। सुमन्तु धर्मसूत्र का कुछ अंश हमारे मित्र श्रीयुत टी० आर० चिन्तामणि ने मुद्रित किया है।[1] सुमन्तु अपने धर्मसूत्र में अङ्गिरा और शङ्ख को स्मरण करता है। शान्तिपर्व ४६।६॥ के अनुसार एक सुमन्तु शरशय्यास्थ भीष्म जी के पास था।

कबन्ध आथर्वण

सुमन्तु ने अथर्व संहिता की दो शाखाएं बना कर अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ा दीं। बृहदारण्यक उपनिषद् ३।७॥ से उद्दालक आरुणि और याज्ञवल्क्य का सम्वाद आरम्भ होता है। उद्दालक आरुणि कहता है कि हे याज्ञवल्क्य, हम मद्रदेश में पतञ्जल काप्य के घर पर यज्ञ पढ़ रहे थे। उस की स्त्री गन्धर्वगृहीता थी। उस गन्धर्व को पूछा, कौन हो। वह बोला, कबन्ध आथर्वण हूं। क्या यही कबन्ध आथर्वण कभी सुमन्तु का शिष्य था। एक कबन्ध आथर्वण जै० ब्रा० ३।३१९॥ में उल्लिखित है। कबन्ध के साथ आथर्वण का विशेषण यह बताता है कि कदाचित् यही कबन्ध सुमन्तु का शिष्य हो।

कबन्ध ने अपनी पढ़ी हुई दो शाखाएं अपने दो शिष्यों पथ्य और देवदर्श को पढ़ा दीं। उन से आगे अन्य शाखाओं का विस्तार हुआ। वे शाखाएं नौ हैं। उन्हीं का आगे वर्णन किया जाता है।

१—पैप्पलादाः। स्कन्दपुराण, नागर खण्ड के अनुसार एक पिप्पलाद सुप्रसिद्ध याज्ञवल्क्य का ही सम्बन्धी था। प्रश्न उपनिषद् के आरम्भ में लिखा है कि भगवान् पिप्पलाद के पास सुकेशा भारद्वाज आदि छः ऋषि गए थे। वह पिप्पलाद महाविद्वान् और समर्थ पुरुष था। शान्ति पर्व ४६।१०॥ के अनुसार एक पिप्पलाद शरतल्पगत भीष्म जी के समीप विद्यमान था।

1—The Journal of Oriental Research, Madras, January—March, 1934, pp. 75—88.

पिप्पलादों के संहिता और ब्राह्मण दोनों ही थे । प्रपञ्चहृदय में लिखा है—

तथाथर्वणिके पैप्पलादशाखायां मन्त्रो विंशतिकाण्डः ।···।
तद्ब्राह्मणमध्यायाष्टकम् ।

अर्थात्—पैप्पलाद संहिता बीस काण्डों में है और उस के ब्राह्मण में आठ अध्याय हैं ।

पैप्पलाद संहिता का अद्वितीय हस्तलेख

यह पैप्पलाद संहिता सम्प्रति उपलब्ध है । भुर्जपत्र पर लिखा हुआ इस का एक प्राचीन हस्तलेख काश्मीर में था । उस की लिपि शारदा थी । काश्मीर-महाराज रणवीरसिंह जी की कृपा से यह हस्तलेख अध्यापक रुडल्फ रोथ के पास पहुंचा । सन् १८७५ में रोथ ने इस पर एक लेख प्रकाशित किया ।[1] सन् १८९५ तक यह कोश रोथ के पास ही रहा । तव रोथ की मृत्यु पर यह कोश ट्यूविङ्गन यूनिवर्सिटी पुस्तकालय के पास चला गया । इस यूनिवर्सिटी के अधिकारियों की आज्ञा से उस कोश का फोटो अमरीका के वाल्टीमोर नगर से सन् १९०१ में प्रकाशित किया गया। इस प्रति के काश्मीर से वाहर ले जाए जाने से पहले उस से दो देवनागरी प्रतियां तय्यार की गई थीं । एक प्रति अव पूना के भण्डारकर इन्स्टीट्यूट में सुरक्षित है ।[2] दूसरी प्रति रोथ को सन् १८७४ मास नवम्बर के अन्त में मिली थी । शारदा ग्रन्थ में १६ पत्र लुप्त हैं । दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवां पत्र वहुत फट चुके हैं । इन के अतिरिक्त सम्भवतः इसी कोश की एक और देवनागरी प्रति भी है । वह मुम्बई की रायल एशियाटिक सोसाइटी की शाखा के पुस्तकालय में है । उसी की फोटो कापी पञ्जाव यूनिवर्सिटी लाहौर के पुस्तकालय में संख्या ६६६२ के अन्तर्गत है । यह प्रति काश्मीर में विक्रम सम्वत् १९२६ में लिखी गई थी ।

1. Der Atharva-Veda in Kaschmir, Tubingen. 1875.
2. Descriptive Catalogue of the Government Collections of Mss. Deccan College, Poona. 1916, pp 276—277.
यह सारा संग्रह अव भण्डारकर संस्था के पास है ।

पैप्पलादों के अन्य ग्रन्थ

प्रपञ्चहृदय पृ० ३३ के अनुसार पैप्पलादशाखा वालों का सप्त अध्याय युक्त अगस्त्य प्रणीत एक कल्पसूत्र था। इस सूत्र का नाम हमें अन्यत्र नहीं मिला। हेमाद्रि-रचित श्राद्धकल्प पृ० १४७० से आरम्भ होकर एक पिप्पलाद श्राद्धकल्प मिलता है। इस श्राद्धकल्प का पुनरुद्धार अध्यापक कालेण्ड ने किया है।[1] प्रपञ्चहृदय के प्रमाण से आठ अध्याय का पैप्पलाद ब्राह्मण पहले कहा जा चुका है। इस के सम्बन्ध में वेङ्कटमाधव अपने ऋग्वेद भाष्य मण्डल ८।१॥ की अनुक्रमणी में लिखता है—

ऐतरेयकमस्माकं पैप्पलादमथर्वणाम् ॥ १२ ॥

अर्थात्—अथर्वणों का पैप्पलाद ब्राह्मण था।

आठवें अथर्व परिशिष्ट के अनुसार अथर्ववेद १९।५६–५८ सूक्त पैप्पलाद मन्त्र हैं। उन्नीसवें काण्ड में पैप्पलादशाखा और अथर्ववेद की समानता है।

पैप्पलाद संहिता का प्रथम मन्त्र

महाभाष्य पस्पशाह्निक में अथर्वणों का प्रथम मन्त्र **शन्नो देवीः** माना गया है। गोपथ ब्राह्मण १।२९॥ का भी ऐसा ही मत है। इसी सम्बन्ध में छान्दोग्यमन्त्रभाष्य में गुणविष्णु लिखता है—

शन्नो देवीः··· । अथर्ववेदादिमन्त्रोऽयं पिप्पलाददृष्टः।

अर्थात्—पैप्पलादों का प्रथम मन्त्र **शन्नो देवीः** है।

पिप्पलाद संहिता के उपलब्ध हस्तलेख में प्रथम पत्र नष्ट हो चुका है, अतः गुणविष्णु के कथन की परीक्षा नहीं की जा सकती।

व्हिटने (और रोथ) का मत है कि पिप्पलाद अथर्ववेद में अथर्ववेद की अपेक्षा ब्राह्मण पाठ अधिक है, तथा अभिचारादि कर्म भी अधिक हैं।[2]

---

1. Altindischer Ahnencult, Leiden, E. J. Brill. 1893.
2. The Kashmirian text is more rich in Brahmana passages and in charms and incantations than in the vulgate. Whitneys translation of the Atharva Veda, Introduction, p. LXXX.

पैप्पलादशाखा और अथर्ववेद के कुछ पाठों की तुलना व्हिटने ने निम्नलिखित प्रकार से की है—

अथर्व	पैप्पलाद	
तस्मात्	ततः	१०।३।८॥
जगाम	इयाय	१०।७।३१॥
योत	या च	१०।८।१०॥
ओपं	क्षिप्रं	१२।१।३५॥
गृहेषु	अमा च	१२।४।३८॥

अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी के जर्नल में पिप्पलादशाखा का सम्पादन रोमन लिपि में हो गया है।

बड़ोदा के सूचीपत्र में पुरुषसूक्त का एक कोश सन्निविष्ट है। संख्या उस की ३८१० है। उस के अन्त में लिखा है—

इदं काण्डं शाखाद्वयगामि। पैप्पलादशाखायां जाजलशाखायां च।

पैप्पलाद-शाखागत **यां कल्पयन्ति** सूक्त व्याख्या सहित बड़ोदा के सूचीपत्र में दिया हुआ है। यह ग्रन्थ हम ने अन्यत्र भी देखा है और आवश्यकता होने पर उपलब्ध हो सकता है।

महाभाष्य ४।१।८६॥ ४।२।१०४॥ ४।३।१०१॥ आदि में **मौदकम्** । **पैप्पलादकम्** प्रयोग मिलते हैं। ४।२।६६॥ में **मौदाः**। **पैप्पलादाः** प्रयोग मिलते हैं। काठक और कालापक के समान किसी समय यह शाखा भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध रही होगी। यत्न करने पर पैप्पलाद शाखा सम्बन्धी ग्रन्थ अब भी मिल सकेंगे।

२—**स्तौदाः**। सायण का पाठ **तौदाः** है। अथर्व परिशिष्ट २२।३॥ का लेख है—

आ स्कन्धादुरसो वापीति स्तौदायनैः स्मृता।

यहां अरणि का वर्णन करते हुए स्तौदायनों का मत लिखा है।

३—**मौदाः**। इस शाखा का अब नाममात्र ही शेष है। महाभाष्य के काल में यह शाखा बहुत प्रसिद्ध रही होगी। शाबर भाष्य १।१।३०॥ में भी यह नाम मिलता है। अथर्व परिशिष्ट २।४॥ में जलद और मौद

शाखीय पुरोहितों से काम लेने वाले राजा के राष्ट्र का नाश कहा गया है। अथर्व परिशिष्ट २२।३॥ में मौद का मत है।

४—शौनकीयाः। शौनक नाम के अनेक ऋषि हो चुके हैं। नैमिषारण्य वासी वृद्ध कुलपति शौनक एक बह्वृच था। भागवत् १।४।१॥ में ऐसा ही लिखा है। जै० उप० ब्रा० ३।१।२१॥ में लिखे हुए शौनक कापेय का नाम पृ० २१६ पर लिखा जा चुका है। अतिधन्वा शौनक का नाम जै० ब्रा० १।१९०॥ में मिलता है। इन के अतिरिक्त भी कई अन्य शौनक होंगे। आथर्वण शौनक किस गोत्र वा किस देश का था, यह हम नहीं जान सके।

आर्षीसंहिता और आचार्यसंहिता

पञ्चपटलिका ५।१९॥ में लिखा है—

आचार्यसंहितायां तु पर्यायाणामतः परम्।
अवसानसंख्यां वक्ष्यामि यावती यत्र मिश्रिताः॥

इस श्लोक में आचार्यसंहिता पद प्रयुक्त हुआ है। कौशिकसूत्र ८।२१॥ पर टीका करते हुए दारिल इस शब्द के सम्बन्ध में लिखता है—

पुनरुक्तप्रयोगः पञ्चपटलिकायां कथितः। आर्षीसंहितायाः कर्मसंयोगात्। आचार्यसंहिताभ्यासार्था।

अर्थात्—पठन पाठन में आचार्यसंहिता काम में आती है। इस में उक्तानुक्तविधि चरितार्थ होती है। आर्षीसंहिता ही मूल है और यही विनियोगादि में वर्ती जाती है।

शौनकीय-संहिता परिमाण

अनेक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि अथर्ववेद बीस काण्ड युक्त ही है। पैप्पलाद संहिता के भी बीस काण्ड ही हैं, परन्तु शौनकीय संहिता में अठारह काण्ड ही प्रतीत होते हैं, इस के कारण निम्नलिखित हैं—

१—पञ्चपटलिका खण्ड ५ और १३ के देखने से यही प्रतीत होता है कि शौनकीयसंहिता में कुल अठारह काण्ड थे।

२—शौनकीय चतुरध्यायिका में जो निस्सन्देह शौनकीयशाखा का ग्रन्थ है, अठारह ही काण्डों के मन्त्र प्रतीक से उद्धृत किए गए हैं—

३—कौशिक और वैतान सूत्र भी शौनकीय-शाखा से ही सम्बन्ध-विशेष रखते हैं। उन में भी अठारह ही काण्डों के मन्त्र प्रतीक से उद्धृत हैं।

४—बृहत्सर्वानुक्रमणिका में उन्नीस काण्डों के ही ऋषि, देवता छन्द आदि कहे हैं। वीसवें काण्ड के ऋषि, देवता आदि आश्वलायन की अनुक्रमणी से लिए गए हैं। उन में भी अनेक खिल सूक्त हैं। इन खिल सूक्तों के ऋषि आदि बृहत्सर्वानुक्रमणी के अनेक हस्तलेखों में नहीं हैं।[1] घृतावेक्षण परिशिष्टानुसार १९।५६–५८॥ सूक्त पैप्पलादमन्त्र कहाते हैं।

संहिता-विभाग

शौनकीयसंहिता काण्ड, प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र, पर्याय, गण और अवसानों में विभक्त है। काण्ड-रचना के सम्बन्ध में ब्लूमफील्ड और ह्विटने ने कल्पना की थी कि अठारह काण्ड तीन बड़े भागों में बांटे जा सकते हैं। अर्थात्—

बृहद् भाग	प्रथम	काण्ड	१—७
,, ,,	द्वितीय	,,	८–१२
,, ,,	तृतीय	,,	१३–१८

इन तीनों विभागों में अनुवाक, सूक्त और ऋगादि की रचना भिन्न भिन्न क्रम से पाई जाती है। पञ्चपटलिका पञ्चम खण्ड में भी **तिसृणामाकृतीनाम्** शब्द के प्रयोग से तीन प्रकार का विभाग ही माना गया प्रतीत होता है। परन्तु है वह विभाग ह्विटने आदि के विभाग से कुछ भिन्न। पञ्चपटलिका के अनुसार दूसरा विभाग ८–११ काण्डों का और तीसरा विभाग १२–१८ काण्डों का है। ऋग्-गणना के लिए पटलिका का क्रम अधिक उपयोगी है। यदि अथर्ववेद के बर्लिन संस्करणानुसार प्रत्येक पर्याय-समूह को एक एक सूक्त मानें, तो ८–११ काण्डों में दस दस सूक्त ही पाए जाते है। इसी कारण बारहवां काण्ड तीसरे विभाग में मिलाया गया है। इस सम्बन्ध में हमारे मित्र अध्यापक

१—देखो बृहत्सर्वानुक्रमणी के सम्पादक पं० रामगोपाल की २०वें काण्ड के आरम्भ की टिप्पणी।

जार्ज मैल्विल ब्लोलिङ्ग का लेख भी देखने योग्य है ।[1] उन का कथन है कि अथर्ववेद १९।२३।२१॥ के अनुसार ८–११ काण्ड ही क्षुद्र सूक्त हैं, और यही दूसरे विभाग में होने चाहिएं ।

शौनकीय संहिता की मन्त्र-गणना

पञ्चपटलिकानुसार अठारह काण्डों में कुल मन्त्र ४६२७ हैं । व्हिटने के अनुसार इन काण्डों की मन्त्र-संख्या ४४३२ है । भिन्नता का कारण पर्याय-सूक्त हैं । व्हिटने की गणना सम्बन्धी टिप्पणी देखने से यह भेद भले प्रकार अवगत हो जाता है ।

शौनकीय-संहिता में अपपाठ

सब से पहले अथर्ववेद का संस्करण सन् १८५६ में बर्लिन से प्रकाशित हुआ था । इस के सम्पादक थे रोथ और व्हिटने । तदनन्तर शङ्करपाण्डुरङ्ग पण्डित ने मुम्बई से सायणभाष्य सहित अथर्ववेद का संस्करण निकाला था । मुम्बई संस्करण पहले संस्करण की अपेक्षा बहुत अच्छा है, परन्तु इस में भी अनेक अशुद्धियां हैं । हमारे मित्र पं० रामगोपाल जी ने हमारी प्रार्थना पर दन्त्योष्ठविधि नाम का एक लक्षणग्रन्थ सन् १९२१ में प्रकाशित किया था। उस के देखने से शौनकीय शाखा के अनेक अपपाठ शुद्ध हो सकते हैं। विशेष देखो दन्त्योष्ठविधि १।११॥ २।३॥ २।५॥ इत्यादि।

पंचपटलिका और शौनकीय शाखा-क्रम

पञ्चपटलिका में अथर्ववेद का अठारहवां काण्ड पहले है, और सतारहवां काण्ड उस के पश्चात् है । हम इस भेद का कारण नहीं समझ सके । जार्ज मैल्विल बोलिङ्ग की सम्मति है कि पञ्चपटलिका का पाठ ही आगे पीछे हो गया है—

Atleast two other passages are similarly misplaced, and there are besides probably the lacunas already mentioned.[2]

अर्थात्—पञ्चपटलिका के पाठों में उलट पलट हुआ है ।

---

1. American Journal of Philology, October, 1921, p. 367, 368. पञ्चपटलिका की समालोचना।

२—पूर्वोद्धृत जर्नल, पृ० ३६७ ।

५—जाजलाः । पाणिनीयसूत्र ६।४।१४४॥ पर महाभाष्यकार वार्तिकानुसार जाजलाः प्रयोग पढ़ता है । जाजलों के पुरुषसूक्त का वर्णन हम पृ० २२५ पर कर चुके हैं । बाईसवें अर्थात् अरणिलक्षण परिशिष्ट के दूसरे खण्ड में लिखा है—

वाहुमात्रा देवदर्शैर् जाजलैरुरुमात्रिका ॥३॥

यहां अरणि के सम्बन्ध में जाजलों का मत दर्शाया है ।

६—जलदाः । अथर्वपरिशिष्ट २।५॥ में जलदों की निन्दा मिलती है—

पुरोधा जलदो यस्य मौदो वा स्यात्कदाचन ।
अब्दादशभ्यो मासेभ्यो राष्ट्रभ्रंशं स गच्छति ॥२॥

अर्थात्—जलदशाखीय को पुरोहित बना कर राजा का राष्ट्र नष्ट हो जाता है ।

आथर्वण परिशिष्ट अरणिलक्षण खण्ड २ में इस शाखा वालों का जलदायन नाम से स्मरण किया गया है ।

७—ब्रह्मवदाः । इस शाखा का नाम चरणव्यूह में मिलता है ।

क्या ब्रह्मवद् और भार्गव एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं

बाईसवें अथर्व परिशिष्ट का नाम अरणिलक्षण है । इस के दशम अर्थात् अन्तिम खण्ड में लिखा है कि यह परिशिष्ट पिप्पलाद-कथित है—

एतदेवं समाख्यातं पिप्पलादेन धीमता ॥४॥

अब विचारने का स्थान है कि इस परिशिष्ट के दूसरे खण्ड में अरणि-मान के विषय में आठ आचार्यों के मत दिए गए हैं । और पिप्पलाद से अतिरिक्त आठ ही आथर्वण शाखाकार आचार्य हैं । अरणिलक्षण में स्मरण किए गए आचार्य हैं—स्तौदायन, देवदर्शी, जाजलि, चारणवैद्य, मौद, जलदायन, भार्गव और शौनक । पिप्पलाद ने इस परिशिष्ट में अपने नाम से अपना मत नहीं दिया । अन्य आठ आचार्यों में से सात तो निश्चित ही आथर्वण संहिताकार हैं । आठवां नाम भार्गव है । प्रकरणवशात् यह भी संहिताकार ही होना चाहिए । वह संहिताकार ब्रह्मवद के अतिरिक्त अन्य है नहीं, अतः ब्रह्मवद का ही गोत्र-

नाम भार्गव होगा। मारीस ब्लूमफील्ड के ध्यान में यह बात नहीं आई, इसी कारण उन्हों ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण के १३ पृष्ठ पर ब्रह्मवदों के वर्णन में लिखा था कि—

Not found in Atharvan literature outside of the Caranavyuha.

अर्थात्—चरणव्यूह के अतिरिक्त अथर्व वाङ्मय में ब्रह्मवद शाखा का नाम नहीं मिलता।

यदि हमारा पूर्वोक्त अनुमान ठीक है, कि जिस की अत्यधिक सम्भावना है, तो ब्रह्मवदों का वर्णन अथर्ववाङ्मय में भार्गव नाम के अन्तर्गत मिलता है।

८—देवदर्शाः। श्मशान के मान-विषय में कौशिक सूत्र खण्ड ३५ में लिखा है—

एकादशभिर्देवदर्शिनाम् ॥७॥

अर्थात्—देवदर्शियों का मान ग्यारह से है।

शौनकों के मान का इन से विकल्प है। देवदर्शियों का उल्लेख जाजलों के वर्णन में भी आ चुका है। पाणिनीय गण ४।३।१०६॥ में देवदर्शन नाम मिलता है।

९—चारणवैद्याः। कौशिकसूत्र ६।३७॥ की व्याख्या में केशव लिखता है—

त्वमग्ने व्रतपा असि तृचं सूक्तं कामस्तदग्र इति पञ्चर्चं सूक्तम्। एते चारणवैद्यानां पठ्यन्ते।

अर्थात्—चारणवैद्यों के तन्त्र में ये सूक्त पढ़े जाते हैं।

अथर्व परिशिष्ट २२।२॥ में लिखा है—

चारणवैद्यैर्जंघे च मौदेनाष्टाङ्गुलानि च ॥४॥

वायु पुराण ६१।६९॥ तथा ब्रह्माण्ड पुराण २।३५।७८,७९॥ में चारणवैद्यों की संहिता की मन्त्र-संख्या कही है। इस से प्रतीत होता है कि कभी यह संहिता बड़ी प्रसिद्ध रही होगी। दोनों पुराणों का सम्मिलित पाठ नीचे लिखा जाता है—

तथा चारणवैद्यानां प्रमाणं संहितां शृणु ।
षट्सहस्रमृचामुक्तमृचः षड्विंशतिः पुनः ॥
एतावदधिकं तेषां यजुः कामं[1] विवक्ष्यति[1] ।

अर्थात्—चारणवैद्यों की संहिता में ६०२० ऋचाएं हैं ।

आथर्वण मन्त्र-संख्या

चरणव्यूह में आथर्वण शाखाओं की मन्त्र-संख्या द्वादशैव सहस्राणि अर्थात् १२००० लिखी है । चरणव्यूहों में एक और भी पाठ है—

द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्मत्वं साभिचारिकम् ।
एतद्वेदरहस्यं स्यादथर्ववेदस्य विस्तरः ॥

इस श्लोक का अभिप्राय भी पूर्ववत् ही है । ब्रह्माण्ड और वायु पुराणों में चारणवैद्यों की मन्त्र-संख्या गिना कर एक और आथर्वण-मन्त्र संख्या दी है । उस संख्या वाले पाठ बहुत अशुद्ध हो चुके हैं, तथापि विद्वानों के विचारार्थ आगे दिए जाते हैं—

एकादश सहस्राणि दश* चान्या* दशोत्तराः । [ऋचश्चान्या]
ऋचां दश सहस्राणि अशीतित्रिशतानि* च ॥७०॥ [ह्यशीतिस्त्रिंशदेव]
सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः ।
एतावद्भृगुविस्तारमन्यच्चाथर्विकं* बहु॥७१॥[एतावानृचि विस्तारो ह्यन्यः]
ऋचामथर्वणां पञ्च सहस्राणि विनिश्चयः ।
सहस्रमन्यद्विज्ञेयमृषिभिर्विंशतिं विना ॥७३॥
एतदङ्गिरसा* प्रोक्तं तेषामारण्यकं पुनः । [एतदङ्गिरसां]

यहां मूलपाठ वायु से दिया गया है, तथा कोष्ठों में ब्रह्माण्ड पुराण के आवश्यक पाठान्तर भी दे दिए हैं । इन श्लोकों से प्रतीत होता है कि भृगु और अङ्गिरसों की पृथक् पृथक् संख्या यहां दी गई है । ब्रह्मवद का भार्गव होना पूर्व कहा जा चुका है । उस का भी इस वर्णन से कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है ।

आथर्वण चरणव्यूह में सारी शाखाओं की मन्त्र-संख्या के विषय में लिखा है—

१—ब्रह्माण्ड—किमपि वक्ष्यते । ये पाठ संदिग्ध हैं ।

तेषामध्ययनम्—

ऋचां द्वादश सहस्राण्यशीतिस्त्रिशतानि च।
पर्यायिकं द्विसहस्राण्यन्यांश्चैवार्चिकान् बहून्।
एतद्ग्राम्यारण्यकानि षट् सहस्राणि भवन्ति।

अर्थात्—ऋचाएं १२३८० हैं। पर्याय २००० हैं। ग्राम्यारण्यक ६००० है। यह पाठ भी बहुत स्पष्ट नहीं है।

अथर्ववेद के अनेक नाम

१—अथर्वाङ्गिरसः अथर्ववेद १०।७।२०॥
२—भृग्वङ्गिरसः आथर्वण याज्ञिक-ग्रन्थों में
३—ब्रह्मवेद आथर्वण याज्ञिक-ग्रन्थों में
४—अथर्ववेद सर्वत्र प्रसिद्ध

पहले दो नामों में भृगु और अथर्वा शब्द एक ही भाव के द्योतक प्रतीत होते हैं। परलोकगत मारीस ब्लूमफील्ड ने अपने अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण नामक अङ्गरेजी ग्रन्थ के आरम्भ में इन नामों के कारणों और अर्थों पर बड़ा विस्तृत विचार किया है। उन की सम्मति है कि अथर्वा या भृगु शब्द शान्त कर्मों के लिए हैं और अङ्गिरस शब्द घोर आदि कर्मों के लिए है। चूलिकोपनिषद् में अथर्वावेद को भृगुविस्तर लिखा है। वायुपुराण के पूर्वलिखित ७२वें श्लोक में भी भृगुविस्तर शब्द आया है। यह शब्द भी भृग्वङ्गिरस नाम पर प्रकाश डालता है।

अथर्ववेद सम्बन्धी एक आगम

किरातार्जुनीय १०।१०॥ का अन्तिम पाद है—

कृतपदपंक्तिरथर्वणेव वेदः।

इस की टीका में मल्लिनाथ लिखता है—

अथर्वणा वसिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेदः चतुर्थवेद इत्यर्थः। अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वसिष्ठकृत इत्यागमः।

अर्थात्—अथर्व का मन्त्रोद्धार वसिष्ठ ने किया, ऐसा आगम है। हम ने यह आगम अन्यत्र नहीं सुना। न ही प्राचीन ग्रन्थों में कोई ऐसा संकेत है। इस आगम का मूल जाने विना इस पर अधिक लिखना व्यर्थ है।

द्वादश अध्याय

वे शाखाएं जिन का सम्बन्ध हम किसी वेद से स्थिर नहीं कर सके

१—आश्मरथाः। काशिकावृत्ति ४।३।१०५॥ पर आश्मरथः कल्पः का उदाहरण मिलता है। भारद्वाज आदि श्रौतसूत्रों में इति आश्मरथ्यः [१।१६।७॥]। इति आलेखनः [१।१७।१॥]। कह कर दो आचार्यों का मत प्रायः उद्धृत किया गया है। उन में से आश्मरथ्य का पिता ही इस सौत्रशाखा का प्रवक्ता है। काशिकावृत्ति के अनुसार आश्मरथ आचार्य भल्लु, शाट्यायन और ऐतरेय आदि आचार्यों से अवरकालीन है।

आश्मरथ्य आचार्य का मत वेदान्तसूत्र १।४।२०॥ में लिखा गया है। चरक सूत्रस्थान १।१०॥ में—विश्वामित्राश्वरथ्यौ च मुद्रित पाठ है। सम्भव है आश्मरथ्य के स्थान में आश्वरथ्य अशुद्ध पाठ हो गया हो।

२—काश्यपाः। काशिकावृत्ति ४।३।१०३॥ पर लिखा है—काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीते काश्यपिनः। इस उदाहरण से काशिकाकार बताता है कि ऋषि काश्यप प्रोक्त एक कल्पसूत्र था।

कश्यप का धर्मसूत्र प्रसिद्ध ही है। इस का एक हस्तलेख दयानन्द कालेज लाहौर के पुस्तकालय में है। इस धर्मसूत्र के प्रमाण विश्वरूप आदि अनेक पुराने टीकाकारों ने अपने ग्रन्थों में दिए हैं। सम्भव है कि कश्यप के कल्पसूत्र का ही अन्तिम भाग कश्यप धर्मसूत्र हो। महाभारत आश्वमेधिकपर्व में ९६ अध्याय है। यह और इस से अगले अध्याय दाक्षिणात्य पाठ में ही मिलते हैं। उत्तरीय पाठ में इन का अभाव है। इस ९६ अध्याय के सोलहवें श्लोक में काश्यप के धर्मशास्त्र का नाम मिलता है।

३—**कार्मन्दाः** । काशिकावृत्ति ४।३।१११॥ से इस शाखा का पता लगता है।

४—**कार्शाश्वाः** । कार्मन्दों के साथ काशिका में इस सूत्र का भी नाम मिलता है।

५—**क्रौडाः**। महाभाष्य ४।२।६६॥ पर क्रौडाः। काङ्कताः। मौदाः। पैप्पलादाः नाम मिलते हैं। क्रौड कोई संहिता या ब्राह्मणकार है।

६—**काङ्कताः** । क्रौडाः के साथ काङ्कताः प्रयोग संख्या ५ में आ गया है। आपस्तम्ब श्रौत १४।२०।४॥ में कङ्कति ब्राह्मण उद्धृत है।

७—**वाल्मीकाः** । तैत्तिरीय प्रातिशाख्य ५।३६॥ के भाष्य में माहिषेय लिखता है—**वाल्मीकेः शाखिनः** ।

८—**शैत्यायनाः** ।

९—**कोहलीपुत्राः** । तै० प्रा० १७।२॥ के भाष्य में कौहलीपुत्र इसी शाखा का पाठान्तर है।

१०—**पौष्करसादाः** ।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य ५।४०॥ के भाष्य में माहिषेय लिखता है—

शैत्यायनादीनां कोहलीपुत्र–भारद्वाज–स्थविरकौण्डिन्य–पौष्करसादीनां शाखिनां······ ।

इन में से भारद्वाज और कौण्डिन्य शाखाओं का वर्णन याजुष अध्याय में हो चुका है। शेष तीन अब लिख दी गई हैं। पौष्करसादी आदि को तै० प्रा० भाष्य में अन्यत्र भी शाखा नाम से लिखा गया है।

११—**प्लाक्षाः**। **प्लाक्षेः शाखिनः** तै० प्रा० १४।१०॥ के माहिषेय भाष्य में ऐसा प्रयोग है।

१२—**प्लाक्षायणाः** । माहिषेयभाष्य १४।११॥ में इसे शाखा माना है। यह प्लाक्षों से भिन्न शाखा है।

१३—**वाडभीकाराः** । माहिषेयभाष्य १४।१३॥ में इस का उल्लेख है।

१४—**साङ्कृत्याः** । माहिषेयभाष्य१६।१६॥ में **साङ्कृत्यस्य शाखिनः** प्रयोग है।

संख्या ७–१४ तक की शाखाएं सम्भवतः सौत्र शाखाएं ही होंगी। इन का सम्बन्ध भी कृष्ण याजुषों से ही होगा।

१५—**त्रिखर्वाः**। ताण्ड्य ब्राह्मण २।८।३॥ में इस शाखा का नाम मिलता है।

१६–१७—**तैतिलाः। शैखण्डाः। सौकरसद्माः** ये तीन नाम महाभाष्य ६।४।१४४॥ में मिलते हैं। इन के साथ लाङ्गला आदि नाम भी हैं, पर उन का उल्लेख सामवेद के प्रकरण में हो गया है। पाणिनीयगण ३।३।१०६॥ में भी अनेक संहिता प्रवचनकर्ता ऋषियों के नाम हैं। उन में से शौनक आदि का वर्णन हो चुका है। शेष शार्ङ्गरव, अश्वपेय आदि नामों का शोधन होना आवश्यक है।

वेद-शाखा-सम्बन्धी जितनी भी सामग्री हमारे ज्ञान में आ चुकी है, उस का वर्णन हो चुका। बहुधा यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रीति से किया गया है। इस वर्णन का एक प्रयोजन यह भी है कि आर्य जन यदि यत्न करेंगे तो अनेक अनुपलब्ध वैदिक ग्रन्थ भी सुलभ हो सकेंगे। वेद सम्बन्धी इतनी विशाल ग्रन्थ राशि के अनेक ग्रन्थरत्न अब भी आर्य ब्राह्मणों के घरों में सुरक्षित मिल सकते हैं, बस आवश्यकता है, तो परिश्रमी अन्वेषक की।

———

त्रयोदश अध्याय

एकायन शाखा

पाञ्चरात्र संहिताओं में "एकायन वेद" की बड़ी महिमा गाई गई है। इस आगम का आधार ही इस ग्रन्थ पर है। श्रीप्रश्नसंहिता में लिखा है—

वेदमेकायनं नाम वेदानां शिरसि स्थितम्।
तदर्थकं पाञ्चरात्रं मोक्षदं तत् क्रियावताम्॥

अर्थात्—एकायन वेद अत्यन्त श्रेष्ठ है।

इसी विषय पर ईश्वरसंहिता के प्रथमाध्याय में लिखा है—

पुरा तोताद्रिशिखरे शाण्डिल्योपि महामुनिः।
समाहितमना भूत्वा तपस्तप्त्वा सुदारुणम्॥
द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च।
साक्षात् सङ्कर्षणाल् लब्ध्वा वेदमेकायनाभिधम्॥
सुमन्तुं जैमिनिं चैव भृगुं चैवौपगायनम्।
मौञ्जायनं च तं वेदं सम्यगध्यापयत् पुरा॥
एष एकायनो वेदः प्रख्यातः सर्वतो भुवि।

अर्थात्—शाण्डिल्य ने साक्षात् सङ्कर्षण से एकायन वेद प्राप्त किया। वह वेद उस ने सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन और मौञ्जायन को पढ़ाया। यह एकायन वेद सारे संसार में प्रसिद्ध है।

पाञ्चरात्र आगम वालों ने अपने वेद की श्रेष्ठता जताने के लिए निस्सन्देह बहुत कुछ घड़ा है, तथापि एकायन नाम का एक प्राचीन शास्त्र था अवश्य। छान्दोग्य उपनिषद् ७।१–२॥ में लिखा है—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि·······वेदानां वेदं·····निधिं वाकोवाक्यमेकायनं।

अर्थात्—[भगवान् सनत्कुमार को नारद कहता है] हे भगवन् मैं ने ऋग्वेदादि पढ़ा है, और एकायन शास्त्र पढ़ा है। उपनिषद् का एकायन शास्त्र क्या यही पाञ्चरात्र वाला एकायन शास्त्र था, यह हम नहीं कह सकते। कई पाञ्चरात्र श्रुतियां और उसी प्रकार के उपनिषदादि वचन उत्पल अपनी स्पन्दकारिका में लिखता है (पृ० २, ८, २२, २९, ३५)। बहुत सम्भव है कि ये श्रुतियां और उपनिषद् सदृश वचन एकायनशास्त्र के ग्रन्थों से ली गई हों।

श्री विनयतोष भट्टाचार्य ने जयाख्य संहिता की भूमिका[1] में लिखा है कि काण्वशाखामहिमासंग्रह[2] में नागेश प्रतिपादन करता है कि एकायन शाखा काण्वशाखा ही थी। सात्वत शास्त्र के अध्ययन से नागेश की कल्पना युक्त प्रतीत नहीं होती। जयाख्य संहिता का बीसवां पटल प्रतिष्ठाविधि कहा जाता है। उस में लिखा है—

ऋङ्मन्त्रान्पाठयेत्पूर्वं वीक्ष्यमाणमुदग्दिशम्।
यजुर्वृन्दं वैष्णवं यत् पाठयेद्देशिकस्तु तत् ॥२६२॥
गायेत् सामानि शुद्धानि सामशः पश्चिमस्थितः।
भक्तश्चोदकस्थितो ब्रूयाद्दक्षिणस्थो ह्यथर्वणम् ॥२६३॥

अर्थात्—प्रत्येक वेद के मन्त्रों से एक एक दिशा में क्रिया करे।

इस से आगे वहीं लिखा है—

एकायनीयशाखोत्थान् मन्त्रान् परमपावनान् ॥२६९॥

अर्थात्—आप्त यतियों को एकायनीय शाखा के परमपावन मन्त्र पढ़ाए।

यदि एकायन शाखा चारों वेदों के अन्तर्गत होती तो वेदों को कह कर, पुनः इस का पृथक् उल्लेख न होता। छान्दोग्योपनिषद् के पूर्व प्रदर्शित प्रमाण में भी एकायन शास्त्र वेदों में नहीं गिना गया, प्रत्युत अन्य विद्याओं के साथ गिना गया है।

१—पृ० ६ टिप्पणी ४।

२—इस ग्रन्थ का हस्तलेख राजकीय प्राच्य पुस्तकालय मद्रास के संग्रह में है। देखो त्रैवार्षिक सूची भाग ३, १बी, पृ० ३२९९।

एकायन शाखा का स्वरूप

सात्वत शास्त्रों के अध्ययन से हमें प्रतीत होता है कि एकायन शास्त्र भक्तिपरक शास्त्र था। उस में वेदों से भी मन्त्र लिए गए थे, और ब्राह्मणादि ग्रन्थों से भी संग्रह किया गया था, तथा अनेक बातें स्वतन्त्रता से भी लिखी गई होंगी। वेदों में से यजुर्वेद की सामग्री इस में अधिक होगी। सात्वत संहिता पच्चीसवें परिच्छेद में लिखा है—

एकायनान् यजुर्मयानाश्रावि तदनन्तरम् ॥९४॥

सात्वत संहिता के पच्चीसवें परिच्छेद में एकायन संहिता के दो मंत्र लिखे हैं। वे नीचे दिए जाते हैं—

१—ओं नमो ब्रह्मणे ॥५३॥

२—अजस्य नाभावित्यादिमन्त्रैरेकायनैस्ततः ॥८॥

अजस्य नाभौ मन्त्र ऋग्वेद में १०।८२।६॥ मन्त्र हैं।

पाञ्चरात्र की अनेक संहिताओं में से एकायन मन्त्रों का संग्रह करना, एकायन शास्त्र के ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। किसी भावी विद्वान् को यह काम अवश्य करना चाहिए।

चतुर्दश अध्याय

वेदों के ऋषि

वैदिक शाखाओं का वर्णन हो चुका। शाखा-प्रवचन-काल भी निर्णीत कर दिया गया। अब प्रश्न होता है कि वेदों का काल कैसे जाना जाए। वेदों का काल जानने के लिए पाश्चात्य लेखकों ने अनेक कल्पनाएं की हैं। वे कल्पनाएं हैं सारी निराधार। उन से कोई तथ्य तो जाना नहीं जा सकता, हां साधारण जन उन्हें पढ़ कर भ्रम में अवश्य पड़ सकते हैं। वेदों का काल जानने के लिए, वेदों के ऋषियों का इतिहास जानना बड़ा सहायक होगा।

हम जानते हैं कि वेदमन्त्रों पर जो ऋषि लिखे हुए हैं, अथवा मन्त्रों के सम्बन्ध में अनुक्रमणियों में जो ऋषि दिए हैं, वही उन मन्त्रों के आदि द्रष्टा नहीं है। मन्त्र तो उन से बहुत पहले से विद्यमान चले आ रहे हैं, तथापि उन ऋषियों का इतिवृत्त जानने से हम इतना तो कह सकेंगे कि अमुक अमुक ऋषि के अमुक अमुक मन्त्र शाखा-प्रवच-काल से इतना काल पहले अवश्य विद्यमान थे। वे मन्त्र उस काल से पीछे के हो ही नहीं सकते।

पुराणों ने उन ऋषियों का एक अच्छा ज्ञान सुरक्षित रखा है। वायुपुराण ५९।५६॥ ब्रह्माण्डपुराण २।३२।६२॥ मत्स्यपुराण १४५।५८॥ से यह वर्णन आरम्भ होता है। इन तीनों पुराणों का यह पाठ बहुत अशुद्ध हो चुका है, तथापि निम्नलिखित श्लोक कुछ शुद्ध कर के लिखे जाते हैं। इन के शोधन में बहुत तो नहीं, पर हम कुछ कुछ सफल अवश्य हुए हैं। श्लोकों के अङ्क ब्रह्माण्ड के अनुसार हैं—

ऋषीणां तप्यतामुग्रं तपः परमदुष्करम् ॥६७॥
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
असन्तोषाद् भयाद् दुःखात् सुखाच्[1] छोकाच्च पञ्चधा ॥६८॥
ऋषीणां तपः कार्त्स्न्येन दर्शनेन यदृच्छया ।

इन श्लोकों का यही अभिप्राय है कि तप के प्रभाव से ऋषियों को मन्त्रों का साक्षात्कार हुआ । वह तप अनेक कारणों से किया गया । यही भाव निरुक्त और तै॰ आरण्यक में मिलता है ।

पांच प्रकार के ऋषि

जिन ऋषियों को मन्त्र प्रादुर्भूत हुए, वे पांच प्रकार के हैं । उन को महर्षि, ऋषि, ऋषीक ऋषिपुत्रक, और श्रुतर्षि कहते हैं । चरकतन्त्र सूत्रस्थान १।७॥ की व्याख्या में भट्टार हरिचन्द्र चार प्रकार के मुनि कहता है—

मुनीनां चतुर्विधो भेदः । ऋषयः, ऋषिकाः ऋषिपुत्रा महर्षयश्च ।

हरिचन्द्र श्रुतर्षियों को नहीं गिनता । इन पांच प्रकार के ऋषियों में से पुराणों में अब तीन ही प्रकार के ऋषियों का वर्णन रह गया है । शेष दो प्रकार के ऋषियों के सम्बन्ध के पाठ नष्ट हो चुके हैं । इन ऋषियों का पुराणस्थ पाठ आगे लिखा जाता है—

अतीतानागतानां च पञ्चधा ह्यार्षकं स्मृतम् ।
अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि तत्र ह्यार्षसमुद्भवम् ॥७०॥
इत्येता ऋषिजातीस्ता नामभिः पञ्च वै शृणु ॥९५॥

अर्थात्—अब पांच प्रकार के ऋषियों का वर्णन किया जाता है ।

१—महर्षि=ईश्वर

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च ह्यङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥९६॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ।
परत्वेनर्षयो यस्मात् स्मृतास्तस्मान्महर्षयः ॥९७॥

ऋषि कोटि में प्रथम दस महर्षि हैं । वे स्वयं ईश्वर और ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ।

१—मत्स्य—मोहाच् ।

२—ऋषि

इन दस भृगु आदि महर्षियों के पुत्रों का वर्णन आगे मिलता है। वे ऋषि कहाते हैं—

ईश्वराणां सुता ह्येते ऋषयस्तान्निबोधत।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा ॥९८॥
उतथ्यो वामदेवश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा[1]।
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्बालखिल्यास्तथार्वतः ॥९९॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा[2] चर्षितां[2] गताः।

अर्थात्—उशना काव्य, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य, उशिक्, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, वालखिल्य और अर्वत वे ऋषि हैं, जो तप से इस पदवी को प्राप्त हुए।

३—ऋषि पुत्र=ऋषीक

ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ॥१००॥
वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजस्तथैव च।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शरद्वतः ॥१०१॥
वाजश्रवाः सुवित्तश्च वश्याश्वश्च पराशरः।
दधीचः शंशपाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ॥१०२॥
इत्येते ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषितां गताः।

यहां दो संभावनाएं हो सकती हैं। या तो ऋषिपुत्र और ऋषीक एक ही हैं, और या दो। यदि ये दो हैं, तो ऋषिपुत्र और ऋषिपुत्रक एक ही होंगे। अस्तु, पुराण-पाठों की अशुद्ध अवस्था में इस का पूर्ण निर्णय करना कठिन है।

उन्नीस भृगु

पुराणों में भृगुकुल के उन्नीस मन्त्रकृत ऋषि कहे गए हैं। उन के नाम निम्नलिखित श्लोकों में दिए हैं—

१—वायु—अयोज्यश्चौशि०। ब्रह्माण्ड—अपास्यश्चोशि०। मत्स्य—अगस्त्यः कौशिकस्तथा।

२—वायु—प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषितां।

एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ।
भृगुः काव्यः प्रचेताश्च दधीचो ह्याप्नवानपि ॥१०४॥
और्वोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा ।
आर्ष्टिषेणश्च्यवनश्च वीतहव्यः सुमेधसः ॥१०५॥
वैन्यः पृथुर्दिवोदासो वाध्र्यश्वो गृत्सशौनकौ ।
एकोनविंशतिर्ह्येते भृगवो मन्त्रवादिनः ॥१०६॥

१–भृगु	६–और्व [ऋचीक]	११–च्यवन	१६–वाध्र्यश्व
२–काव्य[उशना=शुक्र]	७–जमदग्नि	१२–वीतहव्य	१७–गृत्स[मद]
३–प्रचेता	८–विद	१३–सुमेधा	१८–शौनक
४–दध्यङ् [आथर्वण]	९–सारस्वत	१४–वैन्य पृथु	
५–आप्नवान्	१०–आर्ष्टिषेण	१५–दिवोदास	

ये अठारह ऋषि-नाम हैं। पुराणों में कुल संख्या उन्नीस कही है, और वैन्य तथा पृथु दो व्यक्ति गिने हैं। वैदिक साहित्य में वैन्य पृथु एक ही व्यक्ति है, अतः हम ने यह एक ही नाम माना है। इस प्रकार उन्नीसवां नाम कोई और खोजना पड़ेगा। इन में से अनेक ऋषि भृगु ही कहे जाते हैं। उन को मूल भृगु से सदा पृथक् जानना चाहिए। इस कुल का सर्वोत्तम वृत्तान्त महाभारत आदिपर्व ६०।४०॥ से आरम्भ होता है। तदनुसार भृगु का पुत्र कवि था। कवि का शुक्र हुआ, जो योगाचार्य और दैत्यों का गुरु था। भृगु का एक और पुत्र च्यवन था। इस च्यवन का पुत्र और्व था। और्व-पुत्र ऋचीक था, और ऋचीक का पुत्र जमदग्नि हुआ। महाभारत में इस से आगे अन्य वंशों का वर्णन चल पड़ता है। पुराणों के अनुसार च्यवन और सुकन्या के दो पुत्र थे। एक था आप्नवान् और दूसरा दधीच या दध्यङ्। आप्नवान् का पुत्र और्व था। और्वों का स्थान मध्यदेश था। यहीं पर इन भार्गवों का कार्तवीर्य अर्जुन से झगड़ा आरम्भ हो गया। यहीं पर अर्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि का वध किया था। वीतहव्य पहले क्षत्रिय था। एक भार्गव ऋषि के वचन से वह ब्राह्मण हो गया। उसी के कुल में गृत्समद और शौनक हुए थे।

भृगु-कुल और अथर्ववेद

पृ० २३२ पर हम लिख चुके हैं कि अथर्ववेद का एक नाम भृग्वङ्गिरोवेद भी था। इस का अभिप्राय यही है कि भृगु और अङ्गिरा कुलों का इस वेद से बड़ा सम्बन्ध था। भृगु-कुल के ऋषियों के नाम ऊपर लिखे जा चुके हैं। उन में से भृगु, दध्यङ् और शौनक स्पष्ट ही आथर्वण हैं। यही शौनक कदाचित् आथर्वण शौनक शाखा का प्रवक्ता हो। भृगु, गृत्समद, और शुक्र तो अनेक आथर्वण सूक्तों के द्रष्टा हैं इन में से भी शुक्र के सूक्त अधिक हैं। और भृग्वङ्गिरा के भी बहुत सूक्त हैं। अतः अथर्ववेद का भृग्वङ्गिरोवेद नाम युक्त ही है।

अथर्ववेद और दैत्यदेश

उशना शुक्र का दैत्य-गुरु होना सुप्रसिद्ध है। फारस, चालडिया, बैबिलोनिया आदि देश ही दैत्य देश थे। शुक्र ने इन देशों में अपने पिता से पढ़ी हुई आथर्वण श्रुतियों का प्रचार अवश्य किया होगा। इसी कारण इन देशों की भाषा में कई आथर्वण शब्द बहुत प्रचलित हो गए। उन्हीं शब्दों में से पृ० ४० पर लिखे हुए आलिगी आदि शब्द हैं। अतः बाल गङ्गाधर तिलक का यह कहना युक्त नहीं कि ये शब्द चालडिया की भाषा से अथर्ववेद में आए होंगे। ये शब्द तो शुक्र के कारण अथर्ववेद से चालडिया की भाषा में गए हैं।

अङ्गिरा-कुल के तेंतीस ऋषि

अङ्गिरा-कुल के निम्नलिखित तेंतीस ऋषि पुराणों में लिखे गए हैं—

१—अङ्गिरा	९—मान्धाता	१७—ऋषभ	२५—वाजश्रवा
२—त्रित	१०—अम्बरीष	१८—कपि	२६—अयास्य
३—भरद्वाज बाष्कलि	११—युवनाश्व	१९—पृषदश्व	२७—सुवित्ति
४—ऋतवाक्	१२—पुरुकुत्स	२०—विरूप	२८—वामदेव
५—गर्ग	१३—त्रसदस्यु	२१—कण्व	२९—असिज
६—शिनि	१४—सदस्युमान्	२२—मुद्गल	३०—बृहदुक्थ
७—संकृति	१५—आहार्य	२३—उतथ्य	३१—दीर्घतमा
८—गुरुवीत	१६—अजमीढ	२४—शरद्वान्	३२—कक्षीवान्

तेंतीसवां नाम अशुद्ध पाठों के कारण लुप्त हो गया है । इन बत्तीस नामों में भी अनेक नामों का शुद्ध रूप हम निश्चित नहीं कर सके। इस अङ्गिरा गोत्र में आगे कई पक्ष बन गए हैं, यथा कण्व, मुद्गल, कपि इत्यादि । इस कुल का मूल अङ्गिरा बहुत पुराना व्यक्ति होगा । अङ्गिरा कुल के इन मन्त्र-द्रष्टाओं में मान्धाता, अम्बरीष और युवनाश्व आदि क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे। राजा अम्बरीष एक बहुत पुराना व्यक्ति है। महाभारत आदि में नाभाग अम्बरीष नाम से इस का उल्लेख बहुधा मिलता है । अङ्गिरा का भी अथर्ववेद से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। स्वतन्त्र रूप से और भृगु के साथ इस के अनेक सूक्त अथर्ववेद में हैं।

छः ब्रह्मवादी काश्यप

१—कश्यप	३—नैध्रुव	५—असित
२—वत्सार	४—रैभ्य	६—देवल

कश्यप-कुल में कुल छः ही ऋषि हुए हैं। इन में से असित और देवल का महाभारतकाल के इन्हीं नामों के व्यक्तियों से सम्बन्ध जानना चाहिए ।

छः आत्रेय ऋषि

१—अत्रि	३—श्यावाश्व	५—आविहोत्र
२—अर्चनाना	४—गविष्ठिर	६—पूर्वातिथि

पांचवें नाम के कई पाठान्तर हैं । सम्भव है यह नाम अन्धिगु हो। अन्धिगु गविष्ठिर का पुत्र और ऋग्वेद ९।१०१।। का ऋषि है ।

सात वासिष्ठ ऋषि

१—वसिष्ठ	३—पराशर	५—भरद्वसु	७—कुण्डिन
२—शक्ति	४—इन्द्रप्रमति	६—मैत्रावारुणि	

वासिष्ट-कुल में ये सात ब्रह्मवादी हुए हैं। इन्हीं में एक पराशर है। यही पराशर कृष्ण द्वैपायन का पिता था । कृष्ण द्वैपायन ने महाभारत और वेदान्तसूत्रों में मन्त्रों को नित्य माना है । द्वैपायन सदृश सत्यवक्ता ऋषि जब अपने पिता के दृष्ट-मन्त्रों को नित्य कहता है, तो इस नित्य सिद्धान्त की गम्भीर आलोचना करनी चाहिए । अनेक आधुनिक लोग वेद के इस नित्य सिद्धान्त के समझने में अभी तक अशक्त रहे हैं।

तेरह ब्रह्मिष्ठ कौशिक ऋषि

१—विश्वामित्र	५—अघमर्षण	९—कील	१३—धनञ्जय
२—देवरात	६—अष्टक	१०—देवश्रवा	
३—उद्गल (वल)	७—लोहित	११—रेणु	
४—मधुच्छन्दा	८—कत	१२—पूरण	

मत्स्य ने दो नाम और जोड़े हैं। वे हैं शिशिर और शालङ्कायन। वासिष्ठों के वर्णन के पश्चात् वायुपुराण का पाठ त्रुटित हो गया है। विश्वामित्र नाम के अनेक ऋषि समय समय पर हो चुके हैं। इस कुल का विश्वामित्र कौन था, यह अभी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। पृ० १५२ पर हम लिख चुके हैं कि वायुपुराण ९१।९३॥ के अनुसार देवरात के कृत्रिम पिता विश्वामित्र का निज नाम विश्वरथ था। सम्भव है यह विश्वामित्र विश्वरथ ही हो, परन्तु सैकड़ों विश्वामित्रों की विद्यमानता में अन्तिम निर्णय करना अभी कठिन है।

विश्वरथ विश्वामित्र के पिता का नाम गाधी था। गाधी के पश्चात् विश्वरथ ने राज्य संभाला। कुछ दिन राज्य करने के अनन्तर विश्वरथ ने राज्य छोड़ दिया और बारह वर्ष तक घोर तपस्या की। इसी विश्वरथ का देवराज वसिष्ठ से वैमनस्य हो गया। सत्यव्रत त्रिशंकु नाम का अयोध्या का एक राजकुमार था। उस की विश्वरथ ने बड़ी सहायता की। उसी का पुत्र हरिश्चन्द्र और पौत्र रोहित था। तपस्या के कारण यह विश्वरथ क्षत्रिय से ब्राह्मण ही नहीं, अपितु ऋषि बन गया। ऋषि बनने पर इस का नाम विश्वामित्र हो गया। इसी विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के यज्ञ में शुनःशेप देवरात को अपना कृत्रिम पुत्र बना लिया। ऐतरेय ब्राह्मण आदि में शुनःशेप की कथा प्रसिद्ध ही है।

तीन आगस्त्य ऋषि

१—अगस्त्य २—दृढद्युम्न (दृढायु) ३—इन्द्रबाहु (विध्मवाह)

ये तीन अगस्त्य-कुल के ऋषि थे।

दो क्षत्रिय मन्त्रवादी

वैवस्वत मनु और ऐल राजा पुरुरवा, दो क्षत्रिय ऋषि थे।

तीन वैश्य ऋषि

१—भलन्दन २—वत्स ३—संकील

ये तीन वैश्यों में श्रेष्ठ थे। इस प्रकार कुल ऋषि ९२ थे। उन का व्योरा निम्नलिखित है—

भृगु	१९
आङ्गिरस	३३
काश्यप	६
आत्रेय	६
वासिष्ठ	७
कौशिक	१३
आगस्त्य	३
क्षत्रिय	२
वैश्य	३
	९२

ब्रह्माण्ड में कुल संख्या ९० लिखी है, परन्तु मत्स्य में संख्या ९२ ही है। ब्रह्माण्ड का पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है। इस से आगे ब्रह्माण्ड में ही इस विषय का कुछ पाठ अधिक मिलता है। वायु का पाठ पहले ही टूट चुका था और मत्स्य का पाठ इस संख्या को गिना कर टूट जाता है। ब्रह्माण्ड में ऋषिपुत्रक और श्रुतर्षियों का वृत्तान्त भी लिखा है। ब्राह्मणों के प्रवचनकार अन्तिम प्रकार के ही ऋषि हैं। उन के नाम ब्राह्मण भाग में लिखेंगे।

वेद-मंत्र मंत्र-द्रष्टा ऋषियों से पूर्व विद्यमान थे

हम पृ०२३९ पर लिख चुके हैं कि वेद मन्त्रों के जो ऋषि अब मन्त्रों के साथ अनुक्रमणियों में स्मरण किए जाते हैं, वे बहुधा मन्त्रों के अन्तिम ऋषि हैं। मन्त्र उन से पहले से चले आ रहे हैं। इस बात को पुष्ट करने वाले दो प्रमाण हम ने अपने ऋग्वेद पर व्याख्यान में दिए थे। वे दोनों प्रमाण तथा कुछ नए प्रमाण हम नीचे लिखते हैं—

१—तैत्तिरीय संहिता ३।१।९।३०।। मैत्रायणी संहिता १।५।८।।

और ऐतरेय ब्राह्मण ५।१४॥ में एक कथा मिलती है । उस के अनुसार मनु के अनेक पुत्रों ने पिता की आज्ञा से पिता की सम्पत्ति बांट ली। उन का कनिष्ठ भ्राता नाभानेदिष्ठ अभी ब्रह्मचर्य वास ही कर रहा था। गुरुकुल से लौट कर नाभानेदिष्ठ ने पिता से अपना भाग मांगा । अन्य द्रव्य वस्तु न रहने पर पिता ने उसे दो सूक्त और एक ब्राह्मण दे कर कहा कि अङ्गिरस ऋषि स्वर्ग की कामना वाले यज्ञ कर रहे हैं । यज्ञ के मध्य में वे भूल कर बैठते हैं । तुम इन सूक्तों से उस भूल को दूर कर दो। जो दक्षिणा वे तुम्हें दें, वही तुम अपना भाग समझो । वे सूक्त ऋग्वेद दशम मण्डल के सुप्रसिद्ध ६१, ६२ सूक्त हैं। ब्राह्मण का पाठ तै० सं० के भाष्य में भट्ट भास्कर मिश्र ने दिया है। अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के इन सूक्तों का ऋषि नाभानेदिष्ठ है। नाभानेदिष्ठ का नाम भी ६१।१८॥ में मिलता है । इस कथा का अभिप्राय यही है कि ये सूक्त नाभानेदिष्ठ के काल से पहले विद्यमान थे, परन्तु इन का ऋषि वही नाभानेदिष्ठ है। इस कथा सम्बन्धी वक्तव्य-विशेष हमारे ऋग्वेद पर व्याख्यान में ही देखना चाहिए।

२—ऐतरेय ब्राह्मण ६।१८॥ तथा गोपथ ब्राह्मण ६।१॥ में लिखा है कि ऋग्वेद ४।१९॥ आदि सम्पात ऋचाओं को विश्वामित्र ने पहले (प्रथमं) देखा । तत्पश्चात् विश्वामित्र से देखी हुई इन्हीं सम्पात ऋचाओं को वामदेव ने जन साधारण में फैला दिया । कात्यायन सर्वानुक्रमणी के अनुसार इन ऋचाओं का ऋषि वामदेव है, विश्वामित्र नहीं । ये ऋचाएं वामदेव ऋषि से बहुत पहले विद्यमान थीं।

३—कौषीतकि ब्राह्मण १२।२॥ से कवष ऋषि का उल्लेख आरम्भ होता है । वहां लिखा है कि कवष ने पन्द्रह ऋचा वाला ऋग्वेद १०।३०॥ सूक्त देखा । तत्पश्चात् उस ने इस का यज्ञ में प्रयोग किया। कौ० १२।३॥ में पुनः लिखा है—

कवषस्यैष महिमा सूक्तस्य चानुवेदिता ।

अर्थात्—कवष की यह महिमा है, कि वह १०।३०॥ सूक्त का पिछला जानने वाला है।

इस से ज्ञात होता है कि कवष से पहले भी उस सूक्त को जानने वाले हो चुके थे। अनेक स्थानों में विद् आदि धातु के साथ अनु का अर्थ क्रमपूर्वक या अनुक्रम से होता है, परन्तु वैसे ही स्थानों में अनु का अर्थ पश्चात् भी होता है। अतः कौषीतकि के वचन का जो अर्थ हम ने किया है, वह इस वचन का सीधा अर्थ ही है।

मित्रवर श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी के शिष्य ब्रह्मचारी युधिष्ठिर का एक लेख आर्य-सिद्धान्त-विमर्श में मुद्रित हुआ है। उस का शीर्षक है—क्या ऋषि वेद-मन्त्र रचयिता थे। उस में उन्हों ने चार प्रमाण ऐसे उपस्थित किए हैं कि जिन से हमारे वाला पूर्वोक्त पक्ष ही पुष्ट होता है। उन्हीं के लेख से लेकर दो प्रमाण संक्षिप्तरूप में आगे लिखे जाते हैं। उन के शेष दो प्रमाणों पर हम विचार कर रहे हैं—

१—सर्वानुक्रमणी के अनुसार **कस्य नूनं**···। ऋग्वेद १।२४॥ का ऋषि आजीगर्ति=अजीगर्त का पुत्र देवरात है। यही देवरात विश्वामित्र का कृत्रिम पुत्र बन गया था और इसी का नाम शुनःशेप था। ऐतरेय ब्राह्मण ३३।३, ४॥ में भी यही कहा है कि शुनःशेप ने **कस्य नूनं** ऋक् द्वारा प्रजापति की स्तुति की। वररुचि-कृत निरुक्तसमुच्चय[१] में इसी सूक्त के विषय में एक आख्यान लिखा है। तदनुसार इस सूक्त का द्रष्टा अजीगर्त स्वयं है। यदि निरुक्तसमुच्चय का पाठ त्रुटित नहीं हो गया, तो शुनःशेप से पूर्व **कस्य नूनं** आदि मन्त्र विद्यमान थे।

२—तैत्तिरीय संहिता ५।२।३॥ तथा काठक संहिता २०।१०॥ में ऋग्वेद ३।२२॥ सूक्त विश्वामित्र-दृष्ट है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार यह सूक्त गाथी=गाधी का है। इस से भी पता लगता है कि विश्वामित्र से पहले यह सूक्त गाधी के पास था।

इन के अतिरिक्त अपने **ऋग्वेद पर व्याख्यान** में हम ने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि मन्त्र-द्रष्टा ऋषि मन्त्र रचयिता नहीं थे। वे तो मन्त्रार्थ-प्रकाशक या मन्त्र-विनियोजक आदि ही थे। हम पहले

१—श्रीयुत आचार्य विश्वश्रवाजी इस ग्रन्थ का संस्करण शीघ्र ही निकाल रहे हैं। इस के प्रकाशक होंगे, ला० मोतीलाल बनारसीदास, सैदमिट्ठा, लाहौर।

लिख चुके हैं कि भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषि मन्त्र-द्रष्टा ऋषि थे। इन भृगु, अङ्गिरा आदि का काल महाभारत-काल से सहस्रों वर्ष पूर्व था। महाभारत युद्ध का काल ईसा से ३१३९ वर्ष पहले है। अतः विचारना चाहिए कि जब वेद-मन्त्र इन भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियों से भी बहुत पहले अर्थात् ईसा से ४००० वर्ष से कहीं पहले विद्यमान थे, तो यह कहना कि ऋग्वेद का काल ईसा से २५००–२००० वर्ष पूर्व तक का है, एक भ्रममात्र है।

जो आधुनिक लोग भाषा-विज्ञान (Philology) पर बड़ा बल देकर वेद का काल ईसा से २०००–१५०० वर्ष पहले तक का निश्चित करते हैं, उन्हें भृगु, अङ्गिरा आदि के मन्त्रों की भाषा पराशर के मन्त्रों से मिलानी चाहिए। पराशर भारत-युद्ध-काल का है और भृगु, अङ्गिरा आदि बहुत पहले हो चुके हैं। उन्हें पता लगेगा कि उन के भाषा-विज्ञान की कसौटी वेदमन्त्रों का काल निश्चय करने में अणुमात्र भी सहायता नहीं दे सकती। वेदमन्त्रों का काल तो ऐतिहासिक-क्रम से ही निश्चित हो सकता है, और तदनुसार वेद कल्पनातीत काल से चला आ रहा है। ऋषियों के इतिहास ने ही हमें इस परिणाम पर पहुंचाया है।

मन्त्रों का पुनः पुनः प्रादुर्भाव

पूर्वोक्त प्रमाणों से यह बात निश्चित हो जाती है कि मन्त्रों का प्रादुर्भाव बार बार होता रहा है। इसी लिए अनेक बार एक ही सूक्त के कई ऋषि होते हैं। यह गणना सौ तक भी पहुंच जाती है। यही बात सिद्ध करती है कि ऋषि मन्त्र बनाने वाले नहीं थे, प्रत्युत वे मन्त्र-द्रष्टा थे। इस विषय की विस्तृत आलोचना हमारे ऋग्वेद पर व्याख्यान में ही की गई है।

मन्त्रार्थ-द्रष्टा ऋषि

मन्त्रों के बार बार प्रादुर्भाव का एक और भी गम्भीर अर्थ है। हम जानते हैं कि भिन्न भिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों में एक ही मन्त्र के भिन्न भिन्न अर्थ किए गए हैं। एक ही मन्त्र का विनियोग भी कई प्रकार का मिलता है। मन्त्रार्थ की यही भिन्नता है कि जो एक ही मन्त्र में समय समय पर अनेक ऋषियों को सूझी। इसी लिए प्राचीन आचार्यों ने यह लिखा

है कि ऋषि मन्त्रार्थ-द्रष्टा भी थे । इस के लिए निम्नलिखित प्रमाग विचार योग्य हैं—

१—निरुक्त २।८॥ में लिखा है कि शाकपूणि ने संकल्प किया कि मैं सब देवता जान गया हूं । उस के लिए दो लिङ्गों वाली देवता प्रादुर्भूत हुई । वह उसे न जान सका । उस ने जानने की जिज्ञासा की। उस देवता ने ऋ० १।१६४।२९॥ ऋचा का उपदेश किया । यही मेरी देवता है । इस प्रमाण से पता लगता है कि देवता ने शाकपूणि को ऋचा भी बताई और ऋगन्तर्गत अर्थ भी बताया । तभी शाकपूणि को ऋगर्थ का ज्ञान हुआ और उस ने देवता पहचानी । यह मन्त्र तो शाकपूणि से पहले भी प्रसिद्ध था । यह मन्त्र वेद का अङ्ग था और व्यास से पैल आदि इसें पढ़ चुके थे । शाकपूणि स्वयं इस मन्त्र को पढ़ चुका था। फिर भी उस के लिए इस मन्त्र का आदेश हुआ और उस ने इस मन्त्र में उभयलिङ्ग देवता देखी ।

२—निरुक्त १३।१२॥ में लिखा है—**न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा ।** अर्थात्—इन मन्त्रों में अनृषि और तपशून्य का प्रत्यक्ष नहीं होता । अब जो लोग संस्कृत भाषा के मर्म को समझते हैं, इस वचन को पढ़ते ही वे समझ लेंगे कि इस वचन का अभिप्राय यही है कि मन्त्र बहुधा विद्यमान होते हैं और उन्हीं मन्त्रों में ऋषियों का प्रत्यक्ष होता है । गुलाब का फूल तो इस पृथिवी पर चिरकाल से मिलता है, परन्तु उस फूल के गुणों में वैद्यों की दृष्टि कभी कभी ही गई है । जब जब वह दृष्टि खुलती है, तब तब उसी फूल का एक नया उपयोग सूझता है ।

इन वचन के आगे निरुक्तकार लिखता है—

मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् । को न ऋषिर्भविष्यतीति । तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् । मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूलम् । तस्माद्यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद्भवति ।

इस सारे वचन का यही अभिप्राय है कि ऋषियों को भी बहुधा मन्त्रार्थ ही सूझता था । वेङ्कटमाधव अपने ऋग्भाष्य के अष्टमाष्टक के सातवें अध्याय की अनुक्रमणी में लिखता है कि निरुक्त का यह पाठ किसी

प्राचीन ब्राह्मणग्रन्थ का पाठ है। वह तो वस्तुतः इसे ब्राह्मण के नाम से उद्धृत करता है। इस से पता लगता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऋषि बहुधा मन्त्रार्थ-द्रष्टा ही माने गए हैं। यास्क के **एषु प्रत्यक्षम्** पद से निरुक्त ७।३।। में आए हुए **ऋषीणां मन्त्रदृष्टयः** का भी सप्तमीपरक ही अर्थ होगा। इस से भी यही पता लगता है कि उपस्थित मन्त्रों में भी ऋषियों की दृष्टियां होती थीं।

३—निरुक्त १०।१०।। में लिखा है—

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता।

यहां **दृष्टार्थ** शब्द विचारणीय है। अर्थ का अभिप्राय मन्त्र भी हो सकता है और मन्त्रार्थ भी। मन्त्रार्थ वाले अर्थ से हमारा प्रस्तुत अभिप्राय ही सिद्ध होता है।

४—न्यायसूत्र ४।१।६२।। पर भाष्य करते हुए किसी ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रमाण दे कर वात्स्यायन मुनि लिखता है—

य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।

पुनः सूत्र २।२।६७।। की व्याख्या में वात्स्यायन ने लिखा है—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति।

इन दोनों वचनों से यही तात्पर्य स्पष्ट होता है कि **आप्त=साक्षात्कृतधर्मा** लोग वेदार्थ के द्रष्टा भी थे। वह वेदार्थ ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है, अतः कहा जा सकता है कि ऋषि लोग वेदार्थरूपी ब्राह्मणों के द्रष्टा थे। इसी का भाव यह है कि समय समय पर एक ही मन्त्र के भिन्न भिन्न ऋषियों को भिन्न भिन्न विनियोग दिखाई दिए।

५—यजुर्वेद के सातवें अध्याय में ४६वां मन्त्र है—

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्।

यहां **ऋषिं** पद के व्याख्यान में उवट लिखता है **ऋषिर्मन्त्राणां व्याख्याता।** अर्थात्—ऋषि मन्त्रों का व्याख्याता है।

६—बौधायन धर्मसूत्र २।६।३६।। में ऋषि पद मिलता है। उस की व्याख्या में गोविन्द स्वामी लिखता है—**ऋषिर्मन्त्रार्थज्ञः।** अर्थात्—ऋषि मन्त्रार्थ का जानने वाला होता है।

७—भृगु-प्रोक्त मनुस्मृति के प्रथमाध्याय के प्रथम श्लोकान्तर्गत महर्षयः पद के भाष्य में मेधातिथि लिखता है—

ऋषिर्वेदः । तदध्ययन-विज्ञान-तदर्थानुष्ठानातिशययोगात् पुरुषेऽप्यृषिशब्दः ।

अर्थात्—वेद के अध्ययन, विज्ञान, अर्थानुष्ठान आदि के कारण पुरुष में भी ऋषि शब्द का प्रयोग होता है ।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि मन्त्रार्थ-द्रष्टा के लिए भी ऋषि शब्द का प्रयोग आर्य वाङ्मय में होता चला आया है ।

अनेक ऋषि-नाम मन्त्रों से लिए गए हैं

हम पृ० २४५ पर लिख चुके हैं कि विश्वरथ नाम के राजा ने घोर तप किया । इस तप के प्रभाव से वह ऋषि बन गया । जब वह ऋषि बन गया, तो उस का नाम विश्वामित्र हो गया ।[1] इस से ज्ञात होता है कि ऋषि बनने पर अनेक लोग अपना नाम बदल कर वेद का कोई शब्द अपने नाम के लिए प्रयुक्त करते थे । शिवसङ्कल्प ऋषि ने भी यजुः ३४।१॥ से शिवसङ्कल्प शब्द लेकर अपना नाम शिवसङ्कल्प रखा होगा । इस विषय की बहुत सुन्दर आलोचना परलोकगत मित्रवर श्री शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ ने अपने वैदिक इतिहासार्थ निर्णय के पृ० २४-२९ तक की है । ऐतरेयारण्यक के प्रमाण से उन्हों ने दर्शाया है कि विश्वामित्र, गृत्समद आदि नाम प्राणवाचक हैं । इसी प्रकार वामदेव, अत्रि और भरद्वाज नाम भी सामान्यमात्र ही हैं । शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणानुकूल वसिष्ठ आदि नाम इन्द्रियों के ही हैं । ऋ० १०।१५१॥ वाले श्रद्धा सूक्त की ऋषिका श्रद्धा कामायनी ही है । इस कन्या ने अवश्य ही अपना नाम बदला होगा । इस प्रकार के अनेक प्रमाण अति संक्षिप्त रीति से उक्त ग्रन्थ

१—४।१।१०४॥ सूत्र के महाभाष्य में लिखा है—विश्वामित्र ने तप तपा, मैं अनृषि न रहूं । वह ऋषि हो गया । पुनः उस ने तप तपा । मैं अनृषि का पुत्र न रहूं । तब गाधि भी ऋषि हो गया । उस ने पुनः तप तपा । मैं अनृषि का पौत्र न रहूं । तब कुशिक भी ऋषि हो गया । पिता और पितामह पुत्र के पश्चात् ऋषि बने ।

में दिए गए हैं। विचारवान् पाठक वहीं से इन का अध्ययन करें। हम तो यहां इतना ही कहेंगे कि इतिहास शास्त्र के आधार पर वेद-पाठ करने वाले के हृदय में अनायास ही यह सत्यता प्रकट होगी कि वेद मन्त्रों के आश्रय पर ही अनेक व्यक्तियों ने अनेक नाम रखे या बदले थे। इसी लिए भगवान् मनु के भृगुप्रोक्त शास्त्र १।२१॥ में कहा गया है कि—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

अर्थात्—-वेद शब्दों से ही आदि में अनेक पदार्थों के नाम रखे गए।

आर्य-धर्म के जीवन-दाता ऋषि थे

आर्य धर्म के जीवन-दाता यही ऋषि लोग थे। इन्हीं के उपदेशों से आर्य संस्कृति और सभ्यता का निर्माण हुआ। इन्हीं का मान करना आर्य सम्राट् गण अपना परम कर्तव्य समझते थे। बड़े बड़े प्रतापी सम्राट् अपनी कन्याएं इन ऋषियों को विवाह में दे कर अपना गौरव माना करते थे। जानश्रुति ने अपनी कन्या रैक्व को दी। इसी प्रकार के दृष्टान्तों से महाभारत आदि भरे पड़े हैं। जब जब ये ऋषिगण आर्य राजाओं के दरबारों में जाते थे, तो रत्न, धन, धान्य से राजा लोग इन का मान करते थे। बस ऋषियों से बढ़ कर आर्य जनों में और किसी का स्थान न था। इन का शब्द प्रमाण होता था। ये प्रत्यक्षधर्मा थे, परम सत्यवक्ता और सत्यनिष्ठ थे। इन्हीं के बनाए हुए धर्मसूत्रों में, अनेक प्रक्षेपों के होते हुए भी, प्राचीन आर्य धर्म का एक बड़ा उज्ज्वल रूप दिखाई देता है। दुःख में पड़े हुए वर्तमान संसार के लिए वह परम शान्ति का कारण बन सकता है। धर्माधर्म का यथार्थ निर्णय इन्हीं ऋषियों की वाणी द्वारा हो सकता है। यादव कृष्ण सदृश तेजस्वी योगी इन ऋषियों का कितना आदर करते थे, इस का दृश्य महाभारत में देखने योग्य है। जब भगवान् मधुसूदन दूत-कार्य के लिए युधिष्ठिर से विदा हुए, तो मार्ग में उन्हें ऋषि मिले। वे बोले हे केशव सभा में तुम्हारे वचन सुनने आएंगे। तदनन्तर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में पहुंच गए। उन्हों ने रात्रि विदुर के गृह पर व्यतीत की। प्रातः सब कृत्यों से अवकाश प्राप्त कर के वे राज-

सभा में प्रविष्ट हुए। सात्यकि उन के साथ था। उस समय उस सभा में राजाओं के मध्य में ठहरे हुए दाशार्ह ने अन्तरिक्षस्थ ऋषियों को देखा। तब वासुदेव जी शन्तनु के पुत्र भीष्म जी से धीरे से बोले—

पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता नृप ॥५४॥
निमन्त्र्यन्तामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा।
नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केनचिदासितुम् ॥५५॥
(उद्योगपर्व अध्याय ९४)

अर्थात्—हे राजन्! पृथ्वी पर होने वाली इस सभा को देखने के लिए ये ऋषिगण पर्वतों से यहां उतरे हैं। इन का बहुविध सत्कार और आसनों से आदर करो। जब तक ये न बैठ जाएं, अन्य कोई भी बैठ नहीं सकता।

जब ऋषियों की पूजा हो गई तो वे बैठ गए—

तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घ्येषु भारत ॥५८॥
निषसादासने कृष्णो राजानश्च यथासनम् ॥५९॥

अर्थात्—ऋषियों के बैठ जाने पर कृष्ण जी आसन पर बैठे, और अन्य राजा भी अपने अपने आसनों पर बैठे।

अपने ज्ञान-दाताओं का, अपने धर्म संरक्षकों का, धर्म-प्रचारकों का, दिव्य ज्ञान के निधियों का कितना आदर है। इस भूमि पर अन्य किस जाति ने ऐसा दृश्य उपस्थित किया है। कहां पर बड़े बड़े सम्राट् ऐसे धनहीन लोगों के आगे झुके हैं। वस्तुतः ही आर्य संस्कृति महान् है, अनुपम है। इसी आदर में इस संस्कृति का जीवन था, इस का प्राण था।

वेद का पर्यायवाची ऋषि शब्द

अनेक प्राचीन भाष्यकार अनेक प्रसङ्गों में ऋषि शब्द का वेद भी एक अर्थ करते आए हैं। यह प्रवृत्ति कब से चली है, इस का ऐतिहासिक ज्ञान बड़ा उपादेय है, अतः उस का आगे निदर्शन किया जाता है—

१—भोजराज कृत उणादि सूत्र २।१।१५९॥ की वृत्ति में दण्डनाथ नारायण लिखता है—**ऋषिः वेदः।** अर्थात्—ऋषि वेद को कहते हैं।

२—हरदत्तमिश्र पाणिनीय सूत्र १।१।१८॥ की अपनी पदमञ्जरी व्याख्या में लिखता है—

ऋषिर्वेदः । तदुक्तमृषिणा–इत्यादौ दर्शनात् ।

अर्थात्—ब्राह्मण ग्रन्थों के तदुक्तमृषिणा पाठ के अनुरोध से ऋषि का अर्थ वेद है ।

३—वैजयन्तिकोश में यादवप्रकाश लिखता है—ऋषिस्तु वेदे । अर्थात्—ऋषि शब्द वेद के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

४—मनु भाष्यकार मेधातिथि का ऋषिर्वेदः प्रमाण पृ० २५२ पर लिखा जा चुका है ।

५—आठवीं शताब्दी से पूर्व के शाश्वतकोश श्लोक ७१९ में लिखा है—ऋषिर्वेदे । इन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी तक ऋषि शब्द का वेद अर्थ सुप्रसिद्ध था । इस से कितना काल पहले ऐसा अर्थ प्रचलित हुआ, यह विचारना चाहिए ।

वेद और ऋषियों के विषय में तथागत बुद्ध की सम्मति

शान्तरक्षित अपने तत्वसंग्रह में लिखता है—

यथोक्तं भगवता–इत्येते आनन्द पौराणा महर्षयो वेदानां कर्तारो मन्त्राणां प्रवर्तयितारः । पृ० १४ ।

अर्थात्—भगवान् बुद्ध ने कहा है—हे आनन्द यह पुराने महर्षि थे, जिन्हों ने वेद बनाए और मन्त्र प्रवृत्त किए ।

मन्त्र प्रवृत्त करने से बुद्ध का क्या अभिप्राय था; यह विचारणीय है । वेदों के कर्ताओं से बुद्ध का अभिप्राय शाखाओं के प्रवक्ताओं से हो सकता है । बुद्ध का वेदों के प्रति यदि कुछ आदर था भी, तो उस के अनुयायिओं को वह रुचिकर नहीं लगा ।

मज्झिम निकाय २।५।५॥ में बुद्ध का कथन है—

ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि अट्टक, वामक····।

पुनः मज्झिम निकाय २।५।९॥ में बुद्ध के श्रावस्ती में विहार करने का उल्लेख है । श्रावस्ती के जेतवन में बुद्ध ने तौदेय्य-पुत्र शुभ माणवक को कहा—

माणव ! जो वह वेदों के कर्ता, मन्त्रों के प्रवक्ता ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि थे, जिन के गीत, संगीत, प्रोक्त पुराने मन्त्र-पद को आज भी ब्राह्मण उन के अनुसार जाते हैं।……[वह पूर्वज ऋषि] जैसे कि—अट्टक=अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु……।

इस वचन में वामक तो वामदेव ही प्रतीत होता है और शेष आठ ऋषि रहते हैं। वे आठ पाली में अट्टक कहाते होंगे। मज्झिम निकाय के इस वचन से पता लगता है कि शान्तरक्षित के पाठ में **प्रवर्तयितारः** के स्थान में **प्रवक्तारः** पाठ चाहिए।

जैन और वेद

तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक का कर्ता विद्यानन्द स्वामी सूत्र १।२०॥ की व्याख्या में लिखता है—

तत्कारणं हि काणादाः स्मरन्ति चतुराननम्।
जैनाः कालासुरं बौद्धाः स्वष्टकात्सकलाः सदा ॥३६॥

अर्थात्—वैशेषिक वाले ब्रह्मा से वेदोत्पत्ति मानते हैं, जैन कालासुर से और सकल बौद्ध सम्प्रदाय स्वष्टक से वेदोत्पत्ति मानते हैं।

जैनों ने कालासुर से वेदोत्पत्ति कैसे मानी, यह जैनेतिहास में ही लिखा होगा। विद्यानन्द स्वामी ने इस श्लोक में बौद्धों के जिस मत का वर्णन किया है, उस का मूल मज्झिम निकाय के पूर्व प्रदर्शित प्रमाण में मिलता है। विद्यानन्द स्वामी के **स्वष्टक** पद का अभिप्राय **सु-अट्टक** से ही है।

वेद तो अनादि काल से चला आ रहा है। जब जब वेद का लोप होता है, वेद का प्रचार कम होता है, तब तब ही आर्य ऋषि उस वेद का प्रचार करते हैं, उस का अर्थ प्रकाशित करते हैं। उन वैदिक ऋषियों का इतिवृत्त, अति संक्षिप्त वृत्त लिखा जा चुका है।

ऋषि-काल की समाप्ति कब हुई

सामान्यतया तो ऋषि-काल की समाप्ति कभी भी नहीं होती। तप से, योग से, ज्ञान से, वेदाभ्यास से कोई व्यक्ति कभी भी ऋषि बन

सकता है, परन्तु है यह बात असाधारण ही। वेदमन्त्रों का, या मन्त्रार्थों का दर्शन अब किसी विरले के भाग्य में ही होता है। अतः सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में ऋषियों का होना जैसा कि पूर्व युगों में हो चुका है, भारत-युद्ध के कुछ काल पीछे तक ही रहा। इस का उल्लेख वायु आदि पुराणों में मिलता है। युधिष्ठिर के पश्चात् परीक्षित ने हस्तिनापुर की राजगद्दी संभाली। परीक्षित का पुत्र जनमेजय था। जनमेजय का पुत्र शतानीक और शतानीक का पुत्र अश्वमेधदत्त था।[1] इस अश्वमेधदत्त के पुत्र के विषय में वायुपुराण ९९ अध्याय में लिखा है—

पुत्रो ऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरञ्जयः ॥२७५॥
अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा सांप्रतोऽयं महायशाः।
यस्मिन् प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम् ॥२५८॥
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम्।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ॥२५९॥

अर्थात्—अश्वमेधदत्त का पुत्र अधिसीमकृष्ण था। उसी के राज्य में ऋषियों ने दीर्घ-सत्र किया।

इसी विषय के सम्बन्ध में वायुपुराण के आरम्भ में लिखा है—

असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्ये ऽनुपमत्विषि।
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिसत्तमे ॥१२॥
ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥१३॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रं तु ईजिरे।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ॥१४॥

अर्थात्—असीमकृष्ण के राज्य में ऋषियों ने कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर एक दीर्घयज्ञ किया।

युधिष्ठिर के राज-त्याग के समय कलियुग आरम्भ हो गया था। तत्पश्चात् वंशावलियों के अनुसार परीक्षित का राज्य ६० वर्ष तक रहा।

१—शतानीक ने कोई अश्वमेध यज्ञ किया होगा। उस के अनन्तर इस पुत्र का जन्म हुआ होगा। इसी कारण उस का ऐसा नाम हुआ।

जनमेजय ने ८४ वर्ष राज्य किया। शतानीक और अश्वमेधदत्त का राज्य-काल ८२ वर्ष था। इन राजाओं ने लगभग २२६ वर्ष राज्य किया होगा। असीमकृष्ण इन से अगला राजा है। उस का राज्य-काल भी लम्बा था। अनुमान से हम कह सकते हैं कि उस के राज्य के पन्द्रहवें वर्ष में कदाचित् दीर्घसत्र आरम्भ हुआ हो। अर्थात् कलि के संवत् २४० में यह दीर्घयज्ञ हो रहा था कि जिस में ऋषि लोग उपस्थित थे। इस यज्ञ के २०० वर्ष पश्चात् तक अधिक से अधिक ऋषि रहे होंगे, क्योंकि इस यज्ञ के अनन्तर कोई ऐसा वृत्तान्त नहीं मिलता कि जब ऋषियों का होना किसी प्राचीन ग्रन्थ से पाया जाए। फलतः कहना पड़ता है कि कलि के संवत् ४४० या ४५० तक ही ऋषि लोग होते रहे।

गौतम बुद्ध के काल में भारत भूमि पर कोई ऋषि न था। बौद्ध साहित्य में ऐसा कोई प्रमाण नहीं कि जिस से बुद्ध के काल में ऋषियों का होना पाया जाए। बुद्ध के काल से बहुत बहुत पहले ही आर्य भारत का आचार्य युग प्रारम्भ हो चुका था। बुद्ध अपने काल के ब्राह्मणों को स्वयं कहता है कि उन ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि थे, अर्थात् उस के काल में कोई ऋषि न था। पृ० २५६ पर ऐसा ही एक प्रमाण मज्झिम निकाय से दिया गया है।

आर्ष वाङ्मय का काल

जब ऋषियों के काल की समाप्ति कुछ निश्चित हो गई, तो यह कहना बड़ा सरल है कि सारा आर्ष साहित्य कलि संवत् ४५० से पूर्व का है। मनु, बौधायन, आपस्तम्ब आदि के धर्मशास्त्र, चरक, सुश्रुत, हारीत, जतुकर्ण आदि के आयुर्वेद ग्रन्थ, भरद्वाज, पिशुन, उशना, बृहस्पति आदि के अर्थशास्त्र, शाकपूणि, और्णवाभ, औपमन्यव आदि के निरुक्त, वेदान्त, मीमांसा, कपिल आदि के दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ, सुतरां सहस्रों अन्य आर्ष शास्त्र, सब इस काल के अथवा इस काल से पूर्व के ग्रन्थ हैं। जिन विदेशीय ग्रन्थकारों ने हमारा यह वाङ्मय ईसा से सहस्र या पन्द्रह सौ वर्ष पहले का और अनेक अवस्थाओं में ईसा के काल का बना दिया है, उन्हों ने आर्ष वाङ्मय के साथ घोर अन्याय किया है।

इसी अन्याय और भ्रान्ति को दूर करने के लिए हमें इस इतिहास के लिखने की आवश्यकता पड़ी है। जितनी जितनी सामग्री हमें मिल रही है, उस से हमारा विचार दृढ हो रहा है कि भारत-युद्ध-काल और आर्ष काल का निर्णय ही प्राचीन वाङ्मय के काल का निर्णय करेगा। इस ग्रन्थ के अनेक भागों के पाठ से यह बात सुविदित होती चली जाएगी। विचारवान पाठक इस के सब भाग ध्यान से देखें।

पञ्चदश अध्याय

आर्ष ग्रन्थों के काल के सम्बन्ध में योरुपीय लेखकों और उन के शिष्यों की भ्रान्तियां

आए दिन अनेक नए नए बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे हैं। उन के कर्ताओं के नाम उन पर लिखे मिलते हैं। किसी विरले ग्रन्थ को छोड़ कर कि जिस के कर्तृ-नाम के विषय में भूल उत्पन्न हो गई हो, अन्य कभी भी किसी को यह सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ कि अमुक ग्रन्थ अमुक व्यक्ति का बनाया हुआ नहीं है। इसी प्रकार जैन ग्रन्थों के विषय में भी कहा जा सकता है। परन्तु यह आर्ष ग्रन्थों का ही क्षेत्र है कि जिस के विषय में दुर्भाग्यवश अनेक ऐसी कल्पनाएं प्रस्तुत की जाती हैं कि जिन से समस्या कठिन हो गई है।

माना कि अनेक पुराण ग्रन्थ और उन के अन्तर्गत बीसिओं स्थानों के माहात्म्य व्यास जी के नाम से घड़े गए हैं, यह भी माना कि अनेक स्मृति ग्रन्थ भी कई ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं, परन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि आर्ष साहित्य का अधिकांश भाग ऋषियों के नाम पर कल्पित किया गया है।

कल्पसूत्र और उन का काल

कल्प के अन्तर्गत श्रौत, गृह्य, धर्म, और शुल्ब सूत्र माने जाते हैं। अनेक कल्पों के ये श्रोत आदि सारे ही अङ्ग विद्यमान हैं और उन की अध्यायगणना भी एक ही शृङ्खला में जुड़ी हुई है। किसी किसी कल्प का धर्मसूत्र भाग और किसी किसी का शुल्ब भाग अब नहीं मिलता। यह भी संभव है कि अनेक कल्पसूत्रों के धर्मसूत्र भाग बनाए ही न गए हों। परन्तु जिन कल्पसूत्रों के सब भाग उपलब्ध हैं, और जिन का अध्यायक्रम भी जुड़ा हुआ है, उन के विषय में यह कहना कि वे भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न

रचयिताओं द्वारा निर्माण किए गए, दुःसाहस और धृष्टता के सिवा और कुछ नहीं।

कल्पसूत्र आर्ष हैं

ये सारे कल्पसूत्र आर्ष हैं, ऋषि प्रणीत हैं। व्याकरण महाभाष्य ५।२।९४॥ में पतञ्जलि लिखता है—

सन्मात्रे चर्षिदर्शनात्।

सन्मात्रे च पुनः ऋषिर्दर्शयति मतुपम्। यवमतीभिरद्भिर्यूपं प्रोक्षति इति।

अर्थात्—सत्तामात्र में ऋषि मतुप का प्रयोग दर्शाता है। जैसा यवमतीभिः प्रयोग में दिखाई देता है।

यवमतीभिः वचन किसी कल्पग्रन्थ का सूत्र है। उस के विषय में पतञ्जलि स्पष्ट कहता है कि यह ऋषिवचन है। जब यह ऋषिवचन है, और किसी कल्प का सूत्र है, तो वह कल्प अवश्य ऋषि-प्रणीत होगा। ऋषि-काल कलिसंवत् के ४५० वर्ष तक ही रहा है, अतः यह कल्प और दूसरे ऋषि प्रणीत कल्प उस काल के या उस से भी पहले के होंगे।

कल्प सूत्रों के इतना प्राचीन होने में अन्य प्रमाण

१—कल्पसूत्र पाणिनि से बहुत पूर्व के हैं। पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु ४।३।१०५॥ सूत्र से यह भाव निकलता है कि प्राचीन और उन की अपेक्षा कुछ नवीन, दोनों ही प्रकार के कल्पसूत्र पाणिनि से पहले बन चुके थे। पाणिनि का काश्यपकौशिकाभ्याम् ऋषिभ्यां णिनिः। ४।३।१०३॥ सूत्र भी यही सिद्ध करता है कि काश्यप और कौशिक कल्पसूत्रों के प्रवचनकर्ता ऋषि ही थे।

पाणिनि का काल

पाणिनि का काल बुद्ध जन्म से बहुत पूर्व का है। आर्यमञ्जु-श्रीमूल-कल्प के आधार पर श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने वैयाकरण पाणिनि को ३६६–३३८ ईसा पूर्व रखा है। यही महापद्म नन्द का काल था। मूलकल्प में यह कहीं नहीं लिखा कि महापद्म नन्द का मित्र वैयाकरण पाणिनि था। वहां तो लिखा है—

वररुचिर्नाम विख्यात अतिरागो अभूत् तदा ॥४३३॥
नियतं श्रावके बोधौ तस्य राज्ञो भविष्यति ।
तस्याप्यन्तमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः ॥४३७॥

अर्थात्—वररुचि नाम के मन्त्री से उस का बड़ा अनुराग था। उस का दूसरा मित्र पाणिनि नाम का माणव था ।

मूलकल्प के इतने लेख से यह परिणाम कभी नहीं निकल सकता कि मूलकल्प में वैयाकरण पाणिनि का उल्लेख है । नन्दकाल में यही दो नाम देख कर कथासरितसागर आदि के लेखकों को भी धोखा हुआ है । वैयाकरण पाणिनि बहुत पुराना आचार्य है । इस के काल का पूर्ण निर्णय आगे करेंगे ।

२—कल्पसूत्र बुद्ध-काल से पहले के हैं । बुद्ध जिन विद्वान् ब्राह्मणों से मिला है, उन में से कई एक के विषय में लिखा है कि वे कल्प जानते थे । मज्झिम निकाय २।५।३॥ में लिखा है कि श्रावस्ती का आश्वलायन निघंटु-केटभ=कल्प, शिक्षा, तीन वेद और इतिहास वेद आदि में पारङ्गत था। वह वैयाकरण भी था। वहीं २।५।१०॥ में लिखा है कि संगारव नामक माणव निघंटु-केटभ=कल्प, शिक्षा, सहित तीनों वेदों का पारङ्गत था।

बुद्ध-काल से बहुत पहले सब कल्प बन चुके थे, और यज्ञों के बहु-प्रचार का साधन हो गए थे ।

इस सम्बन्ध में इस इतिहास के कल्प-सूत्र भाग में अन्य अनेक प्रमाण दिए जाएंगे । हमारे इस कथन के विपरीत योरुपीय ग्रन्थकार और उन के भावों के अनुसार लिखने वाले लोग कहते हैं कि आपस्तम्ब आदि कल्प ६००—३०० ईसा पूर्व तक बने हैं । पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्रेतिहास पृ० ४५ पर ऐसा ही लिखा है । ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मणों के अङ्गरेजी अनुवाद की भूमिका के पृ० ४८ पर अध्यापक आर्थर बैरीडेल कीथ का भी लगभग ऐसा ही मत है । आधुनिक बङ्गाली ग्रन्थकार तो बुद्ध के समकालीन आश्वलायन को ही आश्वलायन कल्प का कर्ता मानते हैं । ये सब लेखक आर्ष-काल और आचार्य-काल का पूरा भेद नहीं जान पाए ।

वेदों की समस्त शाखाएं आर्ष-काल की ही उपज हैं। अनेक अवस्थाओं में जिन जिन ऋषियों ने संहिता और ब्राह्मणों का प्रवचन किया था, उन्हीं ऋषियों ने अपने कल्प सूत्र भी बना दिए थे। पैङ्गि ब्राह्मण, और पैङ्गि कल्प का रचयिता एक ही ऋषि है। इसी प्रकार चरक संहिता, चरक ब्राह्मण और चरक कल्प का प्रवक्ता भी एक ही है। शाख्यायन आदि के ग्रन्थ भी इसी कोटि के हैं। शाखा गणना में अनेक सौत्र शाखाएं भी गिनी जाती हैं। वे सब शाखाएं बुद्ध-काल या उस से दो तीन सौ वर्ष पहले की उपज नहीं हैं। यह सब वाङ्मय तो आर्ष-काल का ही प्रवचन है। अतः इस का काल बुद्ध से सहस्रों वर्ष पूर्व का है।

भृगु-प्रोक्त मानव धर्मशास्त्र आर्ष है

मनुस्मृति के सैकड़ों हस्तलेखों के प्रति अध्याय के अन्त में लिखा मिलता है कि **इति श्री मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां**···। अर्थात् मनु की यह संहिता भृगु-प्रोक्त है। यह भृगु ऋषि है। इसी के साथी नारद ने मनु के शास्त्र का एक दूसरा सङ्कलन किया है। वह नारद भी ऋषि था। अतः ये ग्रन्थ भी आर्ष-काल के ही हैं। इसी लिए मनु के शतशः प्रमाण महाभारत आदि में मिलते हैं। यदि यत्न किया गया तो मनु के इसी भृगुप्रोक्त धर्मशास्त्र पर ईसा से सैकड़ों वर्ष पहले के भाष्य ही मिल जाएंगे। कल्पसूत्रों, दर्शनों और धर्मशास्त्र आदिकों के प्राचीन भाष्यों की खोज परमावश्यक है। उन भाष्य ग्रन्थों के मिलते ही, अनेक मूल ग्रन्थों के अति प्राचीन होने का तथ्य खुल जाएगा।

ईसा से कई सौ वर्ष पहले होने वाला भास कवि अपने प्रतिमा नाटक में मानवधर्मशास्त्र का स्मरण करता है। उस के लेख से प्रतीत होता है कि मानवधर्मशास्त्र उस से बहुत बहुत पहले काल का ग्रन्थ था।

गौतम आदि के प्राचीन दर्शन आर्ष हैं

गौतम न्यायसूत्र के विषय में यकोबी, कीथ, रेण्डल, सतीशचन्द्र और विनयतोष भट्टाचार्य आदि का मत है कि वर्तमान न्यायसूत्र ईसा की तीसरी शताब्दी के समीप संस्कृत हुए हैं। ये लेखक भी उसी भ्रान्ति में पड़े हैं कि जिस में उन के अन्य साथी निमग्न थे। विद्वान् लोग जानते

हैं कि न्याय आदि दर्शनों के मूल पाठों में उन के अनेक प्राचीन भाष्यों के अनेक पाठ इस समय तक सम्मिलित हो चुके हैं। उन प्रक्षिप्त पाठों के आधार पर मूल ग्रन्थ का काल निश्चित नहीं करना चाहिए। अनेक होते हुए भी ये प्रक्षेप अधिक नहीं हैं, और मूल ग्रन्थ का स्वरूप बहुत नहीं बदला गया।

इस न्यायसूत्र के विषय में २।१।५७॥ सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन लिखता है—

तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवानृषिः।

इस से ज्ञात होता है कि वात्स्यायन की दृष्टि में न्यायसूत्रों का कर्ता गोतम एक ऋषि था। वात्स्यायन के काल तक, नहीं नहीं, उस के सैकड़ों वर्ष उत्तर काल तक आर्य विद्वानों को अपनी परम्परा यथार्थरूप से ज्ञात थी। वे अपने वाङ्मय के इतिहास को भले प्रकार जानते थे। उन में से वात्स्यायन सदृश विद्वान् का लेख सहसा त्यागा नहीं जा सकता। अतः यह निश्चित है कि गोतम का न्याय सूत्र ग्रन्थ कलिसंवत् ५०० से पूर्व निर्माण हो चुका था।

आर्ष दर्शनों में अनेक बौद्ध मतों का खण्डन

जो लोग आर्ष दर्शनों को बौद्ध काल का वा उस के पश्चात् का कहते हैं, उन की एक युक्ति यह है कि इन दर्शनों में विज्ञानवाद आदि मतों का खण्डन है। हम अभी कह चुके हैं कि इन दर्शनों के पुरातन भाष्यों के अनेक पाठ इन मूल सूत्रों में मिल गए हैं। दर्शनों में नवीन विचारों के समावेश और खण्डन का यह भी एक कारण है। इस के अतिरिक्त भी एक कारण है। वह है कई दर्शनों से पूर्व बार्हस्पत्य मत के प्रचार का।

चार्वाक बृहस्पति।

चार्वाक बृहस्पति एक नास्तिक था। अनुमान होता है कि वही एक अर्थशास्त्र का भी कर्ता था। बृहस्पति के शिष्य लोकायत भी कहाते हैं। उन में से किसी एक लोकायत के विषय में तत्वसंग्रह २९४५ की व्याख्या में कमलशील लिखता है—

मिथ्यार्थशास्त्रश्रवणाद् व्यामूढो लोकायतः सिद्धे ऽप्यनुमानस्य प्रामाण्ये सांख्यवन्न तद्व्यवहारं प्रवर्तयति ।

अर्थात्—मिथ्या अर्थशास्त्र के श्रवण से व्यामूढ हुआ हुआ लोकायत अनुमान प्रमाण का व्यवहार नहीं करता ।

इस लेख से कमलशील का यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि लोकायत अपने गुरु बृहस्पति के अर्थशास्त्र को पढ़ते थे, और यह अर्थशास्त्र चार्वाक बृहस्पति का ही बनाया हुआ था । यह चार्वाक बृहस्पति महाभारत-काल से बहुत पहले हो चुका था । आर्य दर्शनों में जहां जहां नास्तिक मत का खण्डन मिलता है, वहां मुख्यतया इसी मत का खण्डन है । बौद्ध लोगों के कई सिद्धान्त इसी नास्तिक मत का रूपान्तर हैं, अतः आर्ष दर्शनों के भाष्यकारों ने अनेक सूत्रों के व्याख्यानों में चार्वाक के खण्डन में बौद्ध मतों का भी खण्डन दर्शा दिया है ।

इन सब बातों को ध्यान में रख कर कहना पड़ता है कि आर्य दर्शनों के भाष्यों में बौद्ध मतों के खण्डन के कारण मूल दर्शन बुद्ध-काल के पश्चात् के नहीं है । आर्य दर्शन आर्ष हैं और कलि संवत् ५०० से पहले के हैं ।

गौतम दर्शन की प्राचीनता में अन्य प्रमाण

न्यायसूत्र के प्राचीन होने में अन्य प्रमाण भी हैं । भास कवि अपने प्रतिमा नाटक में मेधातिथि रचित न्यायशास्त्र का स्मरण करता है । लण्डन के अध्यापक बार्नेट ने कल्पना की थी कि मेधातिथि के न्यायशास्त्र से न्याय=मीमांसा की उक्तियों से पूर्ण मनु का मेधातिथि-भाष्य समझना चाहिए । यह कल्पना सारहीन प्रतीत होती है । कहां अश्वघोष आदि से पूर्व का भास कवि और कहां नवम शताब्दी ईसा के समीप का भट्ट मेधातिथि ।

विद्वान् लोग जानते हैं कि ऋषि काल में एक मेधातिथि गौतम भी था । संभव है भास का अभिप्राय उसी से हो । और वही गौतम इस न्यायसूत्र का कर्ता हो ।

इसी सम्बन्ध में एक और बात भी विचारणीय है । नागार्जुन

के शिष्य आर्यदेव के शतशास्त्र पर वसु की एक टीका है। इन दोनों का चीनी अनुवाद ही इस समय तक उपलब्ध हुआ है। उन का आङ्गल भाषा अनुवाद अध्यापक गिस्सिपी टूची ने किया है। इस टीका में न्यायदर्शन के अनेक सूत्रों की ओर संकेत किया गया है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि उद्दालक आरुणि आदि उत्कृष्ट=तत्व ज्ञान वाले पुरुष थे। बौद्ध इस बात का खण्डन करता है। अब विचारने का स्थान है कि बौद्ध न्याय के ग्रन्थ में मुख्यतया किसी दार्शनिक के ज्ञान की ही प्रशंसा मिल सकती है। अतः उद्दालक आरुणि भी कोई दार्शनिक ही होगा। शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में उद्दालक आरुणि को गौतम के नाम से बहुधा सम्बोधन किया गया है। न्यायशास्त्र के प्रथम सूत्र में तत्वज्ञान से ही निःश्रेयस-प्राप्ति कही गई है। अतः न्यायसूत्रों का कर्ता तत्वज्ञानी होगा। क्या संभव हो सकता है कि न्यायसूत्रकर्ता गौतम यही उद्दालक आरुणि हो। इस अवस्था में मेधातिथि और उद्दालक आरुणि का सम्बन्ध भी विचारणीय है।

उद्दालक आरुणि के कुल में न्यायशास्त्र का प्रचार सुप्रसिद्ध है। इसी के पुत्र श्वेतकेतु और कन्या-सुत अष्टावक्र ने प्रसिद्ध नैयायिक वन्दी को पराजित किया था। इस विषय की पूर्ण विवेचना दर्शन शास्त्र के इतिहास में की जाएगी। हां, इतना तो निश्चित ही है कि न्याय सूत्र आर्ष है।

इसी प्रकार कापिल, मीमांसा, वैशेषिक आदि सूत्रों के भी आर्ष होने में कोई सन्देह नहीं।

आयुर्वेदीय चरक आदि तन्त्र आर्ष हैं

हार्नले आदि योरुपीय लेखकों ने लिखा है कि चरक शास्त्र का प्रतिसंस्कर्ता चरक कनिष्क का राजवैद्य था। यह उन की नितान्त भूल है। चरक तन्त्र का उपदेश करने वाला भगवान् पुनर्वसु आत्रेय था। अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि आदि उस के शिष्य थे। इस का प्रतिसंस्कार चरक ने किया। चरक का पुरातन व्याख्याकार भट्टार हरिचन्द्र प्रतिसंस्कर्ता को तन्त्रकर्ता भी कहता है।

चरक तन्त्र में प्रतिसंस्कर्ता का काम अत्यन्त स्वल्प है। वह एक प्रकार से तन्त्र को विशद करने के लिए टिप्पणीमात्र ही करता है कि अमुक वचन किस का है। इति ह स्माह भगवानात्रेयः—यह प्रतिसंस्कर्ता का वचन है। चरक तन्त्र में ऐसी टिप्पणी बहुत थोड़ी है। अधिकांश पाठ आत्रेय और अग्निवेश का ही है। चरक तन्त्र का अन्तिम पूर्ति करने वाला दृढबल था। उस के भाग भी पृथक् ही दीख जाते हैं। अतः हम निश्चय से कह सकते हैं कि चरक तन्त्र में कौन सा भाग किस का है। आत्रेय, अग्निवेश और चरक तीनों ऋषि थे। चरक तन्त्र सूत्रस्थान पच्चीस अध्याय में लिखा है—

पुरा प्रत्यक्षधर्माणं भगवन्तं पुनर्वसुम्।
समेतानां महर्षीणां प्रादुरासीदियं कथा ॥३॥

अर्थात्—भगवान् पुनर्वसु प्रत्यक्षधर्मा=ऋषि था।

वाग्भट्ट का मत है कि चरक तन्त्र ऋषिप्रणीत है—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

अर्थात्—चरक, सुश्रुत और भेड आदि के तन्त्र ऋषिप्रणीत हैं।

भगवान् आत्रेय बौद्ध कालीन नहीं है

आयुर्वेद ग्रन्थों के प्रसिद्ध उद्धारक श्री यादवशर्मा का मत है कि तक्षशिला का बौद्ध कालीन आचार्य आत्रेय ही चरक का उपदेष्टा है।[1] चरक शास्त्र के पाठ से यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती। चरक के आरम्भ के श्लोकों में हिमालय पर अनेक ऋषियों का एकत्र होना लिखा है। हम इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर लिख चुके हैं कि वे ऋषि ब्रह्मज्ञान के निधि थे, और उन में से कई एक तो कई वैदिक शाखाओं के प्रवक्ता थे। उन का काल तो भारत-युद्ध का काल ही था। हमारे इस ग्रन्थ के पढ़ने से यह बात बहुत स्पष्ट हो सकती है। आत्रेय भी उन्हीं ऋषियों में से एक था, अतः वह भारत-युद्ध कालीन ही था।

१—निर्णयसागर मुद्रित सटीक चरकतन्त्र का दूसरा संस्करण, सन् १९३५, भूमिका।

इस चरक तन्त्र पर भट्टार हरिचन्द्र की टीका का थोड़ा सा भाग अब भी मिलता है। मित्रवर वैद्य मस्तराम जी ने उस का सम्पादन किया है। यह टीका बहुत पुरानी है। संभवतः पांचवीं शताब्दी ईसा की ही होगी। उस से पहले भी चरक तन्त्र पर अनेक टीकाएं थीं। हरिचन्द्र एके आदि कह कर उन के प्रमाण देता है। विद्वान् वैद्यों को यत्न करना चाहिए कि वे टीकाएं सुलभ हो जाएं। तब हमारे कथन की सत्यता और भी प्रकट हो जाएगी।

जो लेखक चरक तन्त्र का बौद्ध काल में लिखा जाना मानते हैं, उन्हें भेल आदि तन्त्रों का निर्माण भी उसी काल में मानना पड़ेगा। बौद्ध काल में किसी भेल या जतुकर्ण आदि का अस्तित्व दिखाई ही नहीं देता। भेल के अनेक श्लोक चरक के श्लोकों से अक्षरशः मिलते हैं। दोनों का एक ही गुरु था, अतः उन के श्लोकों की समानता स्वाभाविक ही है। इस लिए कहना पड़ता है कि जिस आर्ष काल में भेल आदि तन्त्र बने, उसी काल में चरक तन्त्र भी लिखा गया था।

चरक तन्त्र सूत्र स्थान २६।३।६॥ में कहा है कि चैत्ररथ के रम्य वन में आत्रेय आदि महर्षि एकत्र हुए। उन में एक वैदेह-राजा निमि भी था। मज्झिम निकाय २।४।३॥ के अनुसार बुद्ध कहता है कि उस से पूर्व के काल में **राजा निमि का कराल-जनक नामक पुत्र हुआ।**...... वह उन का [विदेहों का] अन्तिम पुरुष हुआ। बुद्ध के काल से पहले तो निमि का पुत्र भी मर चुका था, अतः निमि तो और भी पहले हुआ होगा। इस से निश्चित होता है कि बुद्ध के काल का आत्रेय पुनर्वसु आत्रेय नहीं था। पुनर्वसु आत्रेय बुद्ध से बहुत पहले हो चुका था।

इसी प्रकार सुश्रुत, भेल आदि तन्त्र भी आर्ष काल के ही ग्रन्थ हैं।

पार्षद=प्रातिशाख्य ग्रन्थ आर्ष हैं

ऋक्, तैत्तिरीय, वाजसनेय, अथर्व आदि प्रातिशाख्य अब भी मिलते हैं। ऋक्प्रातिशाख्य के विषय में स्पष्ट ही लिखा है कि यह शौनक प्रणीत है। इतना ही नहीं, प्रत्युत विष्णुमित्र भाष्यकार तो शौनक प्रातिशाख्य की शास्त्रावतार कथा भी किसी पुरानी स्मृति से स्मरण करता है—

शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः ।
दीक्षासु चोदितः प्राह सत्रे तु द्वादशाहिके ॥

अर्थात्—नैमिषारण्य में दीक्षा के समय दीक्षित शिष्यों से प्रेरित किए गए शौनक ने यह प्रातिशाख्य बोला।

इस का अभिप्राय यह है कि कलि संवत् २५० के समीप ही इस ऋक्प्रातिशाख्य का निर्माण हुआ होगा । तैत्तिरीय आदि प्रातिशाख्य भी उस काल में या उस काल तक बन चुके थे । यास्क भी उस समय अपना निरुक्त लिख रहा था। यास्क की तैत्तिरीय अनुक्रमणी भी तब तक लिखी जा चुकी थी।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का तो एक अत्यन्त पुरातन भाष्य भी विद्यमान है। मद्रास यूनिवर्सिटी की ओर से पण्डित वेङ्कटराम शर्मा द्वारा सन् १९३० में वह मुद्रित हो चुका है। हमारा अनुमान है कि यह भाष्य बौद्ध-वररुचि के काल से अर्थात् नन्द-काल से पूर्व का है । इस की विस्तृत आलोचना आगे करेंगे।

अनेक शिक्षा ग्रन्थ इन प्रातिशाख्यों से भी पूर्व-काल के हैं। उवट ने शौनक प्रातिशाख्य पर जो भाष्य रचा है, उस के देखने से यह बात पूरे प्रकार से स्पष्ट हो जाती है । शौनक आदि की अनुक्रमणियां भी उसी काल में लिखी गईं थीं।

अब कहां तक गिनाएं । हम ने इस विषय का यहां दिग्दर्शन करा दिया है। इस ग्रन्थ के अगले भागों में इन में से प्रत्येक ग्रन्थ और ग्रन्थकार का काल अत्यन्त विस्तार से लिखा जाएगा । हमारे योरुपीय मित्रों ने इस विषय में जितनी भ्रान्ति उत्पन्न की है, उस की वास्तविक परीक्षा भी वहीं की जाएगी। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इस में योरुपीय लेखकों का कोई दोष नहीं है । उन्हों ने विधिपूर्वक प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया । उन का परिश्रम अथाह होते हुए भी युक्त-मार्ग का नहीं था। योरुप में एक एक कार्यकर्ता ने प्रायः एक एक विषय का ही अध्ययन किया था । अब भी अनेक लेखकों की ऐसी ही गति है । योरुप में ऐसे विद्वान् नहीं हुए कि जो अनेकों विषयों के एक

साथ पण्डित हों। इस के विना अत्यन्त विशाल वैदिक और संस्कृत वाङ्मय पर अधिकार से कुछ लिखना वृथा है। इन लेखकों ने महाभारत और पुराण आदि का अच्छा अभ्यास नहीं किया था। अतः उन के लेख ऐतिहासिक त्रुटियों से पूर्ण हो गए। जिस पार्जिटर ने महाभारत और पुराण आदि पढ़े, उसे वैदिक परम्परा का साक्षात् ज्ञान नहीं था, अतः उसका लेख भी अधूरा ही रह गया। उस की काल गणना प्रायः मनघड़न्त है। विद्वान् पाठक ध्यान से हमारे विचारों का पाठ करें।

———

प्रमुख-शब्द-सूची

पुराणस्थ वैदिक-ऋषि-नाम सूची

———